इंसानियत की धुँआती आँखें

(सिद्धेश्वर से साक्षात्कार)

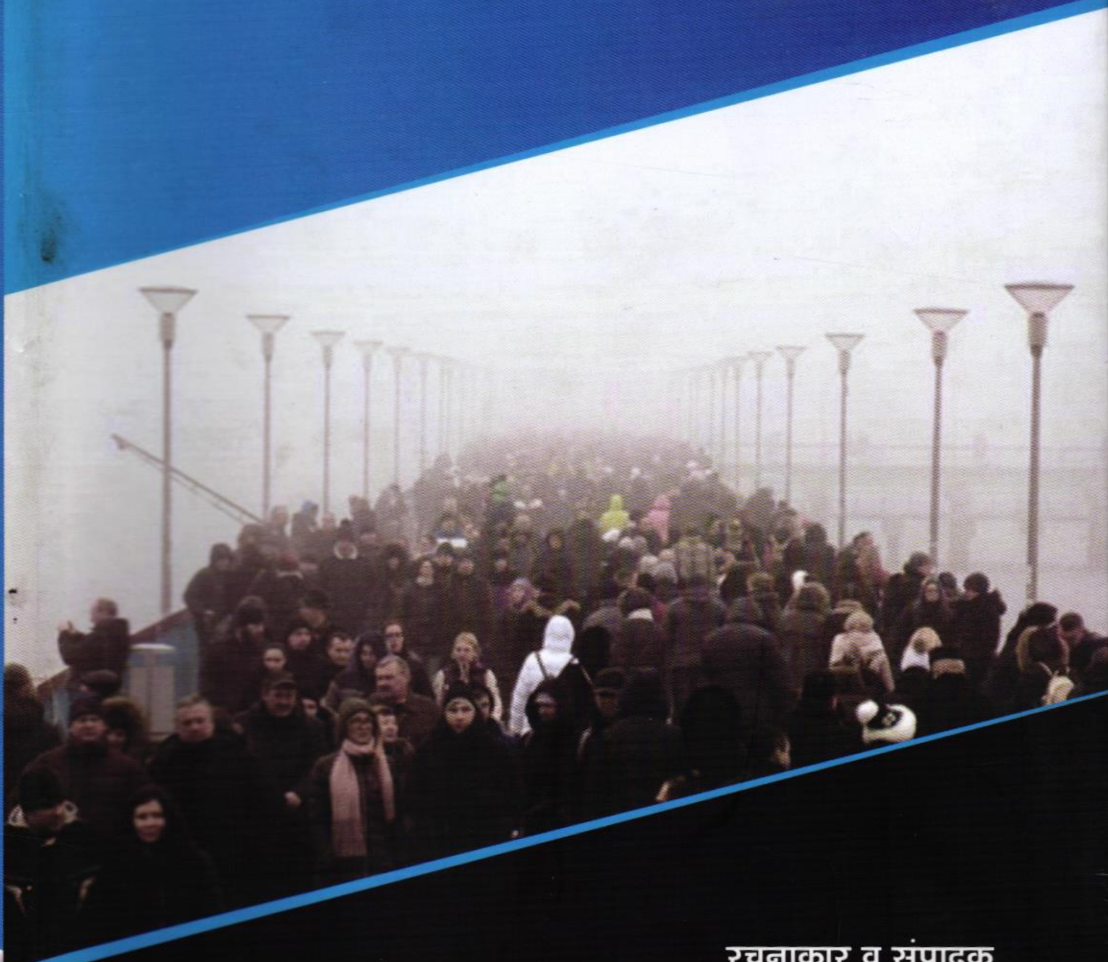

रचनाकार व संपादक

सिद्धेश्वर

इंसानियत की धुँआती आँखें
सिद्धेश्वर

इंसानियत की धुँआती आँखें

(सिद्धेश्वर से साक्षात्कार)

सिद्धेश्वर

प्रकाशक

सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन

दिल्ली–92

इंसानियत की धुँआती आँखें

(सिद्धेश्वर से साक्षात्कार)

लेखक व संपादक	:	सिद्धेश्वर, संस्थापक संपादक, 'विचार दृष्टि', दिल्ली पूर्व अध्यक्ष, बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड,पटना 'संस्कृति', ए-164, ए.जी. कॉलोनी, शेखपुरा, पत्रा.-आशियाना नगर, पटना-25 मो.-9431037221
प्रकाशक	:	सुधीर रंजन, सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन, 'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92, दूरभाष-011-2253065, मो.-9811281443,
(c)		सुधीर रंजन, प्रकाशक, दिल्ली
मुद्रक	:	लोकवाणी प्रिंटिंग प्रेस, पटना 29, शशि पैलेस, नाला रोड, पटना
शब्द-संयोजन	:	अमित कुमार,सुशीला सदन,रोड नं.-17, राजीव नगर,पटना
छायांकन	:	डॉ. शाहिद जमील, सी-84, मस्जिद के नजदीक, बैंक रोड, पटना-1
प्रथम संस्करण	:	वर्ष 2018
पृष्ठ सं.	:	288
मूल्य	:	आठ सौ रुपए मात्र (Rs Eight Hundred Only)

Insaniyat Ki Dhuantee Ankein
Sidheshwar Se Sakshatkar
Written & Edited by Sidheshwar

Price-Rs. 800/-

सिद्धेश्वर : एक नज़र

पूरा नाम : सिद्धेश्वर प्रसाद
संक्षिप्त नाम : सिद्धेश्वर
पिता का नाम : स्व. इन्द्रदेव प्रसाद
माता का नाम : स्व. फूलझार प्रसाद
पत्नी का नाम : श्रीमति बच्ची प्रसाद
जन्म तिथि : 18 मई, 1941
जन्म स्थान : ग्राम+पत्र.-बसनियावाँ, भाया-हरनौत, जिला-नालंदा, बिहार(भारत)
शैक्षिक योग्यता : सन् 1962 में पटना विश्वविद्यालय से श्रम एवं समाज कल्याण विषय में स्नातकोत्तर
तकनीकी शिक्षा : सन् 1973 में भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग से एस.ए.एस. (Subordinate Accounts Service)
सरकारी सेवा : भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के कार्यालय महालेखाकार, राँची एवं पटना में लेखा परीक्षक से प्रोन्नति प्राप्त करते हुए वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर छतीस वर्षो तक सेवा प्रदान करने के पश्चात् सन् 2000 के 31 मई से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर वृहतर एवं व्यापक समाज व राष्ट्रहित में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश।
सार्वजनिक सेवा : 1.भारतीय रेलवे के रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य
2. बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष पद पर 15 सितंबर, 2008 से 14 सितंबर, 2011 तक कार्यरत।
अभिरुचि : समाज व साहित्य सेवा तथा पत्रकारिता, राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए संघर्षशील तथा रचनात्मक लेखन से जुड़ाव।
रचनाएँ प्रकाशित :1.सामाजिक-'आरक्षण','कल हमारा है', 'समता के सपने', 'आत्ममंथन', बिहार के कुर्मी (निबंध संग्रह) एवं बिहार के कुर्मी (निर्देशिका)
2.स्मृति-'यादें'(भोला प्र. सिंह 'तोमर' की स्मृति में)
3.हाइकु काव्य संग्रह-'पतझड़ की सांझ', 'सुर नहीं सुरीले', 'कवि और कविता'

4. सेन्र्‌यु काव्य संग्रह–'जागरण के स्वर', 'बुजुर्गों की जिंदगी'

5. काव्य संग्रह–'यह सच है'

6. जीवनी– 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा',

'डॉ. मोहन सिंह: एक तपस्वी मन'

7. शैक्षिक–'समकालीन यथार्थबोध' एवं 'समकालीन संपादकीय'

जीवनी–साहित्य : 1.'सिद्धेश्वर:व्यक्तित्व और विचार'–प्रो. रामबुझावन सिंह

2.'सिद्धेश्वर:अंकों से अक्षर तक' डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

रचनाएँ प्रकाश्य:साक्षात्कार–1.'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर', डॉ. बलराम तिवारी द्वारा संपादित

2. 'इंसानियत की धुँआती आँखें'

3. 'राष्ट्रीय राजनीति'

4. 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले'

5.'वैश्विक कूटनीति'

राजनीति : 'आम आदमी की आवाज'

आत्मकथा–'जीवन रागिनी' तथा हाइकु में 'मेरी जीवन–यात्रा'

संस्मरण–1.'हमें अलविदा ना कहे' 2.'जो जीवित हैं हमारे जेहन में'

संपादन– 'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' दो भाग में

सम्मान : देश के विभिन्न सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संगठनों द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित।

विदेश यात्रा : 13–15 जुलाई, 2007 को अमेरिका के न्यूयॉर्क में आयोजित 8वें विश्व हिंदी सम्मेलन में बिहार सरकार की ओर से भारतीय प्रतिनिधिमंडल में शामिल होकर सम्मेलन के शैक्षिक सत्र में 'वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी' विषय पर आलेख पाठ एवं परिचर्या में सक्रिय भागीदारी।

संप्रति : राष्ट्रीय महासचिव, राष्ट्रीय विचार मंच, दिल्ली

संस्थापक संपादक, 'विचार दृष्टि', दिल्ली

संपर्क : 'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली–92

दूरभाष: 011–22530652, मो.–9431037221

'संस्कृति' ए–164, पार्क रोड, ए.जी. कॉलोनी, शेखपुरा,

पत्रा.–आशियाना नगर, पटना–800025,

मो.–9431037221, मो.–9472243949

अनुक्रम पृष्ठ

सिद्धेश्वर: एक नजर....................3
अनुक्रम....................5
समर्पण....................6
पूरोवाक्....................7
अभिमत 1.डॉ. गोपालशरण सिंह....................17
2.डॉ. हरि सिंह पाल....................20
3.डॉ.(प्रो.) एल. एन. शर्मा 25
शुभाशंसा डॉ.(प्रो.) साधु शरण....................29

अध्याय: एक - सामाजिक प्रश्नोत्तर....................32
अध्याय: दो - सांस्कृतिक प्रश्नोत्तर....................122
अध्याय: तीन - धार्मिक प्रश्नोत्तर 151
अध्याय: चार - वैचारिक प्रश्नोत्तर....................217
अध्याय: पाँच - प्राकृतिक प्रश्नोत्तर....................240
अध्याय: छ:ह- प्रष्टाओं का परिचय....................268

समर्पण

श्रीमती बी. प्रसाद

अर्द्धांगिनी श्रीमति बच्ची प्रसाद, जिनके साथ एक खासियत यह है कि धीमा काम
करके वह जिंदगी के हर क्षण का आनंद लेती हैं, क्योंकि उन्हें किसी प्रकार की
हड़बड़ी नहीं होती चाहे खाना बनाना हो या खाना खाना, चाहे घूमना हो
या साग-सब्जी खरीदना, वह हर लम्हे को पूरी तरह जीती हैं, जो हर
काम बेहद मन लगाकर करती हैं, जो मेरा अभिमान हैं और शान
भी, जिन्होंने मेरे ख्वाबों को उतारी हैं हकीकत में, जो सहज
और सरल जीवन जीती हैं, जिनसे शादी के बाद अपने
जीवन के सुख-दुख के हर लम्हे कोमिलकर बाँटा है,
और समय व जीवन के हर पल को जीया है,
जो हमारी जीवन साथी ही नहीं, अपितु हर
क्षेत्र में संगिनी की भूमिका निभा रही हैं,
क्योंकि जीवन के हर मोड़ और हर
परिस्थिति में इन्होंने हमारा साथ
दिया है और घर की सारी
पारिवारिक जिम्मेदारियों
यहाँ तक कि हमारे
हिस्से की जिम्मेदारियों
को भी आज तक
वह निभा रही हैं,
जिनके बिना हम अपने जीवन की कल्पना नहीं कर सकते, जो हमारी अर्द्धांगिनी
ही नहीं, बल्कि गृहलक्ष्मी भी हैं और सहयात्रिणी भी, जिनकी उपस्थिति
में 'बसेरा' और 'संस्कृति' निवास के हर कोने में प्यार
और स्नेह का बसेरा है, को यह कृति
सस्नेह
समर्पित।

–सिद्धेश्वर

पूरोवाक्

साक्षात्कार भी कविता, कहानी, संस्मरण, निबंध, रिपोर्ताज आदि की तरह हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा आज हो गई है। इसी साक्षात्कार के जरिए समाज के प्रबुद्धजनों, साहित्यकारों, प्राध्यापकों, नेताओं और अभिनेताओं से विभिन्न विषयों से संबंधित प्रश्नों को उनके समक्ष प्रस्तुत कर उनसे उत्तर प्राप्त करते हैं और उन्हें संगृहित कर पुस्तक का रूप देते हैं। कहना नहीं होगा कि इन प्रमुख जनों से प्राप्त उत्तर से प्रश्नकर्ता एक ओर जहाँ उनके विचारों से अवगत होते हैं, वहीं दूसरी ओर उनकी खुद की जिज्ञासा की पूर्ति भी हो जाती है।

दरअसल, आदि मानव जब विशाल विश्व में उदित हुआ, तो सर्वप्रथम उसके मन में अपने चतुर्दिक के परिवेश को जानने एवं समझने की जिज्ञासा जाग्रत हुई और इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिए अपने साथी-संगी से संवाद स्थापित किया। इस प्रकार क्रमशः एक ओर जहाँ उसने अपना बौद्धिक विकास किया, वहीं दूसरी ओर उसके दिल में धड़कने वाला हृदय जिन भावनाओं से द्रवित होता था, उनके गुणों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा उसके मन को आड़ोलित करने लगी। ऐसी हालत में उनकी जिज्ञासाओं की पूर्ति करने के लिए महात्मा, संतों तथा चिंतक-विचारकों के विचार अमृत-सदृश प्रमाणित हुए, क्योंकि स्वस्थ समाज की स्थापना के लिए समय-समय पर उपदेश, व्याख्यान, लेखन, साक्षात्कार, प्रवचन तथा प्रचार-प्रसार के माध्यमों से उन्होंने अपनी वाणी का प्रसाद बाँटा, जिसका प्रभाव समाज के कतिपय विचारशील लोगों पर ही नहीं, बल्कि अशिक्षित लोगों पर भी गहरा पड़ा।

इस क्रम में विश्व के विभिन्न देशों में जो देवदूत, पैगम्बर, संत-महात्मा हुए, उनमें ईसामसीह, हजरत मोहम्मद, सुकरात, महात्मा बुद्ध, भगवान महावीर, आचार्य शंकर, रामानुज, वल्लभाचार्य, महर्षि अरविंद, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, संत तुकाराम, ज्ञानदेव, गुरुनानक, रामदास, संत कबीर, आचार्य तुलसी, वेमना, सर्वज्ञ पुरन्दर दास, महात्मा गाँधी आदि विशेष रूप से स्मरणीय हैं। इन संतों एवं महात्माओं ने अपने समुदायों की जिज्ञासाओं के प्रश्नों के उत्तर देना प्रारंभ किया और

ऋषि-मुनियों ने अपने ज्ञानामृत को प्रश्नोत्तर के रूप में बाँटना प्रारंभ किया। फिर क्या था, देश के अनेक प्रदेशों में आश्रम खुले जहाँ सभी समुदाय के लोग अपने मन में आड़ोलित प्रश्नों को उनके समक्ष रखा और उनके उत्तर से समाधान पाकर संतुष्ट हुए। यह परंपरा विकसित होती गई और आज के इस सूचना एवं प्रौद्योगिकी के युग में समाचार माध्यमों के जरिए संघर्षशील मानव के लिए वह कितने अंशों में ग्राह्य है यह प्रश्न अलग है, परंतु यह सत्य है कि विविध रूपों में आदिकाल से ही ज्ञान का प्रसार होता आ रहा है और उससे विश्व-समुदाय लाभान्वित भी हो रहा है।

कालक्रम में मानव-मन की जिज्ञासा से प्रश्न का जन्म हुआ, जिसने उत्तर की अपेक्षा की। यह प्रश्नोत्तरी 'गीता' के रूप में भी अवतरित हुई। श्रीकृष्ण गुरुरूप अर्जुन की रक्षा हेतु मार्गदर्शन करते हैं और वे सारथी बनकर प्रश्नोत्तर के माध्यम से विचार और दर्शन, आध्यात्मिक जीवन के मुख्य पहल ज्ञान, कर्म और भक्ति का मार्ग बताते हैं और धर्मयुद्ध में विजय प्राप्त होता है। तत्पश्चात् मूल्यवान विचार-मोती हाथ आते हैं।

जहाँ तक हिंदी साहित्य का प्रश्न है साक्षात्कार के रूप में हिंदी साहित्य की इस प्रमुख विधा के माध्यम से हिंदी के अनेक मूर्धन्य चिंतक, समीक्षक, कवि, निबंधकार, साहित्यकार और आलोचक ने जीवन के हर क्षेत्र पर अपने विचार प्रश्नोत्तर के रूप में व्यक्त किए हैं। इसी कड़ी में मुझसे किए गए साक्षात्कार के दौरान समाज, संस्कृति, धर्म व अध्यात्म, नैतिकता, वैचारिक तथा प्रकृति से जुड़े प्रश्नों के उत्तर पूछे गए हैं और प्रश्नोत्तर को संगृहित कर छह अध्यायों में विभाजित 'इंसानियत की धुँआती आँखें' नाम्नी पुस्तक आपके समक्ष प्रस्तुत है।

मैं अपने समकालीन सामाजिक परिवेश में होने वाले उन परिवर्तनों से आविष्ट रहता हूँ, जिनसे समाज का व्यापक विचार-जगत प्रभावित होता है। कुछ इसी वजह से मेरे अभिष्ट मित्र, शुभेच्छु, सहकर्मी, सहयोगी, साहित्यकार, पत्रकार, व्याख्याता, न्यायाधीश, अधिवक्ता तथा अन्य प्रबुद्धजन अपनी जिज्ञासा के साथ हमसे मिलने की कृपा करते हैं या दूरभाष पर अपने सवालों को मेरे समक्ष प्रस्तुत कर उत्तर की अपेक्षा करते हैं। मैं भी यथासंभव उनके प्रश्नों के उत्तर देकर उन्हें संतुष्ट करने का प्रयास करता हूँ और वे हमारे विचारों से अवगत होते हैं। साहित्य के प्रति मेरी आस्था और निष्ठा ने सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के अनेक प्रश्नों के समाधानों से मुझे बाँध रखा है। मैंने उत्तर के माध्यम से प्रयास किया है कि जिनके स्वाधीन विचारों

की नालियों में गंदगी आ गई है वह साफ हो जाए बजाय इसके कि उसे अपनी राह पर लाया जाए जो संभव नहीं है आज के दौर में। मैं इस बात को पाठकों के समक्ष इसलिए प्रस्तुत कर रहा हूँ, क्योंकि आज व्यक्ति स्वयं भूलता जा रहा है कि स्वयं उसका चेहरा अपने स्वरूप में कैसा था। वह याद करे कि उसे मायावी यथार्थ की स्वर्ण-मरीचिकाओं ने कैसे घेर लिया और वह उसके पीछे भागा जा रहा है। दरअसल, आज मनुष्य का चिंतन व्यक्तिवाद पर खड़ा है, जो मनुष्य को तोड़ती है जोड़ती नहीं। मनुष्य जब अपनी स्मृति इतिहास के हाथों बेच देता है तभी प्रगति की छलना प्रारंभ होती है।

मौजूदा दौर के भारतीय समाज का प्रायः हर व्यक्ति अपने जीवन में विभिन्न समस्याओं को लेकर सवालों-जवाबों के बीच घिरा रहता है। सच तो यह है कि उसका पूरा जीवन सवालों व जवाबों की श्रृँखला है ठीक उसी प्रकार जैसे कोई पक्षी जब आकाश में उड़ान भरता है, तो वह कुछ सवाल पूछता है और उसे जवाब की तलाश रहती है। जब वह शाम में अपने घोसलों में वापस आता है, तब भी वह कुछ सवाल लिए होता है। उसी प्रकार मनुष्य भी चाहे वह राजनेता हों, साहित्यकार या पत्रकार, कलाकार हों या चित्रकार, किसान हों या मजदूर, सभी को अपने प्रश्नों के उत्तर चाहिए, क्योंकि वह उत्तर पाकर अपनी समस्याओं का समाधान निकालता है, परेशानियों से निजात पाता है और ताकत एवं प्रतिष्ठा हासिल करता है। इस प्रकार जिज्ञासा, जिज्ञासा की तृप्ति तथा सूचना एवं ज्ञान का आदान-प्रदान मानव ही नहीं प्रायः सभी प्राणियों के स्वभाव के प्रेरक अंग हैं, जिसके परिणामस्वरूप हम घटनाओं, दुर्घटनाओं और रहस्यों आदि को जानने के लिए न केवल उत्सुक रहते हैं, बल्कि सूचना एवं ज्ञान आदि के आदान-प्रदान के लिए जिज्ञासु भी रहते हैं।

आज के परंपरागत समाज में जहाँ लोग आत्मकेंद्रित होते जा रहे हैं, क्या वैयक्तिकता उसके जीवन की समस्याओं का समाधान हैं? बहुलतावादी और बहुसांस्कृतिक एवं बहुधार्मिकवाले इस देश में क्या असहिष्णुता को बढ़ावा दिया जा सकता है? क्या आर्थिक आजादी का रास्ता सुगम है? अदालतों में दशकों तक लंबित मामलों की स्थिति में क्या इस देश के गरीबों-वंचितों को न्याय मिलना संभव है? क्या बाजारवाद ने पूरे समाज को वस्तु में परिवर्तित नहीं कर दिया है? क्या मौजूदा व्यवस्था में हर वस्तु बिकाऊ और हर व्यक्ति खरीददार नहीं है? क्या पति, पर्दा और परिवार से आजाद होती स्त्री बाजार और बाजारवाद की जद में 'बाजारू' नहीं बन गई

है? क्या गुमशुदा बच्चों के चेहरों पर मुस्कान का संदेश लेकर भारत लौटी मूक वधिर गीता के आने के बाद देश के हजारों गुमशुदा तथा अनाथ बच्चों के चेहरों पर मुस्कान आएगी ?

इन तमाम प्रश्नों से टकराना आज अपरिहार्य है। इन प्रसंगों को प्रष्टाओं के प्रश्नोत्तर के माध्यम से मैंने अपने विचारों को रेखांकित किया है और यथार्थ से पाठकों को अवगत कराया है कि किस प्रकार स्वार्थ, वंशवाद, परिवारवाद तथा एन केन प्रकारेण धनार्जन का सत्ता की चाह ने राजनीतिक दलों एवं उसके राजनेताओं द्वारा समाज को व्यक्तिविहीन कर दिया जाता है और आम जनता सत्तातंत्र की बंदी हो जाती है। ऐसी विषम स्थिति में हम अपनी वाणी और विचारों को लोगों तक पहुँचाना चाहते हैं। अपने उत्तरों को इन पाँच पुस्तकों में संगृहित करने का मेरा यही उद्येश्य है। क्योंकि ये पुस्तकें हमारे इस उद्येश्य को कार्यरूप में परिणत करने में अच्छी-खासी अपनी भूमिका निभा सकती हैं, ऐसा मेरा विश्वास है।

मौजूदा दौर के भारतीय समाज में व्याप्त आधुनिकता और पश्चिमी संस्कृति के अँधानुकरण को मैं छिछले लोगों की छिछली मानसिकता का एक ज्वार भर मानता हूँ जो समय के साथ उतर जाएगा, किंतु मुझे चिंता इस बात को लेकर है कि ज्वार अपने साथ-साथ क्या-क्या बहा ले जाएगा, किसे-किसे डुबोएगा और उतरने के पश्चात् तट पर निर्जीव सीप-घोंघे अथवा मोती न जाने क्या-क्या छोड़ेगा?

मेरा मानना है कि भारतीय समाज में आधुनिकता किसी वैचारिक क्रांति का प्रतिफलन न होकर एक अँधानुकरण मात्र है, जिसकी कोई वैचारिक--सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हमारे पास नहीं है। आधुनिकता के इस खेल में हमारी भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक पहचान दांव पर लगी हुई हैं। चिंता इस बात की है कि आधुनिकता की इस आँधी में हम अपनी सांस्कृतिक पहचान और गरिमा को कहीं मटियामेट तो नहीं कर रहे हैं? ऐसी स्थिति में हमारे भारतीय राष्ट्र का क्या होगा? इसीलिए तो इस पुस्तक के सांस्कृतिक खंड में कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति पद पर रहे डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार के एक प्रश्न के उत्तर में चेतावनी के स्वर में मैंने कहा है-''इस अपसंस्कृति से बचने के लिए हमें इसकी तत्काल समीक्षा करनी होगी, वरना जब अपसंस्कृति का जुनून चढ़ जाएगा, तो इसे रोकना मुश्किल होगा, क्योंकि अपसंस्कृति का यह एक ऐसा दलदल है जिसमें अगर इंसान एक बार फँस जाए, तो फँसता ही चला जाता

है। मगर सौभाग्य से संस्कृत का उन्नयन हो जाए, तो इस अपसंस्कृति रूपी दलदल से इंसान पीछा छुड़ा सकता है।'' सच मानिए संस्कृत से ही समाज का आंतरिक विकास और राजनीति के वाह्य विकास की गति संभव है। इसके बिना विकास एक स्वप्न ही बना रहेगा।

आइए, अब हम एक नजर डालते हैं इस देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, वैचारिक, नैतिक और तमाम प्राकृतिक स्थिति पर। इकबाल ने कभी लिखा था कि 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी, सदियों रहा है दुश्मन दौरे-ए-जहाँ हमारा।' वह न मिटने वाली हस्ती किस बात की रही होगी। शायद इससे उनका आशय हिंदुस्तान के त्याग, बलिदान और उसकी आध्यात्मिक ऊँचाई से रहा होगा। पर हमारी वह हस्ती तो आज गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, भ्रष्टाचार और मानव विकास के अन्य वैश्विक सूचकांक में हमें सबसे निचली पायदान पर हाँफती मिल रही है। यह बात अलग है कि इसरो द्वारा 104 उपग्रह छोड़कर विश्व कीर्तिमान बनाने जैसी उपलब्धियों से हमारी सदियों की हस्ती का भी पता चलता है, पर वह सतत नहीं है।

भारतीय समाज के वर्तमान परिदृश्य पर नजर डालने से तो ऐसा लगता है कि बाजारवाद अपनी शातिर चाल में लगभग सफल दिखाई दे रहा है। नई मूल्य व्यवस्था में मुक्त बाजार को बढ़ावा देने के दौर की वजह से पारिवारिक विघटन होता जा रहा है और संबंध के नए संविधान बन रहे हैं। प्राय: प्रत्येक समाज के पारिवारिक रिश्तों में दरार पड़ रहे हैं और पारिवारिक मूल्य भी छीज रहे हैं। आज तो लोग अपने आधुनिकता के नाम पर निचोड़ लिए गए जीवन में पल दो पल के प्रेम की तलाश करते हैं वेलेंटाइन दिवस के अवसर पर। आज युवा नहीं जानना चाहते हैं कि फूल कैसे खिला, आज वे सिर्फ महसूस करना चाहते है उसकी खुशबू। आज के युवक और युवतियाँ केवल प्रेम संबंध टूटने के गीत गाते हैं और आज के 'सात खून माफ' की प्रियंका चोपड़ा भी सच्चे प्रेम की तलाश में आजीवन भटकती रहती हैं।

आज हर चीज बिकाऊँ बनाई जा रही है या वह ऐसी बनने को विवश है। हमारी सभ्यता-संस्कृति के मूल्य भी बिखर रहे हैं। धार्मिक कट्टरता समाज को बाँटने के लिए कटिबद्ध दिखाई दे रही है। सत्य, न्याय, भाईचारा, विश्वास, सहकारिता, प्रेम और अहिंसा जैसे मूल्य परिधि पर हैं। पर्यावरण एक विराट संकट की तरह मुँह बाए सामने खड़ा है। साहित्यिक

पत्रकारिता का कर्तव्य केवल स्थापित और चमकदार नामों के पीछे भागना है। जो साहित्यकार किसी दौर में अत्यंत महत्वपूर्ण सृजन कर चुके हैं या कर रहे हैं, पर साहित्यिक तिकड़में भिड़ाने में प्रशिक्षित नहीं हैं, वे लगभग भूला दिए गए हैं या भूला दिए जा रहे हैं। फिर भी वे साहित्यिक राजधानियों से दूर और बाहर छोटे कस्बे या गाँव में बिना किसी शिकायत के अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इनके पास आज भी कठिन जीवन संघर्ष है, पर उनके जीवन में अपूर्व शांति है। आधुनिक भारतीय संस्कृति के रूप में आज जो कुछ हमारे पास है, वह प्राचीन विरासत नहीं है। अब तो जन्मदिन मनाने के तरीके भी बदल गए हैं। पुरानी पद्धति में दीप जलाए जाते थे, पर आज प्रत्येक तबके के समाज में मोमबत्ती बुझाकर 'जन्मदिन मोबारक हो' मनाने की प्रथा घर कर रही है बड़ी तेजी के साथ।

इसी प्रकार आजादी के बाद औपनिवेशिक शहर अपने साथ अपने मूल्यों का नया समीकरण लेकर आए, जो पश्चिम से आयातित था। मनुष्य समाज की यह फितरत है कि वह सदियों से चली आ रही रूढ़ परंपराओं और सामाजिक मूल्यों में मनुष्य व समाज विरोधी तत्वों का अन्वेषण करती रहती है। इसी के फलस्वरूप भारतीय समाज के जहाँ हिंदू समाज में सदियों से चली आ रही सती प्रथा, बाल-विवाह, अस्पृश्यता आदि सामाजिक बुराईयों को कानूनन खत्म किया जा सका, वहीं मुस्लिम समाज में तीन तलाक और बहुविवाह का पढ़ा-लिखा और बुद्धिजीवी तबका समर्थन नहीं करता जबकि दूसरी ओर कट्टरपंथी समूह संविधान प्रदत धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार के तहत अपने सामाजिक रीति-रिवाज और प्रथाओं में किसी भी तरह का छेड़छाड़ या परिवर्तन करने का विरोध करता है। इस दृष्टि से यह मसला आधुनिकतम बनाम परंपरा के बीच टकराव का है। जहाँ तक मैं समझता हूँ यह पूरा मसला इसलिए भी इतना गंभीर और पेचीदा है कि यह व्यक्तिगत और व्यवहार की आजादी से जुड़ा हुआ है, लेकिन जो लोग मुस्लिम पर्सनल लॉ को संविधान के दायरे में लाने की वकालत करते हैं, तो वे धार्मिक रीति-रिवाजों और नागरिक अधिकारों को अलग-अलग नजरिए से देखते हैं। दरअसल कोई भी समाज एक जगह ठहरा नहीं रहता। वह हमेशा गतिशील रहता है और इस रूप में वह समय के साथ परिवर्तनशील रहता है।

इसी संदर्भ में मैं यह भी कहना चाहूँगा कि देश की राजनीति और उसके देखा-देखी समाज के विभिन्न स्तरों पर जिस तरह से महिलाओं का

यौन-उत्पीड़न बढ़ रहा है वह सभ्य समाज के लिए चिंता का विषय है। महिला उत्पीड़न के लिए गैर-जिम्मेवार राजनीति के साथ-साथ हमारा पारिवारिक और सामाजिक परिवेश भी उतना ही जिम्मेदार है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि आधी आबादी की सुरक्षा के लिए हमें समूचे राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य में महिला सुरक्षा से जुड़ी इस शर्मनाक सामाजिक एवं लैंगिक विषमता और विसंगतियों पर विचार कर इसके कारकों की पड़ताल की जाए, ताकि इस समस्या का समाधान निकल सके।

इसी तरह धर्म के नाम पर तेलांगना के वर्तमान मुख्यमंत्री के. चंद्रशेखर राव द्वारा सरकारी खर्च पर अपने पूरे परिवार और आधे मंत्रियों के साथ सरकारी विमान से तिरूपति के वेंकटेश्वर मंदिर जाकर 7 करोड़ रुपए के सोने के आभूषण चढ़ाया जाना और 350 करोड़ रुपए भद्रकाली मंदिर में दान देना तथा पूजा कराने में करोड़ों रुपए खर्च किया जाना कहाँ तक तर्क एवं न्यायसंगत कहा जाएगा, जबकि तेलांगना राज्य पर 1.23 लाख करोड़ रुपए का और हर नागरिक पर 35 हजार रुपए का कर्ज है। यही नहीं नया राज्य बनने के बाद वहाँ के 2700 किसानों ने आत्महत्या कर ली। भले ही मुख्यमंत्री की ये श्रद्धा और भक्ति उन्हें संविधान से अधिकार के तौर पर विरासत में मिली हो, लेकिन ऐसा तब न्यायसंगत होता जब अपनी जेब से ये दान देते। सवाल है कि हम दान किसे दे रहे हैं ? क्या यह सच नहीं कि जिसकी वजह से हमारा और इस दुनिया का वजूद है? बात सिर्फ ईश्वर, अल्लाह और गॉड का नहीं होकर बात यह है कि उस ऊपरवाले जगन्नियंता ने क्या कर्तव्य निर्धारित किए हैं। एक राज्य का होने के नाते एक राजनेता, गरीब, असहाय, कमजोर, जरूरतमंदों के लिए मसीहा बन सकता है। जाहिर है उसे अपने कर्तव्य का निर्वहण सबसे पहले करना चाहिए। पाँच करोड़ की राशि यदि गरीबों के पेट भर सके, गरीब किसानों का कर्ज माफ कर सके, तो उससे बड़ा दान और कुछ नहीं हो सकता। यही है भारतीय राजनीति और उसके राजनेताओं का आचरण जो आमजन को सोचने के लिए विवश करता है जिसे धार्मिक व आध्यात्मिक अध्याय में प्रबुद्धजनों के प्रश्नों का उत्तर देने के सिलसिले में हमने कहा है और अपने विचारों से लोगों की जिज्ञासाओं को अपनी क्षमतानुसार पाठकों को अवगत कराया है। धर्म के संदर्भ में हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि बेशक भारत दुनिया का सबसे बड़ा धार्मिक देश है, लेकिन लोगों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचानेवाले जितने काम यहाँ होते हैं उतना शायद ही किसी अन्य देश में किए जाते होंगे।

एक सांस्कृतिक गरिमाविहीन राष्ट्र इस विराट भूमंडल पर, जहाँ सैकड़ों अजगर इसे निगल जाने को मुँह फाड़े तैयार बैठे हों, कैसे अपनी आजादी और संप्रभुता की रक्षा कर पाएगा? आधुनिकता चाहे लाख अच्छी हो, किंतु आधुनिकता की यह कीमत नहीं दी जा सकती, दी जानी चाहिए भी नहीं। आखिर तभी तो इन्हीं सब सवालों को लेकर, जब मुझे मौका मिला, तो मैंने बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष के तीन साल के कार्यकाल में बोर्ड की ओर से लगातार तीनों साल पटना के श्रीकृष्ण स्मारक भवन के दोनों सभागारों के साथ-साथ तारामंडल सभागार में राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित संस्कृत सम्मेलन में देश के कोने-कोने से संस्कृत एवं हिंदी के उद्‌भट्ट विद्वानों को सादर आमंत्रित कर हजारों सुधी श्रोताओं एवं संस्कृत से जुड़े शिक्षकों-प्राध्यापकों के बीच संस्कृत, संस्कार और संस्कृति के विभिन्न आयामों पर विचार-विमर्श और आधुनिकता पर विचार-मंथन कराने का सफल प्रयास किया जिसकी अनुगूँज आज तक लोगों में सुनाई पड़ती है।

कहना नहीं होगा कि साक्षात्कार के आधार पर तैयार इन पाँचों पुस्तकों में कुल सोलह विभिन्न विषयों पर लोगों के प्रश्नों के उत्तर देने में न केवल अपने समय की कुटिलताओं को, राजनीति को, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मुद्‌दों व समस्याओं को, समाज को, व्यक्ति को उसके पल-पल बदलते स्वरूप को ईमानदारी से हमने परखने की कोशिश की है, बल्कि उत्तर को अपने समय का आईना बनाने की पहल की है। दरअसल, समाज में ऐसे बहुत सारे लोग हैं, जो मानसिक जगत में ही अपनी अकुलाहट में जीते हैं और उनके विचार, उनके मनोजगत में ही ज्वार-भाटे की शक्ल लेते हैं। वे उधेड़-बुन में लगे रहते हैं तो उलझनें बढ़ जाती हैं और उनसे निजात पाने के लिए अँधेरे में ही निकल पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में प्रश्नकर्ताओं द्वारा हमारे समक्ष प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तर से अकुलाहट में जीते लोगों को न केवल राहत का अहसास होता है, बल्कि प्रश्नकर्ताओं की दमित इच्छाएँ भी तृप्त होती हैं।

लोकतांत्रिक प्रणालीवाले भारत जैसे देशों में जहाँ व्यक्ति को वाणी की स्वतंत्रता प्राप्त है, किताबों एवं अखबारों का महत्व सर्वाधिक है। यह निर्भीक जनतंत्र की वाणी है तथा दुनिया भर में हो रहे क्रिया-कलापों का सच्चा दर्पण है जिसने आजादी के पूर्व और आजादी के बाद भारतवर्ष की राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में आशातीत योगदान दिया है। पुस्तकें मार्गदर्शक के तौर पर भी काम करती हैं। कुछ इसी वजह से प्रश्नोत्तर को पुस्तक का रूप दिया गया है।

रचनाकार हों या पत्रकार उन सभी ने अपने जीवन-प्रवाह में जो मानवीय अनुभव प्राप्त किए हैं वे उसके जीवन की वास्तविकताओं की दिशाओं को न केवल मोड़ते हैं, बल्कि उनके मन में कदम-कदम पर प्रश्नों की रचना करते हैं। इसलिए जब ऐसे लोग व्यक्तिगत जीवन में उत्पन्न प्रश्नों का उत्तर खोजते हैं, तो व्यक्ति और समाज के संबंधों में उपस्थित होने वाले अंतर्विरोध को सुलझाने की प्रक्रिया में समकालीन सामाजिक-राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों और ऐतिहासिक विकास से जुड़े बिना नहीं रह सकते। ऐसे लोगों के प्रश्नों के उत्तर देने के दौरान मैंने अपने अनुभूत जीवन की निरंतरता में से जीवन-खंडों को उठाकर अभिव्यक्ति दी है और साक्षात्कार को जीवंतता एवं विविधता दी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि साक्षात्कार में इस देश की जनता के दुःख, संघर्ष, आकांक्षाओं को अंकित करने का प्रयत्न किया गया है। मुझे पूरी उम्मीद है कि आने वाले समय में इस कृति की सार्थकता सिद्ध होगी, क्योंकि प्रष्टाओं के उत्तर में मैंने इंसानियत की धुँआती आँखों की पीड़ा को उकेरा है।

साक्षात्कार विधा में इधर आई पाँच पुस्तकों में पहली 'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर' में जहाँ प्रष्टाओं के उत्तर में राष्ट्रीयता में काले धब्बे लगते जाने की वजह से व्यक्तिगत, साहित्य, भाषा, शिक्षा तथा पत्रकारिता जैसे विषयों पर मैंने अपनी दृष्टि डाली है, वहीं दूसरी पुस्तक 'इंसानियत की धुँआती आँखें' में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक-अध्यात्मिक, नैतिक, वैचारिक तथा प्राकृतिक विषयों संबंधित प्रश्नों के उत्तर में इंसान की पीड़ा को मैंने उजागर करने की कोशिश की है। इसी प्रकार तीसरी पुस्तक 'राष्ट्रीय राजनीति' में राष्ट्रीय मुद्दों एवं भारतीय राजनीति से जुड़े प्रश्नों पर प्रकाश डाला है और चौथी पुस्तक 'वैश्विक कूटनीति' में अंतरराष्ट्रीय मुद्दों से जुड़े प्रश्नों का खुलासा किया गया है। पाँचवीं पुस्तक 'उम्मीदें जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले' में न्यायपालिका और सरकारों के फैसलों पर दृष्टि डाली गयी है।

दरअसल बंजर धरती को उर्बर बनाने की चुनौती स्वीकारना ही सर्जक का सबसे बड़ा धर्म है। राह कठिन है, इसके बावजूद मेरा विश्वास दृढ़ है। ऐसे वक्त मुझे याद आ रही है डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कविता के संकलन-'विश्वास बढ़ता गया' की निम्न पंक्तियाँ-

'पथ की सरलता देखकर, दो-चार डेग जब बढ़ गया
तब दृष्टि पथ के सामने, आकर हिमालय अड़ गया
पग के अथक अभ्यास पर, विश्वास बढ़ता ही गया'

इसी संदर्भ में मैं इस बात को भी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना लाजिमी समझता हूँ कि हमें जो साहित्यिक परिवेश मिला है उसे निर्मित करने में हमसे पहले के बेशुमार साहित्यकारों का गहरा योगदान है। मेरी यह कोशिश रहती है कि उनके योगदान और उनके कृतित्व को याद रखूँ और उस धारा को सुखने से बचाए रखूँ, जो हमें सरसब्ज बनाए रखती है और हमारे बाद आने वालों को भी सरसब्ज बनाए रखेगी। मगर खेद की बात यह है कि भारत की राजनीति और सामाजिक जीवन में प्राचीन ज्ञान और वर्तमान के बीच ऐसे सेतु बनाए गए हैं, जो प्राचीन के उस गौरवशाली ज्ञान तक पहुँचना तो दूर, वर्तमान को भी नष्ट कर देने का काम किया जा रहा है। जरूरत है ऐसे विचार की, जो भारत को सम्यक रूप से आधुनिक होने और रूढ़िमुक्त करे।

इन उत्तरों से इंसानियत की धुँआती आँखों को यदि थोड़ी भी शीतलता मिलती है, तो इन कृतियों की सार्थकता समझी जाएगी और उसका श्रेय मुख्य रूप से प्रबुद्ध प्रष्टाओं को तो जाएगा ही, साथ ही इन कृतियों पर डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम', डॉ. रामनिवास 'मानव', डॉ. एल. एन. शर्मा, डॉ. साधुशरण, डॉ. गोपाल शरण सिंह, डॉ. शाहिद जमील, डॉ. बलराम तिवारी, डॉ. अरुण कुमार भगत, विजय कुमार सिंह, अखिलेश्वर प्रसाद, उमेश्वर प्रसाद सिंह, अलख नारायण झा, मनोज कुमार तथा उपेन्द्र नाथ सागर जैसे हमारे शुभेच्छुओं को भी जाएगा जिन्होंने अपनी शुभाशंसा, अभिमत तथा अपने सुझावों से हमारा मनोबल बढ़ाया है और शब्द-संयोजन में सहयोग किया है। इन पुस्तकों के प्रकाशक, मुद्रक तथा साज-सज्जा में सहयोग करने वाले शुभेच्छुओं के प्रति भी हम आभारी हैं। पाठक स्वयं इसे पढ़कर फैसला करें। हमारी मंशा भी यही है कि 'उत्तर' बोले, हम नहीं।

संपर्क :
संस्थापक संपादक, 'विचार दृष्टि'
संस्कृति, ए,164, ए.जी.कॉलोनी,
शेखपुरा,पटना-800025, मो.-9431037221

(सिद्धेश्वर)
पूर्व अध्यक्ष
बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड
पटना

अभिमत

लोक के प्रति इस कृति में लेखक की प्रतिबद्धता

□ डॉ. गोपालशरण सिंह

भारत जैसे देश में जहाँ धर्म योनि से जुड़ा हो, सामाजिक व्यवस्था की नींव योनि-आधारित हो, वहाँ धर्म को नकारा नहीं जा सकता। सिद्धेश्वर जी ने इस पुस्तक के धार्मिक अध्याय में स्वीकार किया है। सिद्धेश्वर जी के सर्जनात्मक संसार में मानवीय प्रश्नों के लिए आकुलता तो है ही, भूमंडलीकरण और उत्तर आधुनिकता के इस दौर के कई ज्वलंत, मानवीय, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्न उठाकर प्रबुद्धजनों ने अपने सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक उद्येश्यों का परिचय दिया है। मानवीय और सामाजिक मूल्यों के विघटन की ही यह चिंताकुलता है कि वे आमजन के जीवन लोमहर्षक त्रासदी को देखकर मौन नहीं रह सके, क्योंकि मानवता और सामाजिक व्यवस्था पर भी प्रश्नचिह्न लगता है। निम्न एवं मध्यवर्गीय परिवेश ऐसा है, जहाँ संकीर्ण सोच और संकुचित विचारों से जीवन की दिशा निर्धारित होती है। यही नहीं यहाँ सामाजिक मर्यादाओं के प्रश्न जीवन की खुशियाँ छीनते हैं और धार्मिक विडंबनाओं के बीच यहाँ मानवता का ह्रास होता है।

इसी प्रकार लोकतंत्र में राजनैतिक विडंबनाएँ, नेताओं की स्वार्थपूर्ति और उनके चरित्र के दोहरेपन की विसंगतियाँ आमजन के जीवन को भी त्रासद बनाती हैं। आमजन की इसी लोमहर्षक त्रासदी के साथ सामाजिक राजनैतिक विडंबनाओं की अंतहीन करुणा प्रष्टाओं के प्रश्नों के माध्यम से उत्तरदाता सिद्धेश्वर जी अपने संवदेनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना के बल पर उत्तर देते हैं जिनसे करुणा और स्तब्धता की स्थिति निर्मित होती है। इन्हीं सामाजिक विसंगतियों की वजह से आम आदमी के संवेदनात्मक संसार के साथ घर और समाज तथा उसके सपने छीन जाते हैं और अपने अस्तित्व को बचाने के लिए अपमान और तिरस्कार की जिस पीड़ा से वे गुजर रहे हैं सिद्धेश्वर जी अपने उत्तर के माध्यम से उसी पीड़ा को राजनीतिक दलों और उसके नेताओं के साथ-साथ सत्ता पर बैठी सरकार तक पहुँचाते हैं। इस प्रकार आम आदमी के जीवन की मार्मिकता और त्रासदी का सारा संसार

रचा-बसा है, जिसके केंद्र में मनुष्यता को बचाए रखने और मानवता के ह्रास संबंधी प्रश्नाकुलताएँ, संघर्ष और बेचैनी की स्थिति निरंतर बनी हुई है। उनकी उदासी और खामोशी की पीड़ा को उपभोक्तावादी यह समाज समझ भी पाता तो कैसे? ऐसी स्थिति में इन कृतियों में प्रस्तुत उत्तरों से समाज से सत्ता तक के कान खड़े होते हैं और फिर राजनीतिक पार्टियों को समाज की आँख में जमे तिल की शल्यक्रिया करने में आसानी होगी।

सिद्धेश्वर जी का मानना है कि सही काम करने से उन्हें हमेशा सर्वश्रेष्ठ काम करने में मदद मिलती है। कुछ इसी को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सृजन का काम अख्तियार किया है और यह कृति उसी का प्रतिफल है। सृजन से उन्हें यह भरोसा मिलता है कि दृढ़-संकल्प और साहस जैसी उपलब्धियाँ साकार कर सकते हैं और कैसे नामुमकिन को मुमकिन बना सकते हैं। मुझे खुशी इस बात की है कि ऐसे आत्मीय एवं हिंदी साहित्य के जीवंत हस्ताक्षर सिद्धेश्वर जी का उदार सान्निध्य मुझे प्राप्त है। मैं अपने को सौभाग्यशाली इस माने में भी मानता हूँ कि प्रबुद्धजनों द्वारा इनसे साक्षात्कार के दौरान पूछे गए प्रश्नों के उत्तर के आधार पर तैयार इस कृति 'इंसानियत की धुँआती आँखें' पर मुझे भी अपने अभिमत व्यक्त करने का मौका मिला है।

सिद्धेश्वर जी एक हरफनमौला रचनाकार है जिन्होंने कविता में खासतौर पर हाइकु और सेन्र्यू विधा के अतिरिक्त, संस्मरणात्मक निबंध, आलेख, यात्रा-वृतांत आदि में इनकी सक्रियता व्यापक है। ऐसे में यह और भी कठिन है कि इनकी सृजनशीलता का उचित मूल्याँकन हो। सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा प्राकृतिक संबंधि इनके उत्तरों को जब मै देखता हूँ तो वे ताजगी से भरी भाषा और जीवन के नानाविध क्षेत्रों पर इनकी निगाह गई है। उत्तर के कथन में नएपन के साथ मामूली लोगों के दुखों को देखने-समझने का दुर्लभ सामर्थ्य। जबकि जबसे विचारधारा को पुरानी बात समझने का चलन आया है तब से भला मामूली लोगों के जीवन में कौन झाँके?

धर्म और साम्प्रदायिकता तथा संस्कृति से जुड़े प्रश्नों के जो इनके उत्तर हैं वे काबिलेतारीफ तो हैं ही, सत्य भी हैं। असल में उपभोगमूलक सभ्यता और पश्चिम से आयातित संस्कृति के त्वरित सुख लेने का जो रूप इन्होंने दर्शाया है वह पाठकों को कुछ सोचने के लिए विवश करता है। जिस उलझी सच्चाई का हमें सामना करना पड़ता है उसे अनेक स्तरों पर सिद्धेश्वर जी देखते हैं और उदघाटित करते हैं।

सिद्धेश्वर जी के उत्तर से उनकी विचारधारा स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। वे मानते हैं कुलीन सामंतों का परजीवी समाज, प्रगति का सबसे बड़ा दुश्मन है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि कुलीनों, सामंतों की सत्ता समाप्त हो और लोकतांत्रिक समतामूलक व्यवस्था कायम हो। हालांकि हमारे भारतीय संविधान में इसी लोकतांत्रिक समतामूलक व्यवस्था का प्रावधान है, लेकिन वह कार्यरूप में परिणत नहीं हो पा रही है। सिद्धेश्वर जी के उत्तर से ऐसा स्पष्ट होता है कि इसके लिए अहिंसक तरीके से आक्रामक प्रतिरोध जरूरी है। लोक के प्रति इनकी प्रतिबद्धता का इससे पता चलता है और यह भी स्पष्ट होता है कि वे एक सुलझे, संयमित तथा धैर्यशील समाजवादी की तरह अराजक हिंसा तथा अनावश्यक रक्तपात से परहेज करते हैं और कहते हैं कि अहिंसक क्रांति ही एक विकल्प बचता है। यह भी तभी संभव है, जब जनता जाग्रत हो और उसे संघर्ष के लिए प्रशिक्षित किया जाए तथा वह अपने कर्तव्य तथा मूल अधिकारों को समझे। मुझे ऐसा लगता है कि क्रांति के इतने सघन, संतुलित तथा तर्कसंगत विचार रचनाकारों में कम ही देखने-सुनने को मिलता है। इस लिहाज से देखा जाय तो इनके इरादे, उम्मीदे तथा सोच बहुत ही उत्कृष्ट हैं। हर समय सिर्फ अपने लाभ के बारे में ही सोचना इनका जीवन-लक्ष्य नहीं है।

सिद्धेश्वर जी ने जो प्रष्टाओं के उत्तर प्रस्तुत किए हैं उसमें ध्यान देने की बात यह है कि इनके उत्तर की भाषा, शैली, शब्द विन्यास, संरचना तथा भाव-व्यंजना अति सहज-सरल हैं। इसलिए कुल मिलाकर देखा जाए, तो ज्यों-ज्यों खासतौर पर भारत में लोकतांत्रिक तथा सामाजिक न्यायप्रिय सरकारें बनेंगी, सिद्धेश्वर जी से साक्षात्कार के आधार पर तैयार इस कृति का महत्व बढ़ेगा और जनता की पक्षधर सरकारें इनके विचारों से प्रेरणा लेंगी। हमारी शुभकामना सदैव इनके साथ है। दीर्घायु रहकर ऐसी ही रचनाएँ लोगों के समक्ष प्रस्तुत करते रहें, ऐसी मेरी मंगलकामना है। विश्वास है साक्षात्कार के आधार पर तैयार प्रस्तुत कृति के साथ अन्य कृतियों का भी साहित्य जगत में स्वागत होगा।

डॉ. गोपाल शरण सिंह
ग्राम+पत्रालय-नालन्दा
जिला- नालन्दा, बिहार।

अभिमत

आमजन के मन की व्यथा गहराई में जाकर रेखांकित

□ डॉ. हरि सिंह पाल

लेखक एवं कलाकार समाज को नई विचारधारा से जोड़ते हैं। आज जब भाषा, साहित्य एवं कला पर मंडराते खतरों पर चिंता जताई जा रही है, तो सिद्धेश्वर जी जैसे जीवंत साहित्यकार उम्मीद जगाते हैं। वैसे भी भारत जैसे एक विकासशील देश के लिए यह आवश्यक है कि नए विचारों का प्रवाह लगातार बना रहे।

प्रस्तुत पुस्तक-'इंसानियत की धुँआती आँखें' में सिद्धेश्वर जी से किए गए साक्षात्कार के दौरान प्रबुद्धजनों द्वारा समाज, संस्कृति, धर्म व अध्यात्मक तथा प्रकृति आदि से संबंधित पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में नए विचारों का प्रवाह बड़ी खूबसूरती के साथ दिखता है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के आधुनिक पक्षों से संवाद स्थापित करने का पूरजोर प्रयास किया है। इसी प्रकार धर्म से संबंधित जो प्रश्न इनसे पूछे गए हैं उनपर इन्होंने दो-टूक उत्तर देते हुए धर्म की कट्टरता, अँधविश्वास और पाखंड पर अच्छा-खासा प्रहार किया है। हालांकि इनकी इस पृष्ठभूमि के बाद भी वह अध्यात्म में गहरी आस्था रखते हैं। वह स्वयं कहते हैं कि वह आध्यात्मिक हैं तो वह यह कहना नहीं भूलते कि वह धार्मिक नहीं हैं। वे संस्कार और रीतियों को मानते हैं। ऐसा नहीं है कि वे एक सर्वोच्च शक्ति के अस्तित्व को नहीं मानते जो यह दुनिया चला रही है, इस सर्वोच्च शक्ति पर इनका पूरा विश्वास है। उन्हें पता है कि जो कुछ वे कर रहे हैं, वह यह शक्ति देख रही है और उसके अनुसार ही वह उनके साथ भी पेश आएगी, उसी प्रकार वह उनकी मदद भी करेगी, उनका ध्यान रखेगी। वह कुछ भी करें, कुछ भी सोचें, पर यह शक्ति उन्हें समय-समय पर सही निर्णय ले पाने में उन्हें मदद भी करती है। अपने स्वास्थ्य पर ध्यान देने वाले सिद्धेश्वर जी उस धर्म को मानते हैं जो उन्हें कर्तव्यों को निभाना और माता-पिता के अतिरिक्त बड़े-बुजुर्गो को सम्मान देना सिखाता है।

सिद्धेश्वर जी के उत्तर से यह स्पष्ट झलकता है कि जीवन का

उद्येश्य सिर्फ अपने और अपने परिवार के भरण-पोषण और उसके प्रति अपने कर्तव्यों के निर्वह्ण में ही खत्म नहीं हो जाता, बल्कि जीवन की सार्थकता इसी में है कि हम अपने अतिरिक्त कितनों के काम आए। हमारी संपन्नता और समृद्धि से कितने और लोग लाभान्वित हुए, कितनों का भला हुआ, महत्व इस बात का है।

एक समृद्ध और अनुशासित समाज का निर्माण तभी हो सकता है जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी को समझे और उसका पूरी तरह निर्वहण करे। अपनी इसी जिम्मेदारी को समझते हुए सिद्धेश्वर जी अपने दायित्व का निर्वह्ण कर रहे हैं। यही कारण है कि वह अपनी व्यक्तिगत आवश्यकता को सीमित करके उन कार्यो को वरीयता देते हैं जो सार्वजनिक व जनहित में हैं। इसी में वह सबका हित समझते हैं। बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहकर उन्होंने कुछ इसी भाव से प्रेरित होकर अपना सराहनीय योगदान दिया।

यह समय आम आदमी का है इसलिए उन्हें भावपूर्ण तरीके से ग्रहण करना होगा। उन्हें अलक्षित करके ही उनकी समस्याओं का समाधान निकाला जा सकता है। कुछ इसी ख्याल से सिद्धेश्वर जी ने आम आदमी के जीवन में रंग भरने की कोशिश की है अपने उत्तर के माध्यम से। बदरंग और उदास आकारों को इन्होंने साहित्यिक बनाया है और उनके आंतरिक स्वयं को गरिमा प्रदान की है। नि:संदेह इन्होंने बहुत ही संवेदनात्मक ढंग से अपने उत्तर के माध्यम से पाठकों के सामने समाज की सच्चाइयों को उजागर किया है और आमजन के मन की व्यथा को गहराइयों में जाकर रेखांकित किया है। आज विकास के पहिए बड़ी तेजी के साथ आगे बढ़ रहे हैं फिर भी आमजन को अपने कार्यक्षेत्रों में सामंतवादी मानसिकतावालों के शोषण का सामना करना पड़ता है। वस्तुतः इसके लिए मौजूदा समाज एवं समाज के खोखले नियम जिम्मेदार हैं जिसकी वजह से वे गरीबी-भुखमरी के चलते नारकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं। बिल्कुल भिन्न तेवर के साथ गहन सामाजिक विश्लेषण भी इनके उत्तर पाठकों को आंदोलित करते हैं, क्योंकि इसमें दयनीय पारिवारिक और सामाजिक स्थिति का मार्मिक चित्रण है।

सिद्धेश्वर जी ने शब्द-साधना कर रखी है आखिर तभी तो इनकी बुद्धि में ऊँचे विचार और ज्ञान भरे हुए हैं। साक्षात्कार के दौरान इनके द्वारा दिए गए विचार के माध्यम से वेदों-उपनिषदों, कुरान और बाइबल तथा इतिहास की घटनाओं एवं लोकसभा-विधान सभाओं की बहसों-बयानों का

हवाला देकर आम आदमी के उत्थान के लिए जो कुछ कहा है, अद्‌भुत है, जानदार है।

घिसी-पिटी सामाजिक मर्यादाओं, सड़ी-गली परंपराओं और कदम-कदम पर व्यक्ति का विकास रोकने वाली वर्जनाओं एवं रूढ़ियों पर प्रहार करने वाले सिद्धेश्वर जी के सामने प्रस्तुत प्रश्नों और इनके द्वारा दिए गए उत्तरों को मैं मंथन-मनन करता रहा और इस नतीजे पर पहुँचा कि इतने कथ्य और तथ्य तो कथा-कहानी और उपन्यास में भी संवेदित और उद्वेलित करने की क्षमता नहीं होगी जो इस प्रश्नोत्तर में संभव है। इसके बिना वह संभव नहीं जो बाँध ले या फिर पाठक जिसमें उब-डूब करते रहे और उत्तर का रस व आस्वाद लेते रहें। रिश्तों के बीच आई दरार या दूरियों और विचलन को या फिर दुनियावी लेन-देन वाली भाषा में कहें, तो मानसिक जरूरतों को पूरा करने के लिए अथवा भटकावों को ये उत्तर बखूबी खुराक प्रदान करते हैं। इनकी चिंता यह भी है कि सामाजिक और सांस्कृतिक भावबोध से छिटककर आत्मकेंद्रित जीवन जीने के हम आदी होते चले जा रहे हैं और हम यह भूल गए हैं कि व्यक्ति से परिवार-समाज-राष्ट्र विकसित होकर विश्वरूप बनता है। राष्ट्र की कुपोषित राजनीति से हमारी सामाजिक चेतना विलुप्त होने लगी और हम अपने स्वार्थ तक सीमित हो गए जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि इन सामाजिक विसंगतियों से न केवल राष्ट्र का समेकित विकास प्रभावित हुआ, बल्कि हम अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान से भी वंचित हो गये। यह तो कहिए कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के आने के बाद इस देश की राजनीति में वर्षो बाद विकास ने भूमिका बढ़ाई है और भारत को राजनीति ने आधारगत जीवन भी दिया है। वैश्विक समर्थन के लिए पहली बार भारत की तरफ से बड़े कूटनीतिक प्रयास हुए जिसमें वैश्विक समर्थन मिला जिसके परिणामस्वरूप मोदी के तीन वर्षो के कार्यकाल में वैश्विक रूप से भारत को भरोसेमंद माना जाने लगा है। यह अविस्मरणीय है।

सिद्धेश्वर जी स्वयं इतने साहस, इतनी गहरी सादगी और इतनी ईमानदारी के साहित्यकार है कि उन्हें न केवल प्रबुद्धजनों का, बल्कि पूरे समाज के लोगों का प्यार और प्रतिष्ठा प्राप्त है। इसकी वजह यह है कि उन्होंने अपनी कृतियों में बड़ी सच्चाई के साथ देश के सभी वर्ग के शोषित, पीड़ित और उपेक्षित लोगों की वेदना और विजय पाने की उनकी इच्छाशक्ति को व्यक्त किया है। इसके साथ ही उन सबके बारे में अपनी कलम चलाई है जो ईर्ष्या, धनलिप्सा तथा उन बुराइयों में फँसे हैं जो वर्षो से अपने श्रम

पर जीने वाले लोगों को विकृत करती आई हैं। ऐसे वक्त मुझे याद आ रही हैं राही मासूम रजा की निम्न पंक्तियाँ जो सिद्धेश्वर जी के लेखन पर सटीक बैठती हैं–

'हमने दिल का सागर मथकर काढ़ा तो कुछ अमृत
लेकिन आयी, जहर के प्यालों में यह अमृत घोले कौन
लोग अपनों के खूँ में नहाकर गीता और कुरान पढ़ें।'

सिद्धेश्वर जी ने अपने दिल का सागर मथ कर काढ़ा तो अमृतरूपी कृति आयी। अब जरूरत है आज जहर के प्यालों में अमृत घोलने वालों की और आज के दौरान पैसा, धर्म, जात-पात और भाषा के घटाटोप अँधेरे में आखिर रोशनी पहुँचाने वालों की, क्योंकि यह दुनिया रटे हुए रास्ते पर ही चलती है और जबतक कोई इस घिसे-पिटे रास्तों के खिलाफ नहीं उठ खड़ा होगा, तबतक यह ऐसी ही चलती रहेगी।

सिद्धेश्वर जी ने अपने उत्तर में जिस भाषा का प्रयोग किया है वह यथार्थ जीवन का सजीव, ओजपूर्ण और प्रभावशाली अभिव्यक्ति करने वाली है। जहाँ तक इसकी शैली का सवाल है, यह सर्वथा नवीन, जीवंत और ओजपूर्ण है। इनके उत्तर की शैली क्रांतिकारी भावना की अभिव्यक्ति करने के लिए भी सक्षम है। उन्होंने पुरानी और घिसी-पिटी शैली नहीं अपनाई है, बल्कि नई शैली को समृद्ध बनाने का प्रयास किया है। अपार संघर्षशीलता, जिजीविषा और मानवता के प्रति गहरी आस्था इनके उत्तर में बार-बार प्रतिध्वनित होती है। सामाजिक प्रतिबद्धता और संवेदनात्मक गहराई की दृष्टि से भी इनके उत्तर उल्लेखनीय हैं।

इसी प्रकार सिद्धेश्वर जी को विकास के नाम पर विनाश की लीला से विरोध है। विकास मुट्ठी भर लोगों के लिए हो और जन-जंगल स्थापित हो, लोगों का सैलाब उमड़ता चला जाए और दाने-दाने को मोहताज हों, तो फिर यह कैसा विकास है और किसका विकास, जो विनाश को बुनियाद पर खड़ा अट्टहास करता अपनी भव्यता में नंगा दिखाई देता है ? दूसरी ओर समाज के बदलते मूल्यों और प्रतिमानों की रोशनी में आँखें चकाचौंध होने लगती हैं और धीरे-धीरे नजर कमजोर होकर देखने से भी इंकार कर देती हैं और उन्हें देखने की ताकत आँखें खो बैठती हैं। सिद्धेश्वर जी ने अपने उत्तर के माध्यम से बदलते नए मूल्यों में पुराने मूल्यों की उड़ती धज्जियों को बड़े बेहतरीन ढंग से प्रस्तुत किया है।

मौजूदा दौर के भौतिकवादी-प्रगतिवादी युग में असहिष्णुता का

समावेश हो गया है और ऐसे परिवेश में रचनात्मकता पिछड़ी जा रही है। फिर भी पुस्तक और केवल पुस्तक ही सांस्कृतिक मूल्यों और भौतिकवाद के मध्य एक मजबूत पुल निर्माण करने में समर्थ हो सकती है और जीवन में मौलिक सौदर्य और मानवीयता को भी सशक्त रूप में स्थापित कर सकती है। इसी के मद्देनजर सिद्धेश्वर जी अपने साक्षात्कार के दौरान पूछे गए प्रश्नों के उत्तर को संकलित कर पुस्तक के रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। दरअसल, पुस्तक संस्कृति को उन्होंने एक प्रबल संभावना के रूप में देखा है और हिंदी साहित्य के प्रति उनकी निष्ठा अमिट है। इस सिलसिले में हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण साक्षात्कार विधा में प्रकाशित पाँचों पुस्तकें पठनीय हैं, क्योंकि पुस्तक के प्रति मोह और ललक शाश्वत है। कारण कि इसका स्पर्श कर पढ़ने का अपना अनुपम आनंद है।

छिहत्तर की जीवन-यात्रा पार कर जाने के बाद भी सिद्धेश्वर जी लोकमत बनाने की प्रक्रिया में अनवरत रूप से अनुरत हैं। वे निश्चित रूप से प्रबुद्धजनों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। लोकचेतना और लोकशक्ति को जागृत करने का उनका प्रयास उल्लेखनीय और प्रशंसनीय है। इतनी अच्छी कृतियों के लिए हार्दिक बधाई।

डॉ. हरि सिंह पाल
684, इन्द्रा पार्क
पालम मार्ग, नई दिल्ली-45
दूरभाष : 011-25039559
मो.-9810981398

अभिमत

निर्मित होती झूठ की बुनियाद पर गलत विचारों की राजनीति

□डॉ.(प्रो.) एल. एन. शर्मा

इस देश के इतिहास के साथ इतनी छेड़छाड़ हुई कि उसके दुष्परिणाम भारत-विभाजन जैसी विभीषिकाओं के रूप में हमने देखे हैं। फिर आजादी के डेढ़-दो दशक के बाद से ही घृणा और झूठ पर टिकी राजनीति ने हमारे राष्ट्र की आत्मा में घृणा के खंजर घोपना जो शुरू किया है उससे झूठ की बुनियाद पर गलत विचारों की राजनीति निर्मित हो रही है जिसे सिद्धेश्वर जी ने साक्षात्कार के दौरान पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है।

भारतीय लोकतंत्र में मध्य एवं निम्न वर्ग के लोगों की विवशता और अपनी अस्मिता की चिंता जिस तरह राजनैतिक हथियार बनती है यह विडंबना प्रस्तुत पुस्तक-'राष्ट्रीय राजनीति' में देखने को मिलती है। शिक्षा, रोजगार, संपत्ति, ऋण, बूढ़ों की पेंशन, बेरोजगार युवाओं का भत्ता आदि के लिए वर्तमान दौर की राजनीतिक व्यवस्था में आमजन को जो जद्दोजहद करना पड़ता है उसे बड़ी संवेदना के साथ उत्तरदाता ने अपने प्रश्नोत्तर में रेखांकित किया है। राजनैतिक विडंबनाएँ, नेताओं की स्वार्थवृत्ति और उनके चरित्र के दोहरेपन की विसंगतियाँ आमजन के जीवन को और भी त्रासद बनाती हैं, लेकिन लोकतंत्र में जनता के गुस्से का भी अच्छा परिणाम नहीं निकलता है। सिद्धेश्वर जी ने इसका भी खुलासा करते हुए अपने उत्तर में कहते हैं-'जनता पार्टी को भी 1977 में जनता ने आपातकाल से क्रोधित होकर ही चुना था। फिर 2013 के दिल्ली विधानसभा चुनाव में अरविंद केजरीवाल और उनकी आम आदमी पार्टी की जीत के उदाहरण भी आपके सामने हैं। इसी प्रकार लालू-राबड़ी सरकार के 15 साल के जंगलराज से जब बिहार की जनता परेशान हो गई और हर तबके में गुस्सा आना शुरू हो गया, तब यहाँ के मतदाताओं ने हर हाल में चुनाव में उन्हें पराजित करने का मन बना लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि चुनाव आने पर नीतीश कुमार के नेतृत्व में बिहार की सरकार बनी। जनता के गुस्से से उपजा कई दलों के

नेताओं का मिश्रित समूह फिर नतीजे देने में नाकाम रहा। इन सभी घटनाओं से तो इसी धारणा को मजबूती मिलती है कि लोकतंत्र में जनता के गुस्से का अच्छा परिणाम नहीं निकलता है।'

जहाँ तक वैश्विक कूटनीति का सवाल है अंतरराष्ट्रीय समुदाय अपने-अपने देश के साथ आर्थिक, व्यापारिक और कूटनीतिक संबंधों को लेकर असमंजस में बने रहते हैं। सभी देशों की सरकार के नीति-नियंताओं को कूटनीतिक कार्रवाई की ओर ज्यादा ध्यान केंद्रित करना पड़ता है। प्रश्नकर्ताओं की ओर से संयुक्त राष्ट्र के कुल 193 देशों में से अधिकांश देशों में इधर हाल के वर्षो में घटित घटनाओं खासतौर पर भारत-पाक के बीच के संबंधों में आई खटास से संबंधित सवालों के दो टूक जवाब सिद्धेश्वर जी ने बड़े सलीके से दिये हैं। आतंकवाद की जननी पाकिस्तान द्वारा अधिकृत कश्मीर को लेकर निरंतर आतंकियों की हैवानियत के बाद भारतीय सैनिकों के लक्षित हमले (सर्जिकल स्ट्राइक) के पूर्व और बाद की घटनाओं पर पूछे गए प्रश्नोत्तर देने में सिद्धेश्वर जी ने अपनी बौद्धिक क्षमता और ज्ञान-साधना का पूरा परिचय दिया है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा विगत दो वर्षो में साठ-सत्तर देशों की यात्रा के दौरान अपनी कूटनीतिक चाल से प्राय: सभी देशों का ध्यान खींचने में सफलता हासिल की है उसी का नतीजा है कि पाकिस्तान आज सभी देशों से अलग-थलग पड़ गया। सिद्धेश्वर जी ने नरेन्द्र मोदी की कूटनीति की सफलता पर अपने बेवाक टिप्पणी देते हुए जो उत्तर दिए हैं वे अत्यंत मार्मिक और प्रासंगिक हैं।

संयुक्त राष्ट्र पर हावी औपनिवेशिक मानसिकता से संदर्भित प्रश्न का उत्तर देते हुए सिद्धेश्वर जी कहते हैं-'संयुक्त राष्ट्र पर औपनिवेशिक मानसिकता आज भी हावी है, क्योंकि पी-5 यानी परमानेंट-5 के पाँच देशों अमेरिका, इंग्लैंड, रूस, फ्रांस और चीन जिनके पास 'वीटो पावर' है संयुक्त राष्ट्र की 1945 में हुई स्थापना के ही समय से उसकी सुरक्षा परिषद के स्थाई सदस्य बने हुए हैं और उनका 'वीटो पावर' इनकी दबंगई का ब्रह्मास्त्र है। इसके आगे बाकी 188 संयुक्त राष्ट्र सदस्यों के सारे हथियार बेकार हो जाते हैं।'

राजनीतिक और वैश्विक प्रसंगों की वर्तमान संदर्भो के अनुरूप व्याख्या करने के लिए मशहूर सिद्धेश्वर जी की यह नवीनतम पुस्तक है 'राष्ट्रीय राजनीति' और 'वैश्विक कूटनीति' जिसमें उन्होंने भारतीय राजनीति और वैश्विक कूटनीति से जुड़ी जिज्ञासाओं के सवाल-जवाब सहज अंदाज में प्रस्तुत किये हैं।

सिद्धेश्वर जी की पूरी कृति में इनकी कलम के निशाने पर हैं हुक्मरान, सियासतदान और सिसकती लोकतांत्रिक व्यवस्था। इन्होंने किसी को नहीं बख्शा है। हिंदी जगत में अपनी बेबाक टिप्पणी के लिए मशहूर तथा हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर सिद्धेश्वर ने बड़ी संजीदगी से भारतीय राजनीति की मौजूदा स्थिति से पाठकों को रूबरू कराया है और सामयिक परिस्थितियों को रेखांकित किया है। इस दुर्लभ साक्षात्कार को प्रकाशित करने के लिए मंगल कामनाएँ। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यथार्थ पर आधारित राजनीति के विभिन्न पहलुओं को समेटे हुए वस्तुस्थिति तथा जमीनी सच्चाई से सिद्धेश्वर जी के उत्तर साक्षात्कार कराते हैं। साक्षात्कार के दौरान इनके समक्ष जो प्रश्न प्रस्तुत किए गए हैं उनके उत्तर में राजनीति का पूरा संसार प्रतिबिंत होता है। एक प्रश्न का उत्तर पढ़ने पर आगे दूसरे प्रश्न का उत्तर पढ़ने की लालसा जागृत हो जाती है। पाठकों की जिज्ञासा उमड़ती-घुमड़ती रहती है कि राजनीति से संबंधित आगे के प्रश्नों पर उनके उत्तर क्या होंगे? अगली कड़ी का बेसब्री से इंतजार रहता है, क्योंकि आजादी के सत्तर साल के बाद भी राजनीतिक परिदृश्य में हाशिए के लोग अबतक हाशिए पर हैं। राजनेताओं द्वारा कही गई उद्धार की बातें एक छलावा से अधिक कुछ नहीं हैं।

अपने समय और समाज की ज्वलंत समस्याओं और जनमानस को उद्वेलित कर रहे सिद्धेश्वर भारतीय राजनीति की मौजूदा स्थिति पर जब अपने विवेकपूर्ण चिंतन का स्वर मुखर करते नजर आते हैं तो आश्वस्ति होती है कि अभी गणतंत्र में विचारों की कमी नहीं है। वैचारिक लेखन के माध्यम से वह पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं। दरअसल, समाज को चेतनशील बनाने का कार्य निष्ठा से इनके उत्तर में करता दिखाई देता है और व्यवस्था परिवर्तन का सूत्र पाठकों के भीतर रखने में सहायता करता है।

साक्षात्कार के आधार पर तैयार प्रश्नोत्तरी के सभी पुस्तकों को जब मैंने पढ़ा तो मन प्रफुल्लित इसलिए हुआ कि यदि समाज में कहीं समरसता, अनेकता में एकता, विविधता, वैश्विक कूटनीति और राष्ट्रीय राजनीति की विसंगतियाँ देखने को मिलती हैं तो उसका श्रेय सिद्धेश्वर जी जैसे साहित्यकारों के सत्प्रयास को जाता है, क्योंकि इनकी कृतियों के उत्तर ऐसी भाषा में दिए गए हैं कि संपूर्ण जन समुदाय को उनकी अपनी अंतरात्मा की भाषा जान पड़ती है। इनके उत्तरों से ऐसा जान पड़ता है कि खराब-से-खराब परिस्थितियों में भी आशा बची रहती है और जीवित रहना प्रयास करने योग्य है। इनके उत्तर में परिपक्व अभिव्यक्ति देखने को मिलती है और अनुभव

की ताजगी पठनीयता को बनाए और बचाए रखती है, क्योंकि ये जो कुछ लिखते हैं वह अनुभवों व स्मृतियों के आख्यान हैं। किसी न किसी रूप में लेखक अपने लेखन के रूप में मौजूद रहता है। सिद्धेश्वर जी अपनी जिजीविषा के साथ जीवित रहते हैं। वे लंबे समय से लिखते रहे हैं। आखिर तभी तो कथासम्राट मुंशी प्रेमचंद ने कहा है कि 'मनुष्य स्वभाव से देवतुल्य है। जमाने के छल-प्रपंच और परिस्थितियों के वशीभूत होकर वह अपना देवत्व खो बैठता है। साहित्य इसी देवत्व को अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करता है उपदेशों से नहीं, नसीहतों से नहीं, भावों को स्पंदित करके, मन के कोमल तारों पर चोट लगाकर, प्रकृति से सामंजस्य उत्पन्न करके।' सिद्धेश्वर जी अपने साहित्य के माध्यम से यही तो कर रहे हैं। उन्होंने साक्षात्कार की इस कृति के माध्यम से लोगों के भावों को स्पंदित किया है।

मौजूदा दौर की राष्ट्रीय राजनीति और वैश्विक कूटनीति के बीच इस दुनिया में जहाँ बंदूकों की होड़ लगी हुई है, बम-बारूदों की बहसें जारी हैं, जरूरत है एक ऐसी आवाज की, जो हमारे अंदर की सर्वोच्च को संबोधित हो, जो हमें खुशियों से बात कर सके और जो हमारे संदेहों और हमारे भय से बात कर सके। हमारे सहपाठी सिद्धेश्वर जी एक ऐसी ही आवाज हैं जिन्होंने अपने उत्तर में अपने विचार के साथ-साथ जनता की भावनाओं और राष्ट्र के विरूद्ध किए जा रहे गंभीरतम अपराध और षड्यंत्र को बेहतरीन तरीके से रेखांकित किया है जिसके लिए वह हमारी हार्दिक बधाई के पात्र हैं। हमारी मंगलकामना है कि वह दीर्घायु हों, ताकि उनकी कलम से ऐसी ही कृतियाँ पाठकों के सामने आ सकें। मुझे विश्वास है कि हर दृष्टि से मुकम्मल उनकी कृतियों का साहित्य जगत में स्वागत होगा।

डॉ. (प्रो.) एल.एन.शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, स्नातकोत्तर
राजनीति विज्ञान विभाग
पटना विश्वविद्यालय
पटना

संपर्क:
मकान सं.-..........
लोहिया नगर
(कंकड़बाग कॉलोनी)
पटना-20

शुभाशंसा

सोचने और कहने की निर्भीकता अद्वितीय

□डॉ.(प्रो.) साधु शरण

भारतीय समाज के मौजूदा माहौल में व्यावसायिक मानसिकता न रखने वाले सिद्धेश्वर जी का अनिवार्य योगदान साहित्य और उसके जरिए समाज में सकारात्मक बदलाव के लिए योगदान करना रहा है। वैसे हिंदी साहित्य की कविता, संस्मरण, निबंध आदि विधाओं में तो इनकी अबतक डेढ़ दर्जन पुस्तकें आ चुकी हैं, मगर साक्षात्कार जैसी महत्वपूर्ण विधा में हधर हाल के वर्षो में आई पाँच पुस्तकों में से प्रस्तुत पुस्तक-'इंसानियत की धुँआती आँखें' दूसरी है जिसमें जिज्ञासू विद्वतजनों ने इनसे साक्षात्कार के दौरान सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व अध्यात्मिक, नैतिक, वैचारिक तथा प्राकृतिक विषयों से संबंधित प्रश्न इनके समक्ष उत्तर हेतु प्रस्तुत किए हैं। सिद्धेश्वर जी के द्वारा इन प्रश्नों के जो उत्तर दिए गए हैं वे अत्यंत प्रशंसनीय हैं, क्योंकि वे विद्वतापूर्ण हैं और इनका कथन पूर्णतया सत्य है जिनमें इनकी विचारधारा परिलक्षित होती है।

इसी प्रकार सिद्धेश्वर जी के जो अनुभव रहे हैं और अपने समय में भारतीय समाज और संस्कृति को जिस रूप में इन्होंनें देखा और समझा है वे इनके उत्तर में स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं, क्योंकि वे किसी खेमे या गुट अथवा किसी खास आंदोलन में बँधकर नहीं रहे। इनका सृजन एक स्वाभिमानी लेखक की तरह है। साक्षात्कार में दिए गए सहज उत्तर की तरह इनका सरल, सौम्य, स्वभाव व व्यक्तित्व भी बड़ा प्रभावकारी है।

कभी महालेखाकार कार्यालय में हमारे सहकर्मी रहे सिद्धेश्वर जी को हमने बहुत करीब से देखा है और इधर विगत कई दशक से इनके कार्यक्रमों में भागीदारी के चलते इनके व्यक्तित्व में हमने जो एक और विशेषता देखी है वह यह कि वे कभी लघुत्व (Inferiority Complex) से पीड़ित नहीं हुए। यही कारण है कि इन्होंने सार्वजनिक जीवन जीने के क्रम में भी किसी भी राजनीतिज्ञों की जी-हुजूरी नहीं की और न उनके आगे-पीछे

कभी लगे रहे। राजनेताओं के यहाँ इनका आना-जाना नहीं के बराबर रहा, बल्कि सच तो यह है कि नीतीश कुमार जैसे कद्दावर नेता पटना के पुरन्दरपुर स्थित इनके 'बसेरा' निवास में इनसे मिलने जाया करते थे और सिद्धेश्वर जी एक प्याली चाय से उनका स्वागत करते रहे।

हमेशा से भीड़ के आदमी रहे सिद्धेश्वर जी को कभी भीड़ से या रसूखदार राजनेताओं से इन्हें कभी डर नहीं रहा। इनके इसी स्वभाव की वजह से आज भी इनके निवास पर लोग इनसे मिलने जाया करते हैं और इनसे बातचीत कर उन्हें काफी संतुष्टि मिलती है, क्योंकि इनकी मनोवैज्ञानिक पकड़ गहरी सौंदर्यानुभूति, जीवन के व्यापक रूप में देखने की प्रवृत्ति भावाव्यक्ति की मुखर शक्ति और भाषा पर इनका असाधारण अधिकार देखने को मिलता है और जिसकी अनुगूँज प्रश्नोत्तर में भी सुनाई पड़ती है। इसी वजह से इनके सभी मित्र और शुभेच्छु इनकी प्रतिभा का लोहा मानते हैं। इसलिए मैं इन्हें आधुनिक जीवनधारा का विरल साहित्यकार मानता हूँ। साक्षात्कार के जरिए तो इनकी प्रतिभा जहाँ मुखरित हुई है, वहीं इनकी अगाध विद्वता, सक्षम चिंतन, अनोखी सूझ और परंपरा के समानांतर सोचने और कहने की निर्भीकता अद्वितीय है। साथ ही इनकी और संभावनाओं को जानने-समझने, इनके सृजन-कर्म और इनके संस्कार-स्वभाव की जानकारी मिलती है। देश और काल का सही ढंग से आकलन करने के लिए शायद ही कोई सर्वग्राह्य उपलब्धि अन्यत्र प्राप्त होगी जैसी इनके साक्षात्कार में देखने को मिलती है। सिद्धेश्वर जी अपने स्वभाव में सदैव बने रहने वाले व्यक्ति हैं। प्रस्तुत साक्षात्कार में उन्होंने जीवन की नई चुनौतियों को संवेदना के यथार्थ से रूपांतरित किया है और उत्तर को अपने ढंग का बौद्धिक धरातल प्रदान किया है जिनमें नए जीवन-मूल्यों का सार भी है, प्राचीनता है, तो नवीनता भी और श्रेष्ठता है, तो सक्रियता भी। सच मानिए सिद्धेश्वर जी का सृजन-व्यक्तित्व अपेक्षाकृत मुझे सबसे ज्यादा प्रभावित करता है। मेरे चिंतन, अध्ययन और वैचारिक संप्रेषण के केंद्र में वे सदैव विराजमान हैं, क्योंकि भोग, लिप्सा और महत्वाकांक्षा ने ईमानदारी, सच्चाई, वफादारी और भाई-चारे का आज जिस तेजी से शील-हरण कर लिया है, सिद्धेश्वर जी न तो अपने समय से आँख मोड़ते हैं और न परंपरा एवं जातीय स्मृति की गरिमा से विरक्त होना पसंद करते हैं। उन्होंने शाश्वत जीवन की बहकी उत्तेजना को भी यथार्थ की संवेदना में ढाल कर उसे तीखे व्यंग्य से करुणा में परिणत कर दिया है। सिद्धेश्वर जी सामाजिक प्रश्न के उत्तर में कहते

हैं-अहंकार चाहे धन-संपत्ति का हो या रसूख का, संवेदनाओं का हनन कर देता है। आज देखने में तो आ रहा है कि दबंगई, आर्थिक एवं चारित्रिक भ्रष्टाचार के मामलों में अधिकारी, नेता, मंत्री, विधायक, सांसद एवं उद्योगपतियों के लाड़ले ही अधिकतर लिप्त रहते हैं जिसका प्रमुख कारण है कि पद-प्रतिष्ठा और सत्ता की हनकवाले परिजनों पर उनका दृढ़ विश्वास रहता है कि वह उन्हें बचा ही लेंगे। इसी प्रकार रिश्वतखोरी की प्रवृत्ति ने तो व्यवस्था के हर क्षेत्र में झंडे गाड़ दिए हैं। घूस के लालच में तो पुलिसवाले भी संवेदनहीन हो जाते हैं और वह कोर्ट-कचहरी में देर-सबेर मुक्त हो जाते हैं। ऐसे में संवेदनाएँ कहाँ तक जीवित रह सकते है।

सिद्धेश्वर जी की सजगता में सामाजिक जीवन मूल्यों की चिंता है और उनकी सक्रियता में युग-वेदना की चिंता। इनकी राष्ट्रीयता राजनैतिक नहीं है और इनका राष्ट्रबोध विश्वबोध की मानव-चेतना से ओत-प्रोत है। साक्षात्कार के दौरान इनके द्वारा प्रस्तुत उत्तर पढ़ने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि इनके उत्तरों में उद्दाम जीवनीशक्ति है, जीवनरूपों का विस्तृत और बारीक चित्रण है, उनमें मूल्यों का तारतम्य तथा सम्यक जीवन दृष्टि एवं परिपूर्ण जीवन विवेक है। इनके उत्तर का उद्येश्य वस्तुतः रचना का चिरस्थायी महत्व बनाए रखने का है। सिद्धेश्वर जी से मैं लंबे अरसे से वैचारिक और रचनात्मक रूप से जुड़ा हूँ। सिद्धेश्वर जी सतत प्रक्रिया में विश्वास रखते हैं समाज को बदलने की आहट को अपनी पारखी निगाहों से परीक्षण करते हुए 18 मई, 2017 को सिद्धेश्वर जी छिहत्तर की आयु पार कर सतहतरवें में प्रवेश कर गये हैं। हम उनके शतायु होने की कामना करते हुए प्रस्तुत कृति की शुभाशंसा आमजन के लिए करता हूँ।

संपर्क :
गीता भवन, रोड नं.-1
उत्तरी पटेल नगर
पटना-25

डॉ.(प्रो.) साधु शरण
पूर्व विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान
जैतपुर महाविद्यालय, बी.आर.अंबेडकर
बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार
दूरभाष- 0612-2287204

अध्याय : एक
सामाजिक प्रश्नोत्तर

(१)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि जात-पात तोड़ने को लेकर डॉ. भीमराव अम्बेडकर की मुहिम आज भी प्रासंगिक है?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि जात-पात तोड़ने को लेकर बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर की मुहिम आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि दलित रेखा वाल्मीकि को जब उत्तरप्रदेश के रमाबाईनगर के विवाइन गाँव पंचायत में रसोइए के पद पर नियुक्ति हुई तो उसने सोचा कि गंदगी साफ करने के पुश्तों के काम को छोड़ समाज की अन्य जातियों की तरह बढ़िया काम करेगी, लेकिन स्कूल के प्राधानाचार्य ने जब दलित रेखा से साफ-साफ कह दिया कि, 'देखो रेखा, सरकार ने भले ही तुम्हें बच्चों का खाना बनाने के लिए रखा हो। खाना तुम नहीं बनाओगी........, क्योंकि बच्चे तुम्हारे हाथ का खाना बना हुआ नहीं खाएँगे....तुम स्कूल आओ, झाड़ू-पोछा करो, खाना खाओ और जाओ। खाना हम पकवा लेंगे।' तब रेखा के सपने टूट गए। यह घटना केवल एक स्कूल की नहीं, बल्कि कई क्षेत्रों में घट रही है। विरोध का तेवर देखिए उक्त प्राधानाचार्य ने दलित रसोइए के खिलाफ नब्बे दिन के व्रत का एलान कर दिया था। बच्चों ने स्कूल आना बंद कर दिया था और रेखा को गाँव निकाला और हुक्का-पानी बंद कर देने की धमकी दी गई थी। बच्चों के स्कूल नहीं आने पर दलित रेखा कहती हैं - 'अगर मेरे खाना बनाने से बच्चे नहीं पढ़ेंगे, तो मैं खाना नहीं बनाना चाहती।' काश! रेखा के इस जज्बे को समाज के ठेकेदार अपनाते और सदियों से शोषित, उपेक्षित और हाशिए पर रहने वाले दलितों को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास करते ?

इस प्रकार हम पाते हैं कि तमाम दावों-प्रतिदावों के बीच जात-पात और छूआछूत किसी न किसी रूप में आज यहाँ नहीं तो वहाँ बरकरार है। जात-पात और छूआछूत का दंश झेलते हुए मुकाम पाने वाले संविधान निर्माता बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर सहित अन्य चिंतकों-विचारकों ने समय-समय पर जाति तोड़ने को लेकर अपनी आवाजें बुलंद कीं, किंतु खेद की बात है कि अभी तक समाज की तस्वीर में जाति व्यवस्था विद्यमान है। सभ्य समाज कल भी नहीं बदला था और आज भी अपनी पुरानी सोच को लेकर कायम है। आरक्षण का सवाल आते ही विरोधी स्वर तेज हो जाते

हैं। बाबा साहेब की सोच थी एक समाज हो, जहाँ आदमी की पहचान जाति से न हो।

देश की आजादी का जश्न सात दशकों से लगातार मनाया जा रहा है। आखिर किस बात को लेकर ? क्या उस जश्न में जात-पात मिटाने की बात हम नहीं करते? उत्तर प्रदेश और बिहार में तो 'जाति तोड़ो और समाज जोड़ो' के उद्‌घोषक और समाजवादी आंदोलन के प्रणेता डॉ. राम मनोहर लोहिया के दोनों बड़े शिष्यों का सत्ता पर कब्जा है, फिर भी जाति व्यवस्था तोड़ने की दिशा में बाबा साहेब के प्रयासों को कहाँ आगे बढ़ाया जा सका? इसलिए डॉ. भीमराव अम्बेडकर की मुहिम आज भी प्रासंगिक है और उनके प्रयासों को फिर से जीवंत करना होगा, ताकि शोषित, पीड़ित, उपेक्षित, दलित तथा समाज के हाशिए पर पड़े लोगों को देश व समाज की मुख्यधारा में लाकर देश की प्रगति को और आगे बढ़ाया जा सके।

(२)प्रश्न : क्या समाज का तानाबाना हाल के वर्षो में टूट चुका है? आखिर इसके कारण क्या हैं?

उत्तर: हाँ, हाल के वर्षो में समाज का तानाबाना टूट चुका है। अपनापन और आत्मीयता का बंधन समाज में कहीं बहुत पीछे रह रहा है। दरअसल, विवाह, तिलक अथवा जनेऊ जैसे समारोहों में आस-पास के लोगों की जैसी सक्रियता पहले देखी जाती थी अब पहले जैसी नही रही। लोग बेहद करीबी परिवारी एवं रिश्तेदारों से भी रस्मी तौर पर पड़ोसी धर्म निभाने में यकीन करने लगे हैं।

बचपन में गाँव-कस्बे-टोले में विवाह-शादी के स्वागत, सामूहिक जश्न और बेटी की विदाई के समय सबों की गीली आँखें भी देखी हैं। पार्टी के अलावा रात भर जागकर सिंदूरदान भी देखा है। बारातियों और बेटी की विदाई के बख्त गाँव-घर के सभी लोगों की भीड़ इकट्‌ठी हो जाती थी। इसी प्रकार बारातियों तथा शादी के घर में पाहून के पहुँचने पर उनकी सेवा, संस्कार और संस्कृति का लोग हिस्सा बन जाते थे, मगर समय के साथ ऐसा लगता है जैसे काफी चीजें बदल-सी गई हैं। एक दूसरे की खुशियों में शरीक होने पर मिलने वाली असीमित और यादगार लम्हें अब कोई संजोकर नहीं रखना चाहता। हर कोई आपाधापी में है और औपचारिकता भर निभाकर शीघ्र ही भाग जाना चाहता है।

मानवता और प्रेम हर किसी के शब्दकोश से गायब होते जा रहे हैं। सामाजिक मूल्यों के ह्रास होने की वजह से ये सब हो रहे हैं। समाज में

संकीर्णता के आधार पर हो रहे विघटन को रोकने की दरकार है। सामाजिक संस्कृति ने हमारी संवेदना, संस्कार को जमकर क्षति पहुँचाई है। दरअसल, नाते-रिश्तेदारों के पास एक तो वक्त की कमी है और दूसरी बात यह कि रिश्तों में जो उष्मा पहले देखने को मिलती थी वह आस गायब है। बाहर कमाने-खाने वालों को छुट्टियाँ भी कम मिलती हैं जिसके परिणामस्वरूप समारोह के चार-पाँच दिन पूर्व पहुँचना और एक-दो दिन बाद जाना अब गुजरे जमाने की बात होकर रह गई है। यहीं नही आपसी मनमुटाव, तालमेल की कमी, ईर्ष्या-द्वेष आदि के चलते भी लोग एक-दूसरे के समारोह में जाना मुलाजिम नहीं समझते हैं। इस प्रकार आज आस-पड़ोस के लोगों की बेरूखी और भाव की कमी काफी खटकती है। पैसे की ओर लोगों का झुकाव अधिक हो गया है जिसके चलते लोग अधिक से अधिक लोगों को शादी-विवाह में आमंत्रित तो कर देते हैं, मगर अपेक्षित भाव तक आमंत्रित लोगों को नहीं दे पाते हैं। उन्हें बस तोहफे मिल जाने चाहिए। तालमेल और खुशियाँ बाँटने से मिलने वाली मिठास का स्वाद अब कसैला-सा हो गया है। संवेदना का शून्य पर जाकर ठहर जाना कहीं-न-कहीं हमारी खोखली होती पर परवरिश को परिलक्षित करता है। इस तरह का व्यवहार मानवता के बीमार होने का संकेत है।

भारत समेत पूरी दुनिया में मानवीय मूल्यों और रिश्तों का बड़ी तेजी से ह्रास हो रहा है। आज खून के रिश्ते एक-दूसरे के खून के प्यासे बन रहे हैं। कहीं जर, जोरू और जमीन के लिए खींचतान मची है, तो कहीं पति, पत्नी और वो को लेकर झगड़ा-झंझट हो रहा है। भोगवादी प्रवृत्ति और संस्कृति अपने चरम पर है। मतांध और कामांध होकर लोग रिश्ते को तार-तार कर रहे हैं। देखा जाए तो जिंदगी और रिश्ते के बदलते मायने देश के लिए गंभीर चिंता का विषय बन गए हैं। सहानुभूति, दया, प्रेम और भरोसा अब भरोसे के काबिल नहीं रहे। इससे परिवार और समाज प्रभावित हो रहा है। एक अच्छा इंसान पूरे परिवार और समाज के जीवन को खुशगवार बना सकता है। वहीं गलत इंसान न जाने कितनी जिंदगी तबाह कर सकता है। सोचना हमें है कि हमें कैसा इंसान बनना है। सरकार को भी शिक्षा में मानवीय मूल्यों पर आधारित पाठ्यक्रमों को बढ़ावा देना चाहिए जिससे नई पीढ़ी सही रास्ते पर चल सके।

बिहार के गोपालगंज जिला में जिन बेनाम लाशों को गोद में लिए रो रहा है वह बिहार सरकार की शराबबंदी के संदर्भ में दिखाई गई हड़बड़ी

का परिणाम है। शराब का चाहे कम सेवन हो या अधिक प्रत्येक स्थिति में वह व्यक्ति को सिर्फ और सिर्फ हानि ही पहुँचाती है। वह न केवल व्यक्ति के शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य को दुष्प्रभावित कर देती है, बल्कि उसके सामाजिक, आर्थिक व पारिवारिक ढाँचे को भी तहस-नहस कर देती है। शराब कभी अमीरों और शानो-शौकत का पेय पदार्थ समझा जाता था, लेकिन अब हालात बदल गए हैं। शराब आज हर वर्ग को अपनी चपेट में लिए हुए है। इसे देखते हुए पहले ऐसा माहौल बनाना चाहिए था जिससे लोग शराब के सेवन से परहेज करना प्रारंभ करते। इसके बाद ही शराबबंदी का कदम उठाया जाता। यदि ऐसा किया गया होता तो गोपालगंज में नकली शराब से इतनी अधिक मौतें नहीं होतीं।

(३)प्रश्न : बिहार सहित अन्य कई राज्यों में शराबबंदी सख्ती से लागू होने के बावजूद जनता में इस पेय पदार्थ का आकर्षण क्यों बरकरार है ? आखिर इसे रोकने के कौन से उपाय हैं ?

उत्तर : आपका यह कहना बिल्कुल सही है कि बिहार सहित अन्य कई राज्यों में शराबबंदी सख्ती से लागू होने के बावजूद जनता में इस पेय पदार्थ का आकर्षण बरकरार है। यह बताने के लिए बिहार के गोपालगंज जिले में हाल ही में 18 लोगों की मौत की खबर काफी है। सरकार की सख्ती के बावजूद राज्य में चोरी-छिपे लोग शराब पी रहे हैं और बनाने वाले लोग बना भी रहे हैं। दरअसल, एकाएक शराब बंद करने के साइड इफेक्ट इस तरह से सामने आएँगे इसका अंदाजा सरकार को भी नहीं था। शुरुआती वक्त में जरूरत से ज्यादा सख्ती से पीने वालों को इतना हताश-निराश कर दिया है कि उन्हें जो कुछ भी मिल रहा है, वह गटक ले रहे हैं बिना यह सोचे-विचारे कि इससे उनकी जान भी खतरे में पड़ सकती है। और तो और अबतक हुई जाँच में यह स्पष्ट हो गया है कि होमियोपेथ की दवा 'थूजा' में किसी जहरीले पदार्थ को मिलाकर शराब बनाई जा रही है और शराब 40 रुपए ग्लास बेची जा रही है। सभी 18 लोगों की मौत का कारण केवल जहरीली शराब ही नहीं है। सच तो यह भी है कि पड़ोसी राज्यों की सीमा पर शराब के ठेके तय संख्या से ज्यादा खुल गए हैं और लोग वहाँ ज्यादा पैसे खर्च कर शराब खरीदते और अपना गला तर करते हैं। गोपालगंज के खजूरबानी में सालों से शराब का अवैध कारोबार चल रहा था। शराबबंदी के बाद यहाँ दूरदराज से शौकीन शराब पीने वाले आने लगे थे। मृतकों के परिजनों ने मजिस्ट्रेट के सामने बयान में कहा कि मौतें जहरीली शराब पीने से हुई हैं।

मेरा ख्याल है कि शराबबंदी कानून को थोड़ा नरम करके और गिरफ्तारी भारी जुर्माना और घर सील करने जैसे कदम की बजाय जनता से शराब नहीं पीने की संजीदा अपील करने से बात बन सकती है। नैतिक तौर पर जनता को शराब पीने के मामले में शर्मिंदा करने पर भी सरकार को विचार करना चाहिए। सरकार को भी यह समझना होगा कि जो खराब आदत एक बार लग जाती है वह बहुत देर से छूटती है। कहा भी गया है–'Bad habits seldom die' इसके मद्देनजर प्यार–दुलार से भी जनता के दिलो–दिमाग को जीता जा सकता है। अंततः निर्मल किए बिना आचरण के शुद्ध होने मात्र से वस्तुतः कोई नैतिक नहीं होता है और न उसका आचरण ही बदल सकता है।

शराबबंदी एक सामाजिक अभियान है। नासूर बन चुकी समस्या से पूरी तरह निजात पाने में थोड़ा वक्त लगेगा। राज्य की सीमाओं पर सख्ती बढ़ाई जानी चाहिए, ताकि पड़ोसी राज्यों से अवैध शराब शराबबंदी वाले राज्यों में न लाई जा सके। सिर्फ कानून की सख्ती से शराबबंदी कारगर नहीं होगी। कानून के साथ–साथ लोगों को प्रेरणा, सहायता, मार्गदर्शन और इलाज की जरूरत है। अधिकारियों को इन मोर्चो पर अपनी सोच और शक्ति लगानी चाहिए। शराब कारोबारियों की नकेल कसी जानी चाहिए। शराबबंदी मुहिम बेशक सफल होगी, मगर शासन–प्रशासन को ईमानदार और पारदर्शी होना होगा। गोपालगंज के खजूरबानी मोहल्ले के लोग दो महीने से शराबियों के जमघट से परेशान होकर पुलिस को इसकी जानकारी दे रहे थे, लेकिन पुलिस ने इस पर कभी ध्यान नहीं दिया जिसे उसकी लापरवाही कही जाएगी।

(४)प्रश्न: ऐसा क्यों होता है कि ताउम्र अपराध, आतंकवाद और क्रूर अपराधियों के साथ जिंदगी का अधिकांश हिस्सा बिताने वाला जांबाज अधिकारी या कर्मचारी बीमारी के आगे पस्त हो जाते हैं? क्यों वह ऐसे क्षण में परिवार का नैतिक सहयोग पाने में असहज और असमर्थ हो जाता है?

उत्तर: मनोचिकित्सकों का मानना है कि 90 फीसद आत्महत्या मानसिक रोग की वजह से होती है जिसे वे अवसाद कहते हैं। 10 फीसद ही आत्महत्या अचानक आवेग में किए जाते हैं। अगस्त, 2016 के प्रारंभ में दिल्ली पुलिस के एक सहायक पुलिस आयुक्त (एसीपी) ने बीमारी से तंग आकर रेल से कटकर जान दे दी। वह पेट के रोग से बेहद अवसाद में थे। उसके कुछ दिन पहले ही मेट्रो के आगे कूदकर दिल्ली पुलिस के एक हेड कांस्टेबल ने भी अपनी जीवनलीला समाप्त कर ली थी।

दरअसल, आत्महत्या किसी एक कारण से नहीं की जाती है, बल्कि कई कारणों की वजह से होती है। आत्महत्या अक्सर निराशा के चलते की जाती है, जिसके लिए अवसाद, द्विध्रुवीय विकार, मनोभाजन, शराब की लत या मादक दवाओं का सेवन जैसे मानसिक विकारों को जिम्मेदार ठहराया जाता है। तनाव के कारक जैसे वित्तीय कठिनाइयाँ या पारस्परिक संबंधों में परेशानियों की भी अक्सर एक भूमिका होती है। अवसाद हमारे गलत ढंग से जीवन की हर घटना को लेने के कारण होता है। मगर बहुत मामलों में वे हमारी आनुवंशिकता की वजह से होती है।

आत्महत्या की वजह से भरा-पूरा परिवार तबाह हो जाता है। कई लोग तो मामूली बात पर मौत को गले लगा लेते हैं। जैसे यदि माता-पिता अपने बच्चों का पढ़ने-लिखने या परीक्षाओं में कम अंक पाने या असफल हो जाने पर डाँटते हैं तो बच्चे आत्महत्या कर लेते हैं। ताउम्र अपराध आतंकवाद और क्रूर अपराधियों के साथ जिंदगी का अधिकांश हिस्सा बिताने वाले जांबाज अधिकारी या कर्मचारी तो लंबे अरसे से चली आ रही बीमारी से परेशान और चिड़चिड़ा हो जाने के कारण आत्महत्या को गले लगा लेता है। साथ ही परिवार के समक्ष परेशानियों का जिम्मेदार खुद को मान लेता है। ऐसे में उसका दु:ख-दर्द बाँटने वाला या समझने वाला कोई नहीं होता है तो वह अनिष्ट ही सोचता है। ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए सतर्कता ही समाज के स्तर पर संवेदना को मजबूती प्रदान करने में सहायक सिद्ध हो सकती है।

आत्महत्या को कानूनन अपराध माना जाता रहा है, लेकिन ऐसे कानूनी प्रावधान से एक विचित्र स्थिति जन्म लेती है। इससे आत्महत्या करने वाले पर यह दबाव होता है कि वह जान देने के अपने प्रयास में यदि विफल हुआ, तो उसकी जगह समाज में नहीं, बल्कि जेल में होगी। पारित मानसिक स्वास्थ्य सेवा विधेयक-2013 को संशोधित करने के बाद इसके अंतर्गत विधान किया गया है कि आत्महत्या की कोशिश को आपराधिक नहीं माना जाएगा, बल्कि ऐसे व्यक्ति को मानसिक बीमारी से ग्रस्त मानकर उसके उपचार की व्यवस्था की जाएगी। ऐसे में नए बिल का पारित होना देश में मनोस्वास्थ्य की समझ के लिहाज से निश्चित रूप से एक प्रगतिशील कदम कहा जाएगा।

आपको इस संदर्भ में बता दूँ कि आत्महत्या की स्थिति यह है कि आज देश में हर साल करीब सवा लाख लोग अलग-अलग कारणों से

आत्महत्या करने को मजबूर होते हैं। 2014 में आत्महत्या करने वालों में नौजवानों में 14 से 30 साल के लोगों की संख्या 40 प्रतिशत थी। इस दृष्टि से देखा जाए, तो विधेयक को संशोधित करने का मकसद मानसिक रोगियों के बुनियादी अधिकारों को सुनिश्चित करने के अतिरिक्त बेहतर चिकित्सा सेवा मुहैया कराना रहा है।

(५)प्रश्न: भारतीय संविधान में आरक्षण को वंचित समूहों के लिए विशेष अवसर प्रदान करने के लिए औजार का प्रावधान किया गया था, मगर क्या आज यह आरक्षण रूपी औजार वोट बटोरने का एक हथियार नहीं बन गया है?

उत्तर: आजादी के बाद भारत में आरक्षण की व्यवस्था, वंचितों के लिए विशेष अवसर का औजार के रूप में इस्तेमाल करने के लिए हुई थी। खासतौर पर समाज का वैसा तबका, जो सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़ा है उसकी हकमारी रोकने के लिए संविधान में आरक्षण का प्रावधान किया गया था जिसका आधार जातीय है। सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़ेपन का आधार जातीय है और यह देश और प्रदेशों की राजनीति को झकझोरने वाला मुद्दा रहा है।

दरअसल, संविधान के निर्माताओं ने समाज के वंचित लोगों को यथा सामाजिक-शैक्षणिक रूप से पिछड़े लोगों को मुख्यधारा में लाने की मंशा से विशेष प्रतिनिधित्व के लिए संसद एवं विधानसभाओं में स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था लागू की थी और इसी तरह की व्यवस्था सरकारी नौकरियों में भी की गई। इसका प्रोन्नति से लेकर नामांकन में आरक्षण का विस्तार हुआ। मगर आज स्थिति यह है कि जहाँ एक ओर समाज का सवर्ण तबका आरक्षण पाने के लिए न केवल आर्थिक आधार की वकालत कर रहा है, बल्कि पिछड़े व अतिपिछड़ी जातियों में शामिल होने को तैयार है, वहीं दूसरी ओर पिछड़ी जातियाँ अति पिछड़ी जातियों तथा जो अतिपिछड़े हैं वे अनुसूचित अथवा अनुसूचित जनजातियों में शामिल होने के लिए होड़ में लगी हैं।

सच्चाई यह है कि संविधान निर्माताओं की मंशा के अनुरूप आरक्षण की व्यवस्था अनंतकाल के लिए नहीं की गई थी। संविधान के अनुच्छेद 334 में स्पष्ट कर दिया गया था कि संविधान के प्रारंभ 60 वर्ष की अवधि की समाप्ति पर आरक्षण की व्यवस्था प्रभावी नहीं रहेगी। इसी वजह से 25 जनवरी, 2010 को समाप्त हो रही आरक्षण व्यवस्था को 95वाँ

संविधान संशोधन कर 10 वर्षो के लिए विस्तार दिया गया है।

हाल के वर्षों में कई जाति समूहों को पिछड़े अतिपिछड़े और अनुसूचित जाति में शामिल करने को लेकर राजनीतिक विवाद खड़ा हो गया है। खासतौर पर गुजरात के पाटीदारों व पटेल समाज तथा हरियाणा के जाट समाज के लोगों ने तो यहाँ तक कि पिछड़ी जातियों में शामिल होने के लिए हिंसक आंदोलन पर उतर आए और राजनीतिक दलों व उसके नेताओं ने उसे हवा देने का काम किया। मसलन आरक्षण को वोट बटोरने का राजनीतिक हथियार के रूप में इस्तेमाल करना प्रारंभ हो गया। हलवाई, तेली व दांगी को अतिपिछड़ों और निषाद व तांती को अनुसूचित जाति की श्रेणी में लाने की न केवल पहल हुई, बल्कि उस समाज के नेताओं ने आंदोलन करना शुरू कर दिया है। एक ओर गरीब सवर्ण को आरक्षण देने की बहस छिड़ी है, तो वहीं कई जातियों को सूचीबद्ध किए जाने की नयी कार्रवाई को न्यायालय में चुनौती दी गई है और कई नेताओं ने आरक्षण की 50फीसदी सीमा को बढ़ाने की माँग भी उठाई है जिसमें 'हम' पार्टी अग्रणी है। इसी तरह भाजपा ने अतिपिछड़ों का आरक्षण 30 प्रतिशत करने और 'हम' ने दलितों की आरक्षण सीमा को बढ़ाकर 22प्रतिशत करने की माँग की है। आरक्षण की सीमा बढ़ाने को लेकर नई सियासी बहस छिड़ गई है, मगर राजनीतिक दलों व उसके नेताओं को यह नहीं दिख रहा है कि जिनके लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया था वे अड़सठ साल की आजादी के बाद देश व समाज की मुख्य धारा से जुड़े या नहीं। सच तो यह है कि आरक्षण के बल पर जो जातियाँ या उसके लोग आर्थिक एवं शैक्षणिक रूप से सबल व समर्थ हो चुके हैं वे अपनी-अपनी जातियों के हाशिए पर खड़े लोगों की हकमारी कर रहे हैं और आरक्षण का लाभ वंचितों को न देकर खुद उठा रहे हैं। इसलिए समय का तकाजा है कि संविधान के प्रावधान के अनुसार इसकी समीक्षा हो और समाज का जो तबका सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सबल हो गया है उन्हें आरक्षण के लाभ से वंचित किए जाने का प्रयास हो, मगर राजनेताओं को तो इससे कोई मतलब नहीं है। उन्हें तो आरक्षण को वोट का हथियार बनाने में ही रुचि है, ताकि उसके बल पर सत्ता पर काबिज हो सकें। यह मनोवृति न केवल नेताओं के लिए बल्कि समाज एवं देश के विकास में भी घातक सिद्ध होगी। इसी का परिणाम है कि आजादी के सत्तर सालों के बाद भी गरीबों और अमीरों के बीच की खाई और बढ़ती जा रही है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि आरक्षण को लागू करने का एक

उद्येश्य यह था कि गरीब लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाया जाए, मगर गरीब लोगों का जीवन स्तर उठाने में समाज के प्रतिभाशाली बच्चों के लिए आरक्षण एक खतरनाक रूप लेता जा रहा है। आरक्षण समाज में अच्छाइयाँ कम बुराइयों ज्यादा फैला रहा है।

(६)प्रश्न: जब समाज अपनी शालीनता खो देता है तो सबसे अधिक पीड़ित होती हैं महिलाएँ, ऐसा क्यों?

उत्तर: भाई ध्रुव जी, आपका कहना बिल्कुल सही है कि जब समाज अपनी शालीनता खो देता है, तो सबसे अधिक पीड़ित होती है महिलाएँ। महिलाएँ ताकतवर हों, बड़े परिवार की हों या कमजोर परिवारों की, सबकी पीड़ा एक है। सबकी दास्तान दर्द से भरी है। कहीं वे गालियाँ सुनती हैं, तो कहीं मार खाती हैं। कहीं छींटाकशी झेलती हैं, तो कहीं उनपर तेजाब छिड़की जाती है। महिलाएँ कहीं पैसे की भेंट चढ़ जाती हैं, तो कहीं वोट की राजनीति का निशाना बनती हैं। सच तो यह है कि महिलाएँ जीवन भर अँधेरी सुरंग से निकलने के लिए जद्दोजहद करती रहती हैं।

जब हम पीड़ित महिलाओं की पीड़ाओं की तहकीकात करते हैं तो पाते हैं कि आरोपित आसानी से जमानत पर छूट जा रहे हैं। वे महिलाओं को धमकाते हैं और छींटाकशी करते हैं और जमानत का जश्न मनाते हैं जबकि पीड़िताएँ परिवार के साथ घरों में कैद हो जाती हैं। सामाजिक अलगाव झेलती हैं और बिखर चुके जीवन को फिर से संवारने की कोशिश करती हैं। महिला पीड़िताओं के साथ न तो पुलिस प्रशासन खड़ा होता है और न सरकारी व्यवस्थाएँ।

(७)प्रश्न: आप उस समाज को क्या कहेंगे जहाँ एक स्त्री को अपने शील भंग होने का भय सताए रहता है?

उत्तर: पिछले दिनों उ.प्र. के बुलंदशहर की एक हृदय विदारक घटना के बाद वास्तव में एक मूल प्रश्न समाज के सामने खड़ा है कि ये कैसा समाज है, जहाँ एक स्त्री को अपने शील भंग होने का भय सताए रहता है। उ.प्र. के बुलंदशहर में उच्च पथ पर एक गाड़ी को रोककर उसमें से दो महिलाओं, जिसमें एक नाबालिग लड़की है, को हथियार के बल पर नीचे ले जाकर सामूहिक बलात्कार कर दिया जाता है। इस घटना की जाँच हो ही रही थी कि एक स्कूल जा रही शिक्षिका को उठा लिया गया और उसके साथ भी गैंगरेप हुआ। ये दोनों घटनाएँ उ.प्र. सरकार पर ऐसा बदनुमा दाग की तरह सामने आये हैं जिसको धोना उसके लिए शायद ही संभव हो। विडंबना

देखिए कि 100 नंबर पर कोई फोन उठाने वाला नहीं मिला। फोन उठावे भी तो कैसे? जिस प्रदेश में जाति के आधार पर पुलिस भर्तियाँ की जाएँगी और सत्ता पक्ष की विश्वसनीयता व सेवा पर खरे उतरने वालों को जातिगत आधार पर थानों का आवंटन होगा, भला उस प्रदेश में पुलिस जनता के लिए रहे या फिर सरकार के लिए? इतना ही नहीं उसी सरकार के एक मंत्री ने बुलंदशहर के सामूहिक बलात्कार कांड पर जिस तरह का बयान दिया उसकी जितनी निंदा की जाय कम होगी और समाज की सामाजिक चेतना और सामाजिक सुरक्षा की असफलता भी साफ बयां हो रही है कि इस समाज पर भी हैवानियत का भूत सवार है। समाज आखिर कहाँ सो रहा है? हमें अपनी बहू-बेटियों की सुरक्षा के प्रति चिंतित होना चाहिए।

(८)प्रश्नः दलितों के जैसी दूषित सोच समाज के एक हिस्से में व्याप्त है इसके परिप्रेक्ष्य में पिछले दिनों गुजरात के उना शहर की घटना सभ्य समाज के साथ-साथ राजनीति के माथे पर क्या यह कलंक और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर देश की छवि को मलिन करने वाली नहीं है?

उत्तर: विगत 11जुलाई, 2016 को गुजरात के गिरसोमनाथ जिले के ऊना शहर में मृत गाय की खाल उतारने के मामले में दलित समुदाय के कुछ युवकों की बेरहमी से पिटाई की गयी थी जिसके खिलाफ पूरे राज्य में दलित समुदाय के सदस्यों ने विरोध-प्रदर्शन जारी रखा था और आक्रोशित सदस्यों ने शहरों और कस्बों में रैलियाँ निकालीं, सड़कों को बंद किया तथा बसों को क्षतिग्रस्त किया। उक्त घटना के विरोध में दलित समाज की ओर से आत्महत्या के प्रयास का सिलसिला भी जारी रहा। आजादी के सत्तर वर्षो के बाद भी दलितों पर अत्याचार की घटनाएँ शर्मनाक तो हैं ही, सभ्य समाज के साथ-साथ राजनीति के माथे पर भी कलंक और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी देश की छवि को मलिन करने वाली है।

दरअसल, महात्मा गाँधी की जन्मस्थली पोरबंदर सहित पूरे सौराष्ट्र में फूटा दलितों का गुस्सा उस पाखंड और सामंती मानसिकता के विरूद्ध है, जो गोरक्षा के नाम पर मरे हुए जानवरों का निस्तारण भी करने की इजाजत नहीं देता। यह काम सदियों से होता आ रहा है और इसके साथ चमड़े का पारंपरिक व्यवसाय भी जुड़ा है। इस तरह यह आजीविका का भी मुद्दा है, लेकिन गोरक्षा के नाम पर बढ़ी आक्रामकता मरे हुए जानवरों को भी इनसान से बेहतर मानती है और उसके लिए मानवता के सारे मूल्यों को ताक पर रखकर किसी पर अत्याचार कर सकती है। इस तरह की राजनीति जो सच्ची

मानवता का पक्षधर नहीं है, को इनसान और पशु में अंतर करना सीखना होगा। मगर राजनीति वर्ग दलित के प्रति समाज की सोच बदलने की बजाय उत्तरप्रदेश भाजपा के उपाध्यक्ष दयाशंकर सिंह जैसे नेता ने मायावती को 'वैश्या' कहकर बयान दिया उसे अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जाएगा। यह तो कहिए कि भाजपा के शीर्ष नेताओं ने दयाशंकर सिंह को सभी पदों से तत्काल हटाकर उसे छह साल के लिए पार्टी से बाहर कर अपनी लाज बचाई। पता नहीं यह दलित हितैषी बनने का सिर्फ दिखावा है या और कुछ।

स्वतंत्र भारत में 50 प्रतिशत दलित निर्धन हैं और जातीय अपमान के शिकार हैं। इन्हें सामान्य जीवनयापन की सुविधाएँ अभी तक मुहैया नहीं करायी गयी हैं। इसमें तनीक संदेह नहीं कि जातिभेद समाज की गतिशीलता में बाधक है। दरअसल, 1889 में बने अनुसूचित जाति, जनजाति अत्याचार निवारण कानून (दलित एक्ट) के बावजूद उत्पीड़न और भेदभाव नहीं रुके, जबकि इस कानून में हजारों मुकदमें दर्ज हुए और आज भी दर्ज हो रहे हैं। इसका प्रमुख कारण है भारतीय समाज की भेदभावपूर्ण सामंती मानसिकता। सच तो यह है कि भेदभाव की समाप्ति के लिए संविधान के उद्येशिका में लिखित--'सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय दिलाने' के संकल्प की उपेक्षा हुई। सत्ता परिवर्तन तो होते रहे और हो भी रहे हैं, लेकिन सामाजिक परिवर्तन में जड़ता और स्थिरता है। फिर भी तमाम कष्ट उठाकर और अपमान सहकर भी दलित भारतीय संस्कृति और परंपरा के तहत राष्ट्र निर्माण में लगे हुए हैं। हमारा यह देश इन्हें सम्मान देकर ही विकास कर सकता है।

(९)प्रश्नः क्या यह सच है कि भारतीय समाज में सामाजिक समीकरण का तात्पर्य है-जातीय समीकरण अर्थात जातियों को साधना? इसके क्या परिणाम होते हैं?

उत्तरः हाँ, यह शत-प्रतिशत सच है कि भारतीय समाज में सामाजिक समीकरण का मतलब है-जातीय समीकरण अर्थात जातियों को साधना, जातिय अस्मिताओं को संतुष्ट करना। आखिर तभी तो पश्चिम में उभरा 'जनतंत्र' भारत में आकर जाति के तंत्र के रूप में परिवर्तित हो गया है। जो जनतंत्र जातिविहीन, धर्मविहीन जन शासन के रूप में जाना जाता है वह यहाँ आकर अपने संपूर्ण प्रारूप और व्यवस्था में जाति की व्यवस्था और प्रबंधन का रूप ग्रहण कर ले लेता है। यही कारण है कि विकास के परिणामों का वितरण निरपेक्ष रूप से जन-जन तक या समाज के अंतिम आदमी तक न

पहुँच कर जातीय और धार्मिक अस्मिताओं को संतुष्ट करने के क्रम में वितरित किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप प्रभावी और बड़ी संख्यावाली जातियों को ही प्राय: लाभ मिलता है।

क्रेंद्र हो या कोई राज्य सरकार, आम चुनाव के बाद मंत्रिमंडल के गठन में जातियों को प्रतिनिधित्व देकर सत्ता के वितरण से यह संदेश देने का प्रयास होता है कि इस जनतांत्रिक सत्ता में प्राय: सभी जातियाँ शामिल हैं। आमतौर पर जातियों के प्रतिनिधि और नेताओं को 'लालबत्ती' देकर यह संकेत दिया जाता है कि आप तक सत्ता और सरकार पहुँच रही और आपकी हिस्सेदारी विकास में सुनिश्चित की जा रही है।

सरकार और सत्ता में जातियों को प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व देकर अपनी पार्टी से जोड़ने की रणनीति भारत की प्राय: सभी राजनीतिक पार्टिया अपनाती हैं, किंतु यह रणनीति कभी-कभी नकारात्मक प्रभाव भी उत्पन्न करती है। जातीय और सामुदायिक ईर्ष्या की वजह से ऐसी राजनीति जातियों के भीतर और अन्य जातियों में काउंटर मोबलाइजेशन भी पैदा करती है। इस रणनीति की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उक्त जाति से जिस नेता को प्रतिनिधित्व दिया गया है, उसकी जड़ें अपने समाज में कितनी गहरी हैं ? दूसरी बात यह कि अन्य जातियों का मत प्राय: एक-सा नहीं होता है, फिर भी जो पार्टियाँ उनके बड़े भाग को आकर्षित कर ले जाए वह मैदान मार सकता है।

(१०)प्रश्न: क्या राज्य सरकार बेहद अतार्किक ढंग से आरक्षण की घोषणा करके जनता को गुमराह करने की कोशिश नहीं करती है?

उत्तर: हाँ, आपका कहना बिल्कुल सही है कि राज्य सरकार बेहद अतार्किक ढंग से आरक्षण की घोषणा कर न सिर्फ जनता को गुमराह करने की कोशिश करती है, बल्कि अपने फैसले को जायज ठहराने के लिए मनगढ़ंत तर्क भी देती है।

आपने देखा नहीं कि गुजरात में पटेल-पाटीदारों ने पिछड़ों-अति पिछड़ों की तरह हार्दिक पटेल के नेतृत्व में आरक्षण देने की माँग करते हुए यहाँ तक कि हिंसक आंदोलन करना प्रारंभ किया, तो वहाँ की आनंदीबेन पटेल की सरकार ने बिना सोचे-समझे अनारक्षित वर्ग के गरीब पटेल-पाटीदार परिवार के साथ-साथ अन्य गरीब युवाओं को नौकरियों में 10 फीसदी आरक्षण देने का अध्यादेश जारी कर दिया, मगर इस आरक्षण को लेकर गुजरात उच्च न्यायालय ने गुजरात सरकार के इस अध्यादेश को खारिज कर दिया।

आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि सरकार बड़े फलक पर चर्चा-मंथन किए बिना इस तरह के संजीदे फैसले ले लेती है, जबकि न्यायिक और नैतिक तौर पर यह कितना युक्ति संगत है, सरकार में बैठे लोग और हर कोई जानता है। गुजरात सरकार ने वहाँ के आसन्न विधानसभा चुनाव को देखते हुए यह कार्ड खेला था। गुजरात सरकार ही नहीं, इसके पूर्व पंजाब, हरियाणा और आँध्रपदेश की सरकारों ने भी यही सतही रवैया अपनाया था और अदालत ने अपने तरीके से इसका जवाब दिया। यही नहीं बिहार सरकार ने भी वहाँ के निषाद समाज के लोग मुकेश साहनी के नेतृत्व में अतिपिछड़ों अथवा अनुसूचित जाति में शामिल करने की माँग करते हुए राज्य स्तर पर जब आंदोलन किया तो बिहार सरकार ने भी उन्हें शांत करने के लिए आनन-फानन में अनुसूचित जाति में शामिल न कर उससे और पीछे अनुसूचित जन-जाति में शामिल करने की घोषणा कर दी जिसकी अनुमति केंद्र सरकार से अब तक नहीं मिल पाई और न आगे मिलने की संभावना है।

होता यह है कि राज्य सरकार बेहद अतार्किक ढंग से ऐसे फैसले कर जनता को मूर्ख और गुमराह करती है। कारण कि सरकार शॉर्टकट तरीके से जनता का वोट पाने के लिए यह सब तरीके अपनाती और आजमाती है जबकि वह जानती है कि उसका यह अध्यादेश असंवैधानिक अदालत से कर दिया जाएगा, लेकिन तात्कालिक वोट का लाभ लेने के लिए ही यह सब कवायद करती है जो जायज कतई नहीं कहा जाएगा।

(११)प्रश्नः आजादी के बाद दलित उत्पीड़न के कौन-कौन से नए कारण उत्पन्न हुए हैं? दलित उत्पीड़न और अपमान की कहानियाँ कब और कैसे खत्म होंगी?

उत्तरः आजादी के सत्तर साल और संविधान मिलने के 66 साल बाद भी दलित उत्पीड़न खत्म होने का नाम नहीं ले पा रही है जबकि दलितों के पास आज राजनीतिक शक्ति है, पर्याप्त आर्थिक शक्ति भी है और सामाजिक प्रतिरोध की शक्ति भी उनके पास है। यही नहीं दलित के अधिकारों की रक्षा करने वाले कानून भी अपनी जगह पर हैं, बौद्धिकता के स्तर पर भी उन्होंने अपना लोहा मनवाया है और उनके विरूद्ध किसी भी तरह के अन्याय की आवाज मीडिया के माध्यम से देश भर में गूँजने लगती है। बावजूद इसके आखिर क्यों ऐसा होता है कि कथित अगड़ी जाति का कोई व्यक्ति किसी दलित बापूराव की पत्नी को कुँए से पानी लेने से रोक देता है?

मुझे लगता है कि एक कारण तो यह है कि दलित समूह सामाजिक

तौर पर अभी तक इतने मजबूत नहीं हुए कि अपने बूते अपमान से मुक्त हो जाएँ। आर्थिक तौर पर कमजोर दलित समूह आज भी जीविका के लिए दलितेत्तर जाति समूहों पर निर्भर करते हैं। इसलिए वे अन्याय और अपमान को चुपचाप सहन करते रहने में ही अपनी भलाई समझते हैं। जाति इन दलित समूहों के भी आड़े आती है। अगर एक जाति का दलित उत्पीड़न का शिकार है, तो दूसरी जाति का दलित अपनी आँखें बंद रखना ही ज्यादा ठीक समझता है। यानी सामूहिक दलित चेतना का अभाव दलित समूहों को कमजोर बनाए रखने में बड़ी भूमिका निभा रहा है।

आजादी के बाद और खासतौर पर संविधान बनने और लागू होने के बाद दलित उत्पीड़न के आख्यान में एक नया क्षेपक और जुड़ा है, और वह है दलितों को संविधान द्वारा दिए गए आरक्षण जैसे अधिकार के प्रति अगड़े-पिछड़े जाति समूहों का आक्रोश। उन्हें अब भी लगता है कि संविधान ने दलितों को जो अधिकार दिए हैं, वे बेजा अधिकार हैं और दलित इन अधिकारों का उपयोग उनकी कीमत पर कर रहे हैं।

वे संविधान को तो मिटा नहीं सकते, इसलिए जब भी उन्हें मौका मिलता है, अपनी खीज कमजोर दलितों पर उतार डालते हैं। यानी दलितों के प्रति ईर्ष्या दलित उत्पीड़न का नया कारक बनी है। इसी ईर्ष्या का एक रूप गैर-आरक्षित अगड़ी एंव पिछड़ी जाति समूहों द्वारा दलितों की तर्ज पर आरक्षण की माँग है और दूसरा रूप है आरक्षण प्राप्त दलितों के प्रति सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर द्वेष का विस्तार। उनके शताब्दियों पुराने सवर्णतावादी संस्कार ऐसी सहानुभूति के लिए जगह पैदा नहीं होने देते। इसलिए मेरा ख्याल है कि जबतक सवर्णतावादी संस्कारों के विरूद्ध स्वयं सवर्ण जाति समूहों के बीच से ही उग्र सामाजिक पहल नहीं होगी, तबतक दलित उत्पीड़न और अपमान की कहानियाँ सामने आती ही रहेंगी।

हालांकि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि आजादी के बाद दलित उत्थान के लिए किए गए प्रयासों में आरक्षण ही सबसे सफल नीति रही है। आज समाज में जो सामाजिक गतिशीलता और परिवर्तन दिखता है, उसका एक मुख्य कारण आरक्षण है, जिसने संभवतः विश्व में सबसे बड़े मध्यवर्ग को इतने कम समय में निर्मित किया है। आज आरक्षण से लाभान्वित पीढ़ी के बच्चे बड़ी संख्या में सरकारी नौकरी से इतर क्षेत्रों में जा रहे हैं और बिना आरक्षण के ही सफलता प्राप्त कर रहे हैं, लेकिन उनकी सफलता में भी आरक्षण नीति का योगदान है, क्योंकि उसी ने उनसे

पहले की पीढ़ी को यह अवसर दिया कि वह अपनी आने वाली पीढ़ियों को एक नया भविष्य दे सके। इसी नए भविष्य की झलक हाल में तब दिखी जब दलित जाति से आने वाली एक लड़की टीना डाबी ने विश्व की सबसे कठिन परीक्षाओं में से एक संघ लोक सेवा आयोग में प्रथम प्रयास में ही शीर्ष स्थान हासिल किया और वह भी महज 22 साल की उम्र में ही।

इसमें कोई शक नहीं कि आरक्षण ने देश के एक बहुत बड़े तबके को समान अवसर देकर उसे मुख्यधारा में लाकर मेरिट का दायरा बढ़ाया है।

(१२)प्रश्नः क्या आप भी ऐसा महसूस करते हैं कि सामाजिक परिवर्तन की दिशा को भ्रष्ट करने में बसपा प्रमुख मायावती की भूमिका और कई नेताओं से कहीं अधिक रही है? क्या इतिहास मायावती को सिर्फ उनकी अपनी मूर्तियों के लिए याद रखेगा?

उत्तर: हाँ, मैं भी ऐसा महसूस करता हूँ कि सामाजिक परिवर्तन की दिशा को भ्रष्ट करने में बसपा प्रमुख मायावती की भूमिका और कई नेताओं से कहीं अधिक रही है, क्योंकि मायावती जी ने उत्तरप्रदेश में सत्तारूढ़ रहकर या उससे बाहर विपक्ष में रहकर उन्होंने तमाम तरह की सर्वणतावादी या यथास्थितिवादी शक्तियों से लगातार सत्ताकामी समझौते ही की है और अब तो वह एक जातिवादी नेता के तौर पर स्थापित हो गई हैं, जातिविहीनतावादी नेता के तौर पर नहीं। उनके नेतृत्व में समतामूलक समाज के विचार कर जैसा बिखराव हुआ है उसका पुनर्संयोजन फिलवक्त संभव नहीं दिखता।

यह बात सही है कि सभी जाति और धर्मो के बहुजन बराबरी और इंसानियत की जिंदगी जी सकें, इसके लिए सत्ता परिवर्तन तो जरूरी है ही, पर सामाजिक परिवर्तन ज्यादा जरूरी है। मायावती जी अपने आचरण और व्यवहार से दलित आंदोलन को भटकाव की राह पर ले जाने का काम अधिक किया है, क्योंकि सत्ता पर कब्जा करने या उसपर बने रहने के लिए उन्होंने दलित विरोधी ताकतों से समझौता कर लिया है और दलितों के समर्थन के बल पर स्वयं अपनी सत्ता स्थापित कर ली है और सत्ता के बल पर भ्रष्टाचार के माध्यम से अकूत धन इकट्ठा कर ली हैं।

हालांकि यह भी सच है कि सपा के मुखिया मुलायम सिंह यादव तथा राजद प्रमुख लालू प्रसाद यादव जातिवाद को ही बढ़ावा देकर और उसकी आड़ में वंशवाद एवं परिवारवाद को आगे बढ़ाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रखा है, फिर भी वे मायावती की रीतियों-नीतियों के विरोधी रहे हैं, मगर महात्मा फुले, छत्रपति साहूजी महाराज, पेरियार रामा स्वामी और

बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जैसे महान नेताओं के विचारों और कार्यो तले सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रयास किए हों, ऐसा कोई उदाहरण मेरी नजर में नहीं दिखता। हाँ, बस इतना जरूर दिखता है कि वे सामाजिक और समाजवादी आंदोलन के प्रणेता डॉ. राममनोहर लोहिया के शिष्य कहला रहे हैं। यही स्थिति मायावती जी की भी है जो शिष्या है डॉ. अम्बेडकर के विचारों से प्रेरित होकर वांछित सामाजिक परिवर्तन के लिए राजनीतिक पार्टी के रूप में बहुजन समाज पार्टी का घोंसला निर्मित करने वाले कांशीराम जी की। कांशीराम जी के बनाए बसपा नाम्नी घोंसले में भी अब सांप-बिच्छुओं का वास हो गया है। यानी जिस घोंसले में जातिविहीन समाज यानी समतामूलक समाज अथवा सामाजिक परिवर्तन के पक्षियों की चहचहाहट गूँजनी थी, वहीं सांप-बिच्छुओं ने अपना डेरा डाल दिया है।

हाँ, मायावती जी ने उत्तर प्रदेश के विभिन्न स्थलों पर अपनी मूर्तियाँ स्थापित जरूर कर ली हैं जिसके लिए शायद उन्हें इसलिए याद रखा जाए, क्योंकि उन्होंने उत्तरप्रदेश को समतामूलक समाज की स्थापना के स्वप्न की कब्रगाह बना दिया?

(१३)प्रश्नः जितनी तेजी से बुजुर्गो की संख्या और अनुपात में वृद्धि हो रही है ऐसे में क्या हमें यह विचार नहीं करना चाहिए कि वृद्ध व्यक्ति को किस तरह सामान्य जीवन का एक हिस्सा बनाया जाए?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है बुजुर्गों की बढ़ती संख्या को देखते हुए आज हमें यह विचार करने की जरूरत है कि किस तरह वृद्धजनों को सामान्य जीवन का एक हिस्सा बनाया जाए, क्योंकि वृद्धजन ज्ञान, कौशल और अनुभव की दृष्टि से मूल्यवान होते हैं। जब बुढ़ापे में उस व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक सक्रियता अधिकतम स्तर पर बरकरार रखी जाए, तब वे शिक्षा, व्यवसाय, बोद्धिक और सांस्कृतिक कार्यकलापों में अपनी भूमिका निभा सकते हैं। ऐसा नहीं है कि सेवानिवृत हो जाने पर किसी व्यक्ति की क्षमता अचानक खत्म हो जाती है या तुरंत किसी रोग से पीड़ित हो जाते हैं। वैसे तो सरकारी या गैर-सरकारी सेवा में रहते हुए भी व्यक्ति मधुमेह, स्मृतिलोप, रक्तचाप, मस्तिष्क आघात तथा जोड़ों के दर्द से पीड़ित हो जाते हैं, फिर भी सेवा में उनका योगदान रहता ही है और जो उपर्युक्त बीमारियों के शिकार नहीं होते हैं उनका तो कहना ही नहीं। सवैच्छिक सेवानिवृत हुए मुझे सत्रह साल हो गए, मगर मैं आज भी सार्वजनिक जीवन जीते हुए सृजन व लेखन में व्यस्त रहकर अपनी सक्रियता बनाए हुए हूँ। मुझे

लगता है कि मेरे जैसे अनेक ऐसे बुजुर्ग व्यक्ति हैं जिन्हें समाज व देश की मुख्यधारा का सक्रिय अंग बनाया जा सकता है और सामान्य जीवन का एक हिस्सा भी बनाया जा सकता है।

(१४)प्रश्न: भारत सरकार के वरिष्ठ अधिकारी बी.के. बंसल द्वारा रिश्वतखोरी के आरोप के चलते पहले पत्नी और बेटी तथा बाद में अपने बेटे के साथ खुद की खुदकुशी क्या समाज के सामने कई सवाल नहीं छोड़ गई? रिश्वतखोरी करने वालों को क्या इससे सबक नहीं लेनी चाहिए?

उत्तर: भारत सरकार के एक वरिष्ठ भारतीय प्रशासनिक अधिकारी और वर्तमान में कॉरपोरेट मामलों के मंत्रालय के महानिदेशक बी.के. बंसल और उनके बेटे योगेश ने दिल्ली के इंद्रप्रस्थ इक्सटेंशन स्थित नीलकंठ अपार्टमेंट के अपने फ्लैट में विगत 26 सितंबर 2016 को फांसी लगाकर खुदकशी कर ली। इसके पहले बी.के.बंसल की पत्नी सत्यबाला और बेटी नेहा ने भी विगत 19 जुलाई, 2016 को आत्महत्या कर ली थी।

उल्लेख्य है कि बी.के. बंसल को गत 16 जुलाई, 2016 को सी. बी.आई ने 9 लाख रुपए रिश्वत लेते रंगे हाथ गिरफ्तार किया था दिल्ली के एक होटल में। बंसल पर आरोप था कि वे एक फार्मा कंपनी का फेवर करने के बदले में ब्रोकर से घूस ले रहे थे। बंसल की गिरफ्तारी के बाद पुलिस ने उनके और उनके रिश्तेदारों के घर भी छापेमारी की थी। अपार्टमेंट में छापेमारी के दौरान 60 लाख रुपए नकद मिले थे। इसके अलावे 22 प्रॉपर्टी के कागजात सहित 60 बैंक खातों के डिटेल भी मिले थे। इसी के चलते बंसल की पत्नी और बेटी ने आत्महत्या कर ली थी और उनके पास से बरामद सुसाइड नोट में लिखा था कि सीबीआई छापे में उनकी बहुत बदनामी हुई है और वे बहुत शर्मिंदगी महसूस कर रही हैं जिससे आहत होकर ही वे आत्महत्या कर रही हैं। पत्नी और बेटी के अंतिम संस्कार के लिए जब बंसल को अंतरिम जमानत दी गई थी तब उन्होंने उदासी में कहा था कि 'जीवन चलते रहना चाहिए।' फिर 30 अगस्त 2016 को वे नियमित जमानत पर थे। इसकी सुनवाई के वक्त ही बंसल ने कहा 'मां और बहन की मौत के बाद से बेटा योगेश बुत-सा बन गया है। न किसी से बात करता है और न ही कहीं आता-जाता है। मेरा बेटा एक स्टैच्यू की तरह बैठा डिप्रेशन में है। मुझे डर है कि कहीं अपनी मां और बहन की तरह आत्महत्या न कर ले। इसलिए उसकी देखरेख की जरूरत है।' इसके बाद

30 अगस्त, 2016 को बंसल को जमानत मिली थी। इसी के बाद 26 सितंबर, 2016 को दोनों बाप-बेटे ने खुदकुशी कर ली और इसके साथ ही बंसल परिवार खत्म हो गया तथा रहा न कोई रिश्वतखोरी से जमा की गई उसकी संपत्ति को भोगने वाला। हरियाणा के हिसार निवासी बंसल निर्दोष थे या नहीं, यह तो फैसला अदालत को करना था, पर पूरे परिवार की इस खुदकुशी ने समाज के सामने कई सवाल खड़े छोड़ गई। सबसे पहले तो यह हर घूसखोर के लिए एक सबक की तरह है। घूस लेने के पहले उन्हें एक बार इस घटना की तरफ सोचना होगा। निश्चित रूप से यह घटना विचलित करने वाली है। तभी तो मैं कहता हूँ समाज व देश के लोगों से-

यारों अब तो लो सबक ऐसे रिश्वतखोरों की खुदकुशी से,
अन्यथा कहीं एक दिन आप भी पड़ जायें फेर में
यारों, अब तो लो सबक बंसल परिवार की खुदकुशी से
कहीं ऐसा न हो कि आप भी हम सफर हो जाए खुदकुशी से।

(१५)प्रश्नः सामाजिक न्याय और विकास के जिस सिद्धांत पर हमारा लोकतंत्र चल रहा है उसमें इस देश के सभी लोगों को लाभ देने और सामाजिक तनाव कम करने में क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि राजनीतिक दलों और सामाजिक संगठनों को इस दिशा में काम करना होगा? आखिर क्यों?

उत्तरः निश्चित रूप से सामाजिक न्याय और विकास के जिस सिद्धांत पर हमारा लोकतंत्र चल रहा है उसमें सभी लोगों को लाभ देने और सामाजिक तनाव कम करने की दिशा में राजनीतिक दलों और सामाजिक संगठनों को काम करना होगा, क्योंकि जिस प्रकार पहले गुजरात, फिर हरियाणा और अब महाराष्ट्र में उभरे शासक वर्ग के आंदोलन ने जहाँ राज्य सरकार की नींद हराम कर दी है, वहीं भारतीय लोकतंत्र की तमाम अवधारणाओं पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया है। अगर गुजरात में पटेल और पाटीदारों ने आरक्षण के लिए राज्य सरकार की चूलें हिला दीं तो हरियाणा में जाटों ने पूरे राज्य को युद्ध क्षेत्र में बदल दिया था, उसी प्रकार अब महाराष्ट्र में मराठों ने जो माँगे की हैं उसमें न सिर्फ दुष्कर्म कांड पर कार्रवाई करने के अलावा कोई और मांग मानना असंभव है और न ही मौजूदा स्थितियाँ संसद से 1989 में पारित अनुसूचित जाति और जनजाति अत्याचार विरोधी कानून को खत्म करने की इजाजत देती है। काँग्रेस, राकांपा, भाजपा और शिवसेना समेत सारे दल मराठों के आंदोलन के साथ खड़े हैं। मौजूदा संवैधानिक ढाँचे के भीतर

50 प्रतिशत से ज्यादा आरक्षण संभव नहीं है। मराठा लंबे समय से शासक रहे हैं और उनकी सामाजिक हैसियत ऐसी कमजोर नहीं है कि उनपर अत्याचार की नियमित ऐसी घटनाएँ हों। इसलिए मराठों का विद्रोह लोकतंत्र के लिए घातक है।

(१६)प्रश्न: क्या आपकी नजर में पुरुषवादी समाज महिलाओं को उनकी शारीरिक सौंदर्य से आँकने की गलती नहीं कर रहा है? आखिर क्यों?

उत्तर: हाँ, मेरी नजर में भी पुरुषवादी समाज महिलाओं को उनकी सुंदरता या शारीरिक सौंदर्य से आँकने की गलती कर रहा है खासतौर तब जब आज स्त्री तकरीबन हर मोर्चे पर पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी है और प्राय: प्रत्येक क्षेत्र में अपने को अव्वल साबित कर रही है। इससे यह सिद्ध हो रहा है कि ज्यादातर मर्द स्त्री को उसकी देह से परे नहीं देख पा रहे हैं।

आपको याद होगा आज से तीन साल पहले यानी 2013 में अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने कैलिफोर्निया में आयोजित एक समारोह में सार्वजनिक रूप से अटार्नी जेनरल कमला डी हैरिस की प्रशंसा में कहा था कि कमला बेहद मेहनती हैं और दूसरे अटार्नी जनरलों से ज्यादा सुंदर भी हैं। मेहनती और काम में कुशल होने की योग्यता उनकी सुंदरता से जोड़ी गई, तो काफी हंगामा हुआ। पूछा गया कि क्या कभी स्त्रियाँ किसी पुरुष की योग्यता का आकलन उनके शारीरिक सौष्ठव के आधार पर करती हैं। इस मामले में आखिरकार राष्ट्रपति बराक ओबामा को माफी माँगनी पड़ी। इसकी चर्चा मैंने इसलिए की, ताकि राष्ट्रपति बराक ओबामा के बयान के संदर्भ में लोगों को यह पता चल सके कि पुरुषवादी समाज आज कहाँ गलत है।

मनोज जी, आपने यह खबर अखबार में पढ़ी होगी कि उत्तर प्रदेश के पीलीभीत में रेखा लोधी ने शादी के दो साल बाद हाल ही में अपना चेहरा सिर्फ इसलिए जला लिया था, क्योंकि उसके पति समेत दूसरे लोग भी उसे ताना मारते थे कि वह अपनी सुंदरता के बल पर हर जगह आकर्षण का केंद्र बन जाती है और लोग उसे पति से ज्यादा तवज्जो देते हैं। आज भी नगरों-महानगरों के कार्यालयों में किसी ओहदे पर बैठी महिला को अक्सर ऐसी ही टीका-टिप्पणियों का सामना करना पड़ता है कि यह तरक्की तो असल में उसने सुंदरता के बल पर हासिल की है किसी वास्तविक योग्यता के आधार पर नहीं।

नि:संदेह प्रकृति ने स्त्रियों को ऐसा बनाया ही है कि वे सुंदर दिखना चाहती हैं। यह एक स्वाभाविक प्रवृति है, अन्यथा लगभग हर क्षेत्र में पुरुषों

की बराबरी पर आ जाने के बाद से उनमें सुंदर दिखने की इच्छा खत्म हो जानी चाहिए थी। सच तो यह है कि असल मुद्दा उस सामाजिक व्यवहार का है, जिसमें स्त्री-पुरुष के बीच टीका-टिप्पणियों और परस्पर बर्ताव से सवाल उठ खड़े होते हैं। पुरुषों को ऐसा लगता है कि अगर किसी स्त्री को सुंदर कहा जाए और देहयष्टि के आधार पर उसकी तारीफ की जाए तो वह प्रसन्न होगी और सच में स्त्रियों की एक स्वभाविक इच्छा सजने-संवरने और सुंदर दिखने की होती भी है। लेकिन यह जरूरी नहीं कि अपनी सुंदरता के बल पर ही प्रत्येक स्त्री ऊँचे ओहदे पाती है या उसकी प्रोन्नति होती है। आज यदि देश-विदेश में इंदिरा नुई, चंदा कोचर, निशा देसाई बिस्वाल, किरण मजुमदार, सानिया मिर्जा, सायना नेहवाल, पी वी सिंधु, साक्षी मलिक, अरुणधति भट्टाचार्य आदि तमाम महिलाएँ बेशक सुंदर हैं, लेकिन उनकी सुन्दरता शरीर से ज्यादा उनके अपने क्षेत्रों में हासिल की गयी कामयाबी की है। इसे मद्देनजर रखते हुए जो स्त्री योग्यता और मेहनत की बदौलत किसी मुकाम पर पहुँची हो और उनकी प्रशंसा देह की सुंदरता से की जाए, तो यह बेहद कष्टकारी तो है ही उनके परिश्रम को नजरअंदाज करना भी है। स्त्रियों को यदि सिर्फ उनकी सुंदरता संबंधी केंद्रित और प्रचलित धारणा में सिकोड़कर देखा जाएगा तो उन सवालों का सही समाधान नहीं मिल पाएगा। इसलिए जरूरत इस बात की है कि स्त्रियों को सिर्फ उनकी शारीरिक सुंदरता के पैमाने से न आंककर उनकी सांस्कृतिक देह में ढालकर यानी उसकी असली कामयाबी को देखकर उन्हें आंका जाए, तो बेहतर होगा।

(१७)प्रश्न: राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में एक सिरफिरे युवक द्वारा एकतरफा प्रेम के नाम पर युवती पर २८ से ज्यादा बार चाकुओं से वार कर सरेआम युवती की हत्या किए जाने की नृशंस घटना ने क्या देशवासियों को विचलित नहीं कर दिया है? क्या इसे प्रेम नहीं, हिंसात्मक सनक नहीं कहा जाएगा?

उत्तर: राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के बुरारी में सिरफिरे युवक ने एकतरफा प्रेम के नाम पर युवती पर 28 बार से ज्यादा चाकुओं से वार कर सरेआम उसकी हत्या कर दी। इस घटना की सबसे दुखद पहलू तो यह है कि इस जघन्य अपराध का दिनदहाड़े अंजाम दिया गया, लेकिन आसपास जुटी भीड़ में से कोई भी उस लड़की की मदद के लिए आगे नहीं आया। निर्भया केस की गवाह बन चुकी राजधानी की सड़कों पर विगत 6 महीने में ऐसी ही सात हत्याएँ हो चुकी हैं जिसने पुन: देशवासियों को विचलित ही नहीं किया है

बल्कि एक बार फिर शर्मसार किया है। क्या आपराधिक मानसिकतावाले लोगों के हौसले इस कदर बुलंद हैं कि उनमें कानून या आमजन का कोई भय ही नहीं रह गया है? चिंतनीय यह है कि आखिर खुली सड़क पर यों बर्बरता करने की हिम्मत उनमें कैसे आ रही है?

यह कैसी विडंबना है कि अब आए दिन ऐसी कई घटनाएँ अखबारों की सुर्खियाँ बनती हैं, जिनमें प्यार में असफल युवाओं ने किसी लड़की की जिंदगी दूभर कर दी हो या फिर जान ही ले ली हो। आखिर हम किस ओर जा रहे है? क्या इसे प्रेम कहेंगे? यह तो हिंसात्मक सनक कहा जाएगा। आमजन के मन-मस्तिष्क को विचलित कर जाने वाली ऐसी घटनाओं से कुत्सित सोच वाले लोगों को कोई सबक क्यों नहीं मिलता है? यह सवाल हर ऐसी घटना पर चेतना को मथता है।

(१८)प्रश्नः क्या ओडिशा के कालाहांडी के दीना मांझी अपने कंधे पर अपनी पत्नी की लाश के साथ उस व्यवस्था की लाश भी ढो रहे थे, जो इनसानियत भूल चुकी है?

उत्तर: हाँ, ओडिशा के कालाहांडी जिले के दीना मांझी अपने कंधे पर अपनी पत्नी की लाश के साथ उस व्यवस्था की लाश भी ढो रहे थे, जो इनसानियत भूल चुकी है। कहा जाता है कि इंसान होने के नाते दूसरे इंसान की संवेदनाओं के प्रति हमारी संवेदना ही इनसानियत है, लेकिन तेजी से बदलते भारत में भावनाएँ पीछे छूटती जा रही हैं और समाज अपनी जिम्मेदारियों से पीछे हटता जा रहा है या इनसानियत की धुँआती आँखें स्पष्ट दिख रही हैं। हालांकि दूसरों की तकलीफ कुछ समय के लिए उसे उत्सुकता भर पैदा करती है, मगर फिर उसकी तकलीफ उसे परेशान नहीं करती।

देश के सबसे गरीब जिले में सुमार ओडिशा के कालाहांडी जिले के सरकारी अस्पताल में टीबी से हुई अपनी पत्नी की मौत के बाद अस्पताल से एंबुलेंस उपलब्ध नहीं कराए जाने की वजह से दीना मांझी को अपनी पत्नी की लाश को 10 किलोमीटर तक अपने कंधे पर ठोकर ले जाना पड़ा जबकि लाश के सही तरीके से अंतिम संस्कार की जिम्मेदारी अस्पताल की होनी चाहिए। आँख मूंदने से समस्याएँ खत्म नहीं होंगी। समस्याओं के समाधान के लिए ढाँचा बनाने की जरूरत है।

सत्तर सालों में हमारी व्यवस्था आदिवासियों, दलितों, वंचितों के जीवन स्तर को मानवीय नहीं बना सकी और हम भी इतना मनुष्य नहीं बन पाए कि विपदा में पड़े हुए एक आदिवासी दीना मांझी की मदद कर सकें।

10-12 किलोमीटर तक दीना माँझी अपनी 42 वर्षीय मृत पत्नी की लाश को अपने कंधे पर ले जाते हुए हजारों लोगों ने देखा होगा जिसमें साधन-संपन्न लोग भी होंगे, लेकिन लगता है कि सबकी सामाजिकता कहीं शून्य में बिला गई थी। एक की विपत्ति दूसरों के लिए मनोरंजन या कौतूहल की वस्तु बन गई। दरअसल आज जब किसी के जीवन का कोई मूल्य नहीं है,तो भला उसकी मृत्यु का क्या सम्मान हो सकता था? यह लापरवाही, संवेदनहीनता और अस्पताल कर्मियों से लेकर कंधे पर रखी लाश को ले जाते दृश्य को हजारों देखने वाले लोगों के जमीर के मर जाने की पराकाष्ठा है या पूरा-का-पूरा सरकारी तंत्र ही लकवाग्रस्त हो चुका है। ऐसे कई प्रश्न हैं जिसका उत्तर किसी के पास नहीं।

विडंबना है कि आजादी के 70 साल बाद भी इस तरह की खबरें देश के करीब हर राज्य से आती रहती हैं। चाहे वह लखनऊ से सटे बहराइच जिले की व्यथा हो जहाँ मात्र 20 रुपए रिश्वत न देने के चलते एक बच्चे की मौत हो गई या मध्यप्रदेश के उमरिया की घटना जहाँ दो लोग रात भर कंधे पर अपने रिश्तेदार की लाश ढोते दिखे। आज का समाज अब ऐसे दौर में जाता दिख रहा है, जहाँ संवेदनारूपी द्रौपदी का ताकतवर और निरंकुश व्यवस्था के हाथों हर रोज चीरहरण किया जा रहा है। गरीब, बेबस और शोषण से पीड़ित जनता बस चित्कार ही कर सकती है। आवाज उठाने वाला तबका भी अब थका-सा दिखता है। किस पर यकीन करें? सरकारी व्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था भी तो निरंकुश होती जा रही है। जब आसपास ऐसा होता है, तो मूकदर्शक बन जाते हैं और सोशल मीडिया पर जब यह सब देखते हैं, तो इनसानियत जग जाती है। हकीकत यही है कि हम सब वह पेड़ हैं जो अकेले तूफानों से जूझते हैं सिर्फ अकेले। यह तस्वीर भी उसी अकेले इंसान की है जिसने अपनी पत्नी की लाश अकेले ढोया।

(१९)प्रश्न: उ.प्र. के मथुरा स्थित जवाहरबाग की घटना को आप किस रूप में आँकते है? इससे निजात पाने के लिए किस चीज की जरूरत है?

उत्तर: धर्म को एक नग्न रूप पिछले दिनों कृष्ण की लीलास्थली यानी एक धर्मस्थली पश्चिमी उत्तरप्रदेश का एक विकसित होता शहर मथुरा में देखने को मिला जहाँ के जवाहरबाग की हैरान करने वाली घटना से निकले संकेत स्पष्ट हैं कि वहाँ न तो धर्म की रक्षा हुई और न विधि आधारित शासन के

कायदे-कानूनों का पालन हुआ। जवाहरबाग में जो खूनी खेल हुआ, असल में वह राजनीति द्वारा अपनी मर्यादाओं को ताक पर रखकर निहित स्वार्थी बाबाओं को शह देने का नतीजा था, जिसकी कीमत आखिरकार पुलिस के चंद जांबाज अधिकारियों और नगर की शांति व्यवस्था को भी चुकानी पड़ी। ऐसा न होता तो रामवृक्ष यादव जैसे रंगसियारों के लिए मथुरा सरीखे दोहरी पहचान वाले शहर में अपने स्वार्थ को जगत कल्याण बताकर पेश करना और फिर इसी बहाने अँधश्रद्धा से भरे लोगों को अपने पीछे लामबंदकर लेना मुमकिन न था। जय गुरुदेव कहलाने वाले तथाकथित धर्मगुरु के चेले रामवृक्ष यादव ने अँधश्रद्धा से आकंठ भरे लोगों की जमात के बल पर करीब 250 एकड़ में फैले जवाहरबाग की कीमती सरकारी जमीन पर अनशन के बहाने कब्जा जमाने में सफल हो गया।

इस घटना की पृष्ठभूमि सीधे तौर पर संकेत करती है कि जवाहरबाग में फैले रामवृक्ष यादव के साम्राज्य को उत्तरप्रदेश सरकार में बैठे कुछ प्रभावशाली लोगों का संरक्षण प्राप्त था। आखिर तभी तो उसके अवैध आदेश के आगे उच्च न्यायालय, मुख्य सचिव, आयुक्त और जिलाधिकारी के आदेश भी अर्थहीन हो जाते हैं। आखिर तभी तो रामवृक्ष यादव कई साल से समानांतर सरकार चला रहा था और सरकार की जमीन पर कब्जा कर रखा था। उसके अपने गिरोह के पास अत्याधुनिक हथियार थे जिसके बल पर उसकी दादागिरी चल रही थी और जवाहरबाग में आने वालों एवं टहलने वालों से परिचय पत्र माँगता था और टैक्स वसुलता था। उस इलाके को खाली कराने के लिए पुलिस गई तो उसपर हमला कर दिया जिसमें एक युवा आरक्षी अधीक्षक के अतिरिक्त कोई तीस लोग मारे गए। पुलिस ने जब जवाबी कार्रवाई की, तो उसमें खुद रामवृक्ष यादव भी मारा गया।

दरअसल, राजनेताओं ने वोट बैंक की राजनीति में देश को दाव पर लगा दिया है। उ.प्र. में जातीय समीकरण इतने तगड़े हैं कि अधिकारी उसमें उलझना नहीं चाहते, लेकिन नेता यह नहीं समझ पा रहे हैं कि आज जिस अपराधी को अपने हित के लिए इस्तेमाल कर बढ़ावा दे रहे हैं कल वही उनके गले की हड्डी बनने वाला है। अगर संबंधित राज्यों की सरकार अपराधियों का अपने हक में इस्तेमाल करेगी, तो मथुरा जैसी घटना होती रहेगी।

हाल-फिलहाल में धर्म और पंथ के स्वयम्भू मठाधीशों के बीच राजनीतिक महत्वाकांक्षा भी बड़ी तेजी से पनपी है। सच तो यह है कि

समाज में अँधभक्ति, वैज्ञानिक चेतना का निषेध हमारा संस्कार बन चुका है और रूढ़िवादिता हमारा राष्ट्रीय धर्म। यह हमारा सदियों का अभ्यास है जो हमें जड़मति बना भेड़ों के झुंड में तब्दील कर चुका है। इसलिए जबतक वैज्ञानिक चेतना लुप्त-सुप्त रहेगी तबतक ऐसे पाखंडियों की पांत विकसित और पुष्ट होती रहेगी। जरूरत एक सजग समाज की है, जरूरत अँधभक्ति, रूढ़ियों और चमत्कारों की चकाचौंध के मायावी जगत से जनसमुदाय को बाहर निकाल लाने की है।

(२०)प्रश्नः क्या एक साथ और एक वक्त में तलाक-तलाक-तलाक कह देने से मुसलमान पति-पत्नी के बीच का शादीशुदा रिश्ता खत्म हो जाता है? पैगम्बर हजरत मोहम्मद (सल्ल) के वक्त तलाक का क्या तरीका अपनाया गया था? क्या इसे विडंबना नहीं कहा जाएगा कि तलाक की जो प्रक्रिया इसलाम ने तय की थी, मुसलमानों ने ही उसे छोड़ दिया?

उत्तर: विगत कई दशक से मुसलमान एक ऐसी बहस पर अटके हैं कि क्या एक साथ और एक वक्त में तलाक-तलाक-तलाक कह देने से मुसलमान जोड़ों के बीच का शादीशुदा रिश्ता खत्म हो जाता है? इस संदर्भ में उत्तराखंड निवासी शायरा बानो और लखनऊ की रजिया की तलाक की कहानी का जिक्र कहना चाहूँगा। वर्ष 2002 में शायरा बानो की शादी होने के बाद जब दहेज के लिए उसे प्रताड़ित और उस पर जुल्मों-सितम किए जाने के साथ उसे ऐसी दवाएँ दी गई जिससे कई एबार्शन हो गए और वह जब बीमार रहने लगी तो उसे मायके भेज दिया गया। फिर अक्टूबर, 2015 में उसके शौहर ने इकट्ठी तीन बार तलाक कहकर उससे मुक्ति पा ली। इसके बाद शायरा ने सर्वोच्च न्यायालय में इस इकतरफा तलाक के विरूद्ध याचिका दायर कर उसे खत्म करने की माँग की।

इसी प्रकार रजिया की शादी होने के बाद उसका शौहर जब कमाने के लिए सऊदी अरब चला गया तो इस बीच वह एक बच्चे की मां बन गई। फिर अचानक उसके ससुरालवाले ने रजिया को यह खबर दी कि उसके शौहर ने सऊदी अरब से ही टेलिफोन पर एक ही वक्त तीन बार तलाक कहकर रजिया की जिंदगी बदल दी।

तलाक के इस रूप को इस्लामी कानून की जबान में तलाक-ए-बिदत कहा जाता है, यानी तलाक का ऐसा तरीका, जो कुरान और हदीस में नहीं मिलती है। तलाक की बुनियाद, पति-पत्नी के बीच मतभेद होता है इसलिए

तलाक की इजाजत देने से पूर्व इस्लाम इस बात की पैरवी करता है कि पति-पत्नी सुलह की गुंजाइश तलाशें।

आजाद भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री रहे मौलाना अबुल कलाम आजाद ने अपनी तफ्सीर 'तर्जनामुल कुरान' में एक आयत के हवाले से कहा है- 'अगर ऐसी सूरत पैदा हो जाए, जिसमें इस बात का अंदेशा है कि शौहर और बीवी में अलगाव पड़ जाएगा, तो फिर चाहिए कि खानदान की पंचायत बिठाई जाए। पंचायत की सूरत यह हो कि एक आदमी मर्द के घराने से चुन लिया जाए और एक औरत के। दोनों आदमी मिलकर सुलह करने की कोशिश करें।'

अगर सुलह न हो पायी तब तलाक इस सुलह के नाकाम होने के बाद का अगला कदम है। पैगम्बर हजरत मोहम्मद (सल्लू) की हदीस है, 'खुदा को हलाली चीजों से सबसे नापसंदीदा चीज तलाक है।' फिर भी इसकी नौबत आ गयी है तो मौलाना अबुल कलाम आजाद ने इसी किताब में तलाक से जुड़ी आयत के हवाले से लिखा है, 'तलाक देने का तरीका यह है कि वह तीन मर्तबा, तीन मजलिसों में, तीन महीनों में और एक के बाद एक लागू होती हैं। और वह हालत तो कतई तौर पर रिश्ता निकाह तोड़ देती है, तीसरी मजलिस, तीसरे महीने और तीसरी तलाक के बाद वजूद में आती है। उस वक्त तक जुदाई के इरादे से बाज आ जाने और मिलाप कर लेने का मौका बाकी रहता है। निकाह का रिश्ता कोई ऐसी चीज नहीं है कि जिस घड़ी चाहा, बात की बात में तोड़कर रख दिया। इसके तोड़ने के लिए मुख्तलिफ मंजिलों से गुजरने, अच्छी तरह से सोचने, समझने, एक के बाद दूसरी सलाह-मशविरा की मोहलत पाने और सुधार की हालत से बिल्कुल मायूस होकर आखिरी फैसला करने की जरूरत है।'

जहाँ तक पैगम्बर हजरत मोहम्मद के वक्त तलाक के तरीका का सवाल है महमूद बिन लबैद कहते हैं कि 'रसूल को बताया गया कि इस शख्स ने अपनी बीवी को एक साथ तीन तलाक दे दी हैं। यह सुनकर पैगम्बर हजरत मोहम्मद बहुत दुखी हुए और फरमाया, क्या अल्लाह की किताब से खेला जा रहा है, वह भी तब, जब मैं तुम्हारे बीच मौजूद हूँ।' यानी पैगम्बर हजरत मोहम्मद भी तीन बार की तलाक को कतई पसंद नहीं करते थे।

ऐसा नहीं है कि सभी भारतीय मुसलमान एक वक्त में दिए गए तीन तलाक को सही मानते हैं। लेकिन हाँ, मुसलमानों में कुछ ऐसे तबके

अब भी हैं, जो इस तीन तलाक को बिल्कुल नहीं मानते हैं। वह तीन चरणों की प्रक्रिया पूरी करने पर जोर देते हैं। सवाल है अगर वे मान सकते हैं, तो बाकी लोग क्यों नहीं ?

मिस्र ने ऐसे तलाक से 1929 में ही छुटकारा पा लिया था। इसके अलावा पाकिस्तान, बांग्लादेश, तुर्की, ट्यूनीशिया, अल्जीरिया, कूवैत, इराक, इंडोनेशिया, मलेशिया, ईरान, श्रीलंका, लीबिया, सूडान, सीरिया, ऐसे मूल्क हैं, जहाँ तलाक कानून प्रक्रियाओं से गुजरकर पूरा होता है।

दुनिया में इस्लाम पहला ऐसा मजहब था, जिसने शादी को दो लोगों के बीच बराबर का करार बनाया। अगर निकाह एक खास प्रक्रिया के बिना पूरी नहीं हो सकती, तो बिना किसी प्रक्रिया के एकबारगी सिर्फ तीन बार तलाक-तलाक-तलाक कह देने से निकाह कैसे खत्म हो जाना चाहिए? यही नहीं, अगर निकाह बिना औरत की रजामंदी के पूरी नहीं हो सकती तो उसे शामिल किए बिना तलाक की प्रक्रिया कैसे पूरी हो जाती है? यह कैसी विडंबना है कि शादी या तलाक की जो प्रक्रिया इस्लाम ने तय की थी, उसकी झलक नए जमाने के कानूनों में तो दिखती है, लेकिन मुसलमानों ने ही उसे छोड़ दिया। बेहतर हो कि एक साथ तीन तलाक देने के तरीके को मुसलमान खुद ही खत्म करें। यह सही तरीका नहीं है। वरना शायरा या रजिया जैसी औरतें अदालत का दरवाजा खटखटाएँगी ही।

(२१)प्रश्नः क्या अधिकारों को पाने के लिए हिंसा को अपनाना जायज है? पिछले दिनों हरियाणा में आरक्षण की माँग को लेकर जाटों के हिंसक आंदोलन अथवा गुजरात के पाटीदारों को आरक्षण के संदर्भ में क्या आपको ऐसा लगता है कि राजनीतिक कारणों से ऐसे मूद्दों को भड़काने की कोशिश राजनीतिक दल करते हैं?

उत्तर: आपके पहले सवाल के उत्तर में तो मैं यही कहना चाहूँगा कि अपने अधिकारों को पाने के लिए हिंसा को अपनाना बिल्कुल जायज नहीं है, क्योंकि अधिकारों की प्राप्ति हेतु अपनी माँगों को मुखर करने के लिए धरना-प्रदर्शन या आंदोलन के अधिकार को कोई लोकतांत्रिक व्यवस्था किसी सीमा तक ही स्वीकार कर सकती है। किसी व्यक्ति या समूह के हितों के संवर्धन में उठने वाली माँग को इतना उग्र होने की छूट नहीं दी जा सकती कि वह दूसरों के लिए आफत बन जाए। जन-सामान्य के रोजमर्रा के जीवन को संभव बनाने वाली अस्पताल, स्कूल, पानी, आवागमन आदि जैसी सेवा-सुविधाएँ बाधित हो जाएँ या व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय संपत्ति को हानि

पहुँचाई जाए, तो आरक्षण हो या संविधान प्रदत कोई अधिकार उन्हें पाने के लिए लोगों को छूट नहीं दी जा सकती।

जहाँ तक हरियाणा में आरक्षण की माँग को लेकर जाटों के हिंसक आंदोलन का सवाल है अथवा गुजरात के पाटीदारों द्वारा आरक्षण के लिए आंदोलन, अपनी आक्रामकता के चलते ये लोकतंत्र की मूल भावना का अपहरण करते दिखे। हरियाणा में तो जाटों के रोहतक से शुरू होकर लगभग सारे हरियाणा में फैले हिंसक आंदोलन की वजह से न केवल तकरीबन हजारों करोड़ रुपए की संपत्ति नष्ट हो गई और मॉल, दुकानें, पुलिस थाने और रेलवे स्टेशन जला दिए गए, बल्कि 24 लोगों की जानें भी गईं। सबसे घिनौनी और शोचनीय तस्वीर तो सामूहिक बलात्कार की कथित घटनाओं से उभरती है। राजमार्गों पर मुसाफिरों के साथ शर्म से सिर झुका जाने वाला बर्ताव किया गया।

दरअसल, राजनीतिक दलों के लिए तात्कालिक राजनीतिक हित सबसे अहम होते हैं इसलिए सप्रंग सरकार ने जाते-जाते जाटों के आरक्षण की व्यवस्था कर दी, पर सर्वोच्च न्यायालय ने उसे खारिज कर दिया। सच तो यह है कि संविधान में केवल शैक्षणिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़ी जातियों के लिए ही प्रावधान हैं। हरियाणा के जाट हों या किसी अन्य प्रदेश के अथवा गुजरात के पाटीदार समाज, वे सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े नहीं हैं, उल्टे ये जातियाँ भूमिधारक हैं और संपत्ति अर्जित करना उनके लिए कभी मुश्किल नहीं रहा। वे सुखी संपन्न तो हैं ही राजनीति में भी उनकी अच्छी पकड़ तथा व्यापार आदि में उनका बोलबाला है। इसलिए उनकी समस्या सामाजिक भेदभाव की नहीं है। हाँ, इतना जरूर है कि हरियाणा में जाट और गुजरात में पाटीदार खेती करने वाली जातियाँ हैं और आज की वास्तविकता यह है कि खेती लाभप्रद नहीं रह गई है जिसकी वजह से उन्हें लग रहा है कि वे तो सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की निचली पायदान पर पहुँच गए। आजादी के बाद से ही कृषि क्षेत्र की जो उपेक्षा की जा रही है उसी का परिणाम है कि समाज के अलग-अलग वर्गों से आरक्षण के लिए माँग उठ रही है और स्थिति तो यहाँ तक आ गई है कि जातीय वर्णक्रम में जो जहाँ है वहाँ से नीचे जाना चाह रहा है। यहाँ तक कि सवर्णो में शुमार होकर गर्व करने वाले पिछड़ा वर्ग में सम्मिलित होने और जो पिछड़ा वर्ग में हैं वे अनुसूचित जाति या जनजाति में अपने को शामिल करने की माँग कर रहे हैं।

हरियाणा में जाट आरक्षण की माँग कर रहे आंदोलनकारियों ने हिंसा का जो प्रदर्शन किया वह आंदोलन पूरी तरह राजनीतिक हो जाने की वजह से जाति के आधार पर व्यवसायिक प्रतिष्ठानों में तोड़-फोड़ और आगजनी से समाज में एक बड़ी दरार पड़ गई जिसमें सत्ता से बाहर हो जाने का आक्रोश नजर आया। बीस साल बाद हरियाणा में गैर जाट मुख्यमंत्री बन जाने से वर्तमान सत्ताधारियों को जाट स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं जिनकी कुल आबादी 29 प्रतिशत है और वे 1991 से ही आरक्षण के लिए आंदोलन कर रहे हैं, मगर इसी बार उनका आंदोलन इतना हिंसक हुआ जिसे देखते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने भी कड़ी टिप्पणी की है और निजी या सार्वजनिक संपदा के नुकसान होने की जवाबदेही व्यक्ति या संगठन अथवा राजनीतिक दलों से हर्जाने की वसूली करने को कहा है।

देश की राजधानी दिल्ली से कोई 42 कि.मी. दूर जी.टी.रोड पर स्थित मुरथल के ढाबों पर आरक्षण की माँग को लेकर 21-22 फरवरी 2016 की रात जब पूरे हरियाणा में कानून की धज्जियाँ उड़ाई जा रही थीं, पथराव, आगजनी और तोड़फोड़ का बाजार गर्म था, तो मुरथल में दरिंदगी का वह नंगा नाच चल रहा था, जिसे देखकर शायद शैतान भी आँखें बचा ले। पेट्रोल बम से वाहनों को फूँक रहे और ट्रक चालकों को पीट कर कथित 40 आंदोलनकारियों की भीड़ ने महिलाओं एवं कम उम्र की लड़कियों को मर्दो की भीड़ झाड़ियों में खींचकर उनके साथ हैवानियत की गई। अराजक तत्वों ने पूरी राज्य व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया। इतनी बड़ी हिंसा राजनीतिक समर्थन के बिना संभव नहीं। पुलिस यहाँ तक कि सेना बुलाई गई। लोकतंत्र का मतलब हिंसात्मक आंदोलन नहीं हो सकता। आरक्षण की आड़ में इस तरह के हिंसात्मक आंदोलन को किसी सूरत में बढ़ावा नहीं दिया जाना चाहिए।

हरियाणा के जाट आंदोलन को हिंसक बनाने में जारी किए गए ऑडियो टेप पर यकीन करें, तो ऐसा लगता है कि मोदी सरकार को बदनाम करने के लिए सत्ता से च्यूत पार्टी ने साजिश रची। हाल में आए स्टिंग ऑपरेशन में हरियाणा के पूर्व मुख्यमंत्री के एक राजनीतिक सलाहकार और खाप पंचायत के प्रमुख के बीच हुई बातचीत के आधार पर कहा जा सकता है कि हिंसा को भड़काने के लिए खाप नेता की सराहना करते सुने गए। यही कारण है कि पूर्व मुख्यमंत्री के गढ़ माने जाने वाले रोहतक और झज्जर में सबसे अधिक हिंसा हुई और रोहतक के विधायक हिंसा फैलने के दौरान वहाँ से गायब थे। यही नहीं, हैरानी की बात तो यह है कि रोहतक में

आमलोगों की संपत्ति को नुकसान पहुँचाया गया, मगर पूर्व मुख्यमंत्री की संपत्ति को कोई नुकासन नहीं हुआ, जबकि उनके पड़ोस के घर-दुकान फूँके गए। जाट आंदोलन में सबसे अधिक नुकसान गैर जाटों की संपत्तियों को हुआ और इस हिंसा में चौबीस लोग मारे गए। जाट आंदोलन से तकरीबन 34 हजार करोड़ रुपए का नुकसान हरियाणा को उठाना पड़ा जिससे राज्य के विकास दर पर असर पड़ेगा। अधिकार पाने के लिए आंदोलन करने का अधिकार सबको है, मगर जिस आंदोलन से नृशंसता फैलने लगे और हिंसा करने वालों की पाशविकता से हर देशवासी का सिर दुख और शर्म से झुकने लगे, तो उसका कोई औचित्य नहीं बनता। फिलहाल ऐसी घटनाएँ हमारे समाज और देश के लिए चेतावनी की तरह हैं, क्योंकि इससे समाज में एक घातक रोग को बढ़ावा मिल रही है और ताकतवर जातियों को आरक्षण देकर आरक्षण के सिद्धांत का मजाक उड़ाया जा रहा है।

सच कहा जाए तो मूलत: आरक्षण एक सकारात्मक कदम था, जो वंचित समुदायों के सशक्तीकरण की मानवीय जरूरत को ध्यान में रखकर किया गया था। यह सराहनीय और बेहद जरूरी कदम था। इसका एक पुष्ट जातिगत आधार था, जो सदियों पुरानी भेदभाव की एक कड़वी सच्चाई थी। इसे नकारा नहीं जा सकता, मगर यह भी उतना ही सच है कि बदलती परिस्थितियों में भी बिना किसी तरह के आकलन या मूल्याँकन के इसे ज्यों का त्यों लागू करते जाना और शिक्षा में प्रवेश, नौकरी और अन्य सुविधाओं के वितरण में छह-सात दशकों में इसकी मात्रा बढ़ते जाना तर्क से परे है। ऐसा करते जाना भी सामाजिक भेदभाव, समरसता और सामाजिक उन्नति की दृष्टि से हमें कहाँ ले जा रहा है, यह किसी से छिपी नहीं है। देश और समाज के प्रति प्रतिबद्धता और समता, समानता एवं बंधुत्व को लेकर ही हम गरीबी और भेदभाव की महामारी से लड़ सकेंगे। आजादी के सात दशक बीत जाने के बाद भी आरक्षण का सही फायदा जरूरतमंद लोगों तक नहीं पहुँचकर जातिगत आरक्षण की आड़ में समाज के आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणित रूप से सबल अथवा समाज विरोधी ताकतों को पोषित कर रहा है। हरियाणा में जाट और गुजरात में पटेल आरक्षण की मांग को इसी नजर से देखा जा सकता है। राजनेताओं एवं राजनीतिक दलों को जातिगत आरक्षण की राजनीति उन्हें सदैव इसलिए लुभाती है, क्योंकि जातिगत वोट बैंक, दलों एवं नेताओं को शक्ति प्रदान करने का काम करते हैं जिससे चंद लोगों को भले फायदा मिल जाता है, मगर देश का भला तो कभी नहीं हो सकता।

(२२)प्रश्नः मौजूदा दौर के समाज में आज जो कुछ हो रहा है क्या वह हमारे दिलो-दिमाग में खलबली मचा देने के लिए पर्याप्त नहीं है?
उत्तर: मौजूदा दौर में आज जो जहर बोया जा रहा है, उसका असर हमारे जीवन में तेजी से समाता जा रहा है। जातियता, सांप्रदायिकता, क्षेत्रीयता, भाषावाद, अलोकतांत्रिकता और आतंक के नए-नए खेल जारी हैं। कई तरह के हड़बोंग अपना जलवा दिखा रहे हैं और तमाशों के नए स्वरूप भी। एक नाटक लगातार खेला जा रहा है। ऐसे वक्त प्रसिद्ध लोकप्रिय कवि मुकुट बिहारी 'सरोज' की पंक्तियाँ सहसा स्मरण आ रही हैं-

"एक ओर पर्दो के नाटक,
दूसरी ओर नंगे
राम कहीं ऐसे में हो जाएँ न दंगे।
अव्वल मंच बनाय ऊँचा,
जनता नीची है
जगह-जगह से सीमा रेखा खींची है।"

हम सब निरंतर बेचैन हैं, क्योंकि अपराधियों का खौफ, चोरी-डकैती, रंगदारी, अपहरण और दुष्कर्म की घटनाएँ रूकने का नाम नहीं ले रही हैं। यह हमारे दिलो-दिमाग में खलबली मचा देने के लिए काफी है। आखिर गालिब को रातभर नींद क्यों नहीं आती थी? कबीर अपने समय की चाल से क्यों परेशान रहे? यह आसानी से समझा जा सकता है। तभी तो धूमिल यह कहने को बाध्य हुए कि 'मुझे अपनी कविताओं के लिए दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है।' 1958 से 1960 तक पटना कॉलेज के जैक्सन हॉस्टल तथा 1961-62 में न्यू हॉस्टल में रहते हुए अपने छात्र जीवन और उसके बाद के समय को जब मैं याद करता हूँ, तो आश्चर्य होता है। और हो भी क्यों नहीं आए दिन जैक्सन, मिंटो तथा नव छात्रावास के छात्रों के बीच मारा-पीटी, बम-पिस्तौल के धमाके की खबरें जब आए दिन समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलती हैं तो 'जैक्सोनियन' कहने में आज मुझे शर्मिंदगी महसूस होती है।

याद करता हूँ मैं उन दिनों को जब किताबें पढ़ते हुए पूरी रात गुजर जाती थी और मन नहीं भरता था। दोस्ती एवं सहपाठियों के बीच इस बात की चर्चा होती थी कि इस समय आपने क्या पढ़ा है? पढ़ना एक शौक था, पढ़ना एक आदत थी, पढ़ना एक लक्ष्य था, पढ़ना एक पूजा थी और पढ़ना एक तप था। वो दिन हवा हुए, जब कहा जाता था कि अच्छी पुस्तकें हमारी सबसे अच्छी मित्र होती हैं। पटना विश्वविद्यालय की बात मैं क्या करूँ जब

आज जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय और हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय परिसर में छात्र-छात्राओं सहित कथित आतंकवादियों से साठगांठ कर रहे बाहरी लोगों के द्वारा राष्ट्रविरोधी नारे लगाए जा रहे हैं और आंदोलन का सिलसिला जारी है और तभी तो नेताओं और तथाकथित बड़े लोगों के कारनामों ने वहाँ पांव पसारे हैं। साहित्य और सांस्कृतिक सवालों की जगह विज्ञापन बाजार और राजनीति की चुहलबाजियों ने स्थाई अड्डा जमा लिया है। तथाकथित महानों के करिश्मों और उनकी कारगुजारियों के किस्से छप रहे हैं। कहते हैं कि समय बदलता है तो कई चीजें बदल जाती हैं।

यही देखिए न, समय बदलने के साथ-साथ विगत कई वर्षो से घर और रिश्ते किस तरह हाशिए पर चले गए हैं और समाज के अगुआ कहे जाने वाले साहित्यकार एवं बुद्धिजीवियों द्वारा लेखन में उसका जिक्र तक नहीं हुआ। सच तो यह है कि मौजूदा दौर में एक गहरी शांति हमारी जड़ों में एक अदृश्य प्रतिक्षा करता जीवन है जो समय की आँच में कहीं बिला गया है। सच तो यह है कि टूटते रिश्तों से सिर्फ एक मनुष्य ही दुखी नहीं होता है, बल्कि बहुतेरे व्यक्ति प्रभावित होते हैं, खासतौर पर मासूम पर इसका असर सबसे गहरा पड़ता है। यह समाज का यथार्थ है।

(२३)प्रश्नः भारत में कौन-सी ताकत है, जिसके बल पर शादियाँ सफल होती हैं और पति-पत्नी आजीवन साथ रहते हैं? क्या कारण है कि इधर हाल के दशकों में इस देश में भी संयुक्त परिवार टूट रहा है औ पति-पत्नी के संबंधों में भी टकराहट बढ़ी है ? जीवन को बेहतरीन बनाने के लिए आपके क्या सुझाव हैं?

उत्तरः आपके पहले प्रश्न के उत्तर में मैं यह कहना चाहूँगा कि यह वही देश है जहाँ यह माना जाता है कि पति-पत्नी के रिश्ते ईश्वर बनाते हैं जिसे तोड़ा नहीं जाए। यही भारतीय समाज की ताकत है। एक बार शादी के बंधन में बँध गए तो उसे निभाते भी हैं। यह सात जन्म का बँधन माना जाता है। भारत ही वह देश है, जहाँ लोग शादी की 25वीं, 50वीं, 60वीं और 75वीं वर्षगांठ भी मनाते हैं। दूसरों की क्या कहें, हम दोनों पति-पत्नी की शादी की 50वीं वर्षगांठ विगत 8 जुलाई, 2012 को पटना के ए.जी.कॉलोनी में नवनिर्मित 'संस्कृति' निवास में पुत्र सुधीर रंजन, पुत्रवधु सुनीता रंजन तथा पौत्र समीर रंजन सहित राष्ट्रीय विचार मंच द्वारा मनाई गई।

दरअसल, भारत में पति-पत्नी के आजीवन साथ रहने के पीछे वह ताकत है एक-दूसरे के प्रति अटूट विश्वास और बुरे दिनों में भी साथ नहीं

छोड़ने के संकल्प की। संयुक्त परिवार की ताकत, उसके गुण, बड़ों का सम्मान और बड़े-बुजुर्गों का निर्णय परिवार में अंतिम माना जाता रहा है और रिश्ते निभाने के लिए अंतिम समय तक प्रयास किया जाता है।

मगर भारत में भी इधर हाल के दशक में भारतीय समाज पर पाश्चात्य देशों की आधुनिकता के असर की वजह से संवेदनशीलता खत्म होती जा रही है और रिश्तों में दरार पड़ना शुरू हो गया है। आँकड़े तो बताते हैं कि दस साल पहले तक भारत में जहाँ हजार शादियों में सिर्फ एक शादी टूटती थी वहीं अब यह बढ़कर 13 तक पहुँच गई है। फिर भी खतरनाक स्थिति नहीं आई है। अमेरिका में तो हर हजार शादियों में पाँच सौ शादियाँ टूटती हैं।

रिश्तों में दरार के कारणों पर जब नजर डालते हैं, तो पाते हैं कि पैसों का महत्व बढ़ गया है, पति-पत्नी दोनों धन अर्जित करना चाहते हैं ऐसे में एक-दूसरे को समय नहीं दे पाते हैं। इसलिए हर शादी के बाद एक अलग घर बसने लगा है। कभी मजबूरी में तो कभी दबाव में। आपसी विवाद को सुलझाने में बड़ी भूमिका निभाने वाले माता-पिता अब पैत्रिक घरों अथवा अपनी कर्मभूमिवाले शहरों तक सिमट गए हैं।

जीवन को बेहतरीन व तनावरहित बनाने का फॉर्मूला भारतीय परिवार, भारतीय समाज के भीतर ही है। संबंधों की संवेदनशीलता को समझना होगा, दुनिया की चकाचौंध के चक्कर में पड़ने से बेहतर है, चैन और शांति की जिंदगी। बेहतर होगा कि बच्चों में इतने गहरे संस्कार, जो भारतीय संस्कृति में कूट-कूटकर कर भरा है दिए जाएँ, ताकि परिवार एक रहे, खुशहाल रहे, सम्मान की परंपरा आगे बढ़े, विश्वास की नौबत ही न आए। वैसे भी परिवार समाज का हृदय होता है, क्योंकि यह प्यार, विश्वास और भरोसे पर टिकी संस्था है जिसका अनादर किसी भी कीमत पर नहीं किया जाना चाहिए।

(२४)प्रश्न: मौजूदा दौर के स्त्री विमर्श एवं महिलाओं के प्रति बढ़ते आपराधिक ग्राफ को आप एक रचनाकार होने के नाते कैसे देखते हैं?

उत्तर : सबसे पहले तो मैं यह बता दूँ कि मौजूदा दौर के स्त्री विमर्श और महादेवी वर्मा अथवा मीरा के समय के स्त्री विमर्श में अंतर है, क्योंकि हमारा समाज निर्धारित करता है कि स्त्री संघर्ष किस दिशा में होगा। महादेवी जी की शादी बचपन में ही हो गई थी जिसका उन्होंने विद्रोह किया और ससुराल नहीं गई। पढ़ी-लिखी और शिक्षित होकर साहित्य सृजन में रत हो गई। इसी प्रकार मीराबाई राजरानी थी इसलिए उन्हें महल, नौकर-चाकर कई

तरह की सुविधाएँ थीं, लेकिन बंदिशें भी थीं जिससे मुक्ति पाने का एक मात्र विकल्प उन्हें धर्म दिखा और उसके माध्यम से उन्होंने स्त्री संघर्षों को भी लोगों के सामने प्रस्तुत किया।

जहाँ तक मौजूदा दौर के स्त्री विमर्श एवं महिलाओं के प्रति बढ़ते आपराधिक ग्राफ को रचनाकार होने के नाते हमारी दृष्टि का सवाल है, मैं मानता हूँ कि समाज की समस्त गतिविधियों का केंद्र स्त्रियाँ ही होती हैं, मगर विज्ञान कि अकथ उपलब्धियों के बावजूद सृष्टि को आगे ले जाने, सृजन की उनकी क्षमता का विकल्प अबतक सुलभ नहीं है। उनकी इस अनिवार्य केंद्रीय स्थिति के बावजूद दैहिक अवस्था को आधार बना सीमाओं में बाँधने के प्रयास, काल और स्थान के भेद मिटा, पितृ सत्तात्मक समाज हमेशा से करता आया है। उसकी देह और चेतना पर एक साथ हमले होते आए हैं और आज भी जारी हैं। मजबूत और स्वतंत्र मिथकीय स्त्री व्यक्तित्वों को महिमामंडित कर और अन्यों को लांक्षित, प्रताड़ित अथवा उपेक्षित कर सीमाओं में बाँधने की चेष्टा सर्वत्र और हर समय देखी जा सकती है।

यह तो कहिए कि सही मायने में महादेवी वर्मा ने स्त्री विमर्श की शुरुआत की और जिन्होंने स्त्रियों से सभी अशोभनीय और अस्वीकार्य बंधनों को तोड़ मुक्त होने, अपने अस्तित्व की रक्षा करने और अपनी क्षमता आजमाने की प्रेरणा दी। वैसे भी गौरव और आत्मविश्वास के साथ जीना स्त्री का जन्मसिद्ध अधिकार है। समान काम के लिए समान वेतन से भी अधिक उपयोगी है कि वह पुरुष के सद्‌गुणों को आत्मसात् करे तथा एक ऐसे समाज का निर्माण करे जहाँ शांति से रहने के लिए लिंगभेद की कोई गुंजाइश न हो।

आज की स्त्री आजाद होने की कोशिश कर रही है, सभी तरह के बंधनों को चुनौती दे रही है और अपने घुटन से मुक्ति पाने का प्रयास कर रही है। स्त्री-लेखन का जहाँ तक संबंध है स्त्री की आँख इस दुनिया को बदल रही है और परंपरा एवं आधुनिकता दोनों के मौजूदा स्वरूपों और तत्वों को ज्यों-का-त्यों न स्वीकारते हुए उसमें अपनी ओर से काफी कुछ नया जोड़ रही है। एक वैकल्पिक आधुनिकता का निर्माण करने में जुटी है जिसके मूल में है करुणाजन्य विवेक, न्याय और बराबरी का सहज अहसास। एक ओर जहाँ स्त्री बराबरी का सहज अहसास कराने में लगी है, वहीं दूसरी ओर स्त्री उत्पीड़न का ग्राफ बढ़ता जा रहा है। आपराधिक आँकड़ों को देखने से समाज की जिस मानसिकता का चित्र उभर कर सामने आता है, वह चिंता

का विषय है। दरअसल, मुझे लगता है कि संक्रमण के दौर से गुजरता समाज परंपरा और रूढ़ियों को तोड़कर आगे बढ़ना चाहता, पर बदलाव को स्वीकार अभी भी नहीं कर पा रहा है। आज जहाँ लड़कियाँ हर क्षेत्र में अपनी योग्यता और क्षमता का परचम लहरा रही हैं, वहीं लड़कों के मन में उनके प्रति असहिष्णुता और दुर्भावना भी पनप रही है। मगर सुखद एवं सकारात्मक स्थिति यह है कि तमाम तरह के प्रतिरोधों और दमनचक्र का सामना करते हुए स्त्री अपनी आवाज साहित्य के माध्यम से उठा रही है।

(२५)प्रश्नः कहा जाता है कि प्रकृति की न्याय व्यवस्था सर्वोपरि है जो मानव की साधारण बुद्धि से परे है। फिर भी धर्म, समाज, राज्य और न्याय की सारी की सारी व्यवस्थाएँ सत्ता-लोलुपता व स्वार्थ में लिप्त हो, अमानवीय स्तर तक क्यों उतर आती हैं?

उत्तरः आपका यह प्रश्न बड़ा मौजू है कि प्रकृति की न्याय व्यवस्था सर्वोपरि और मानव की साधारण बुद्धि से परे होने पर भी धर्म, समाज, राज्य और न्याय की सारी की सारी व्यवस्थाएँ सत्ता-लोलुपता व स्वार्थ में लिप्त हो अमानवीय स्तर पर क्यों उतर आती हैं। दरअसल, मानव अपने कर्मों की डोर से बँधा है और वह प्रकृति नटनी की कठपुतली बना रहता है जिसके परिणामस्वरूप जब मानव अपने ही बनाए मकड़जाल में फँसकर हताश हो जाता है तब प्रकृति की संहार प्रक्रिया शुरू हो जाती है। इसके बाद सबको अग्नि परीक्षा से गुजरना ही होगा-आंतरिक बीमारियाँ, प्राकृतिक प्रकोप, भूचाल, दुर्घटनाएँ, दावानल आदि। शैतानियत और दिव्यता दोनों ही शक्तियाँ प्रकृति के नियमों में ही निबद्ध हैं। रोशनी के लिए नकारात्मक (Negative) और सकारात्मक (Positive) दोनों ही करंट चाहिए। इसलिए हमें अपनी सच्चाई जानकर, विवेक जगाकर यह जानना ही होगा कि हम किस शक्ति में संलग्न हैं। अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति दोनों को जानकर संवारना है, क्योंकि प्रकृति के कर्म में दुविधा या संशय नहीं होता। बस होना ही होता है। इसलिए अमानवीयता से हमें बचने का प्रयास करना है।

(२६)प्रश्नः क्या आपको आज ऐसा नहीं लगता कि इस देश की युवा पीढ़ी दिन-प्रतिदिन अधिक उग्र होती जा रही है? आखिर ऐसा क्यों?

उत्तर:हाँ, पप्पू जी, मैं भी यह महसूस करता हूँ कि इस देश की युवा पीढ़ी आज दिन-प्रतिदिन अधिक उग्र होती जा रही है। बड़ों के प्रति सम्मान तो दूर उनकी उचित बात व सलाह को भी अपने लिए विपरीत मानने लगे हैं। पार्क में क्रिकेट खेलना, सड़क पर गलत ड्राइविंग, महिलाओं से दुर्व्यवहार

और जरा-सी बात पर झगड़ने अथवा मार-पिट पर तैयार हो रहे आज के युवा आखिर जा कहाँ रहे हैं। अभी हाल में दिल्ली में एक डॉक्टर की युवाओं के समूह ने ईट-पत्थर, बैट और विकेटों से पीटकर हत्या कर दी। डॉक्टर का कसूर मात्र इतना था कि उसने एक नाबालिग को गली में तेज रफ्तार से बाइक चलाने से मना किया और उसे रोकने की कोशिश की। उस वक्त तो वह नाबालिग घटनास्थल से चला गया, लेकिन कुछ समय बाद अपने सहयोगियों की टोली के साथ वहाँ पहुँचकर उस डॉक्टर की पीट-पीटकर हत्या कर दी। विस्मय इस बात की भी है कि भरी-पूरी बस्ती में डॉक्टर के पड़ोसियों ने इस हत्याकांड को अपने लिए चुपचाप देखना अधिक श्रेयस्कर समझा।

दरअसल, हमारे जीवन में नैतिक मूल्यों और आदर्शों का तेजी से ह्रास होता चला जा रहा है। स्कूली शिक्षा केवल जॉब-आरिएंटेड बन कर रह गई है। नैतिक शिक्षा तो पाठ्यक्रम से लगभग गायब ही हो गई है और घर-परिवार से जहाँ बच्चों को संस्कार मिलता था उसकी जगह अभिभावक अपने बच्चों के किसी भी अनुचित गतिविधि का आँख मूंदकर पक्ष लेते हैं। खुद को गलत कहने को कोई तैयार नहीं।

(२७)प्रश्न: देश में आए दिनों हर रोज प्रेमी युगल की आत्महत्या की खबरें समाचार पत्रों एवं टेलीविजन पर आती रहती हैं। आपके विचार से इन आत्महत्याओं के पीछे क्या कारण हैं? क्या कुछ हद तक समाज का स्वरूप लेती जा रही बदसूरत संस्कृति भी उनके कारणों में से एक नहीं है?

उत्तर: आज का युवा वर्ग एक ऐसे प्रेम नामक कब्ज से ग्रसित है जिसमें प्रेम के प्रगाढ़ होते जाने पर माँगें बढ़ती जाती हैं और धीरे-धीरे प्रेम अधिकार माँगने लग जाता है। फिर तो प्रेमी प्रेम में डूबने की अपेक्षा अधिकारों की लड़ाई में खो जाता है और वह प्रेम के इस कब्ज के शिकंजे में आ जाता है। इसी प्रेम के महाजाल में फँसकर वह तनाव से ग्रसित होता है और मादक द्रवों को अपना हमदर्द बना लेता है और कभी-कभी तो वह इतना चिंतित हो जाता है कि आत्महत्या जैसा घिनौना कदम ही उठा लेता है।

एक अध्ययन के अनुसार मानसिक तनाव के चार में से एक मामला प्रेम से जुड़ा हुआ रहता है और ऐसे मामलों में दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। दरअसल, आधुनिक जीवन दृष्टि ने सेक्स को प्रेम का पर्याय बना दिया है जबकि प्रेम पहले एक भावानात्मक संबंध है। इसी हवस रूपी प्रेम की खातिर न जाने कितनी लड़कियों को अपनी आबरू दांव पर लगानी पड़ती

है और न जाने कितने युवाओं ने आत्महत्या को आत्मसात किया। आपने सुना नहीं पिछले दिनों टीवी पर धारावाहिक चल रही 'बालिका वधू' की लोकप्रिय अभिनेत्री प्रत्युषा बनर्जी द्वारा उपनगरीय गोरे गाँव के बांगड़ नगर स्थित अपने घर में कथित तौर पर खुदकुशी कर लेने की घटना सामने आई। कहा जाता है कि धारावाहिक 'बालिका वधु' में आनंदी के किरदार से घर-घर में लोकप्रिय हो चुकी 24 वर्षीय अभिनेत्री प्रत्यूषा बनर्जी, जो झारखंड के जमशेदपुर की रहने वाली थी, को राहुल राज सिंह नामक एक लड़के से प्रेम हो गया था और उसका ननिहाल जमशेदपुर में था। 14 अप्रैल, 2016 को ही दोनों की शादी होने वाली थी।

कहा तो यहाँ तक जाता है कि 24 वर्षीया प्रत्यूषा बनर्जी जिस शादी-शुदा व्यक्ति राहुल राज सिंह से प्रेम करती थी वह मुंबई के नामी-गिरामी राजनेता प्रमोद महाजन के सुपुत्र राहुल महाजन के मित्र हैं तथा उसी की तरह समान गुणवाले व्यक्ति हैं जो प्रेमी अक्सर प्रत्यूषा को पीटता भी था, वैसा ही जैसा कि आरोप है कि राहुल महाजन अपनी प्रेमिकाओं तथा पत्नी को पीटता रहता था। प्रत्यूषा की मौत मुंबई की चकाचौंध भरी दुनिया के पीछे का स्याह सच सामने आया है। प्रत्यूषा के माता-पिता की भूमिका भी इस मायने में गलत थी कि वे अपनी बेटी से किसी भी माध्यम से कमाई की अपेक्षा करते थे। माता-पिता की माँग पर प्रत्यूषा ने जिस फाइनांसियर से 50 लाख रुपए लेकर माता-पिता को दी थी, वह पैसा वापस करने की जिद कर रहा था। इसके चलते भी प्रत्यूषा तनाव में रहती थी। सच तो यह है कि अय्याशी भरा जीवन जीने की चाह में महानगरों की जीवन शैली के लिए ऐसी बातें आम हो चुकी हैं। आखिर तभी तो बॉलीवुड और हॉलीवुड में सफलता के झंडे गाड़ चुकी पूर्व मिस वर्ल्ड प्रियंका चोपड़ा जिसके दुनिया भर में करोड़ों फैन्स हैं, के बारे में उसके पूर्व मैनेजर प्रकाश जाजू ने यह खुलासा किया कि आज इतनी मजबूत दिखने वाली पोपुलर इंटरनेशनल स्टार प्रियंका चोपड़ा ने भी 2-3 बार आत्महत्या करने की कोशिश की थी। प्रियंका और उनके पुराने ब्वायफ्रेंड असीम मर्चेंट की आपस में बहुत लड़ाईयाँ हुआ करती थीं।

हमलोग कुछ मामले के बाहर आने के बाद विचलित तो होते हैं, लेकिन समाज का स्वरूप लेती जा रही इस बदसूरत संस्कृति को रोकने का यत्न कतई नहीं कर रहे हैं। इस बदसूरत संस्कृति को बेहतर बनाने का उपाय यही है कि संतानों को बाल्यावस्था से ही उचित मानवीय संस्कार दिए जाएँ।

बालिग होने के बाद भी अपने अभिभावकीय जिम्मेदारी से मुँह न मोड़ा जाए। युवा महिलाओं के मामले में जीवन की सारी जरूरतों पर एक मजबूत भावानात्मक सहारे का अभाव बहुत भारी पड़ जाता है जो अक्सर ग्लैमर जगत की जवान और सफल महिलाओं को खुद ही अपने जीवन का अंत करने को मजबूर करता रहा है। निरंतर विकसित तथा आधुनिक होते भारतीय समाज की यह बहुत बड़ी क्षति है कि लोगों में एक-दूसरे के साथ संवादहीनता (Communication Gap) बढ़ती जा रही है जिसकी वजह से व्यक्ति अपनी परेशानी किसी से साझा करने में हिचकिचाता है। मौजूदा दौर में बच्चों का अपने माता-पिता से संबंधों में खुलापन का अभाव दिखाई पड़ता है। छोटी उम्र से ही बच्चे अपने अभिभावक से बातें छिपाना शुरू कर देते हैं, जो आगे चलकर परेशानी का रूप ले लेता है। विगत कुछ वर्षो में लोगों में एक-दूसरे के प्रति विश्वास की भावना भी कम हुई है, जिसकी वजह से छोटी-बड़ी समस्याओं का निदान निकालने की कोशिश करने की बजाय उसे हम अपने मन में दबा लेते हैं, जो व्यक्ति में तनाव, दबाव तथा अवसाद को जन्म देता है।

दूसरी बात यह है आज व्यक्ति समाज से पूरी तरह कट चुका है और सोशल मीडिया को ही समाज, चैटिंगवाले मित्रों को ही अपने परिवार के सदस्य की तरह मान रहा है। इस तरह दिनभर दूरभाष या मोबाइल से चिपके रहने से व्यक्ति में सामाजिकता के गुणों का ह्रास होता जा रहा है। किताबों से दूर रहने के कारण अब हमारी रचनात्मकता भी दम तोड़ रही है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि युवक-युवतियाँ अपनी ऊर्जा रचनात्मक कार्यो में लगाने का प्रयास करें, क्योंकि किसी ने कहा है-

कह दो मेरे गालिब से कि हम भी शेर कहते हैं
वो तुम्हारी सदी थी, ये सदी हमारी है।

(२८)प्रश्नः समाज के परिवर्तन में वैज्ञानिक सोच का क्या महत्व है?

उत्तरः सच का पक्षधर है वैज्ञानिक सोच। इसलिए यह समाज को जागरूक बनाता है, उसे आगे बढ़ाता है। इसके ठीक विपरीत रूढ़िवादिता और अँधविश्वास प्रतिगामी सोच को बढ़ाते हैं और समाज को पीछे ढकेलते हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बल पर ही आज हम विकास की ओर अग्रसर हैं और अन्न के मामले में आत्मनिर्भर होते जा रहे हैं तथा श्वेत क्रांति, चिकित्सा की नई तकनीकें या अंतरिक्ष में उड़ते हमारे संचार व मौसम उपग्रह अथवा चाँद पर दस्तक देने वाला चंद्रयान-1, ये सभी विज्ञान और

प्रौद्योगिकी की ही देन हैं। अँधविश्वास को आँखें मूंदकर अपनाने की बजाय हमें वैज्ञानिक सोच रखना चाहिए। वैज्ञानिक सोच हमें प्रगति की राह पर आगे बढ़ाता है।

वैज्ञानिकों की जीवनियाँ बच्चों को जिंदगी में अपने सपने पूरा करने की राह दिखाती हैं। विज्ञान बताता है कि हममें जाति, धर्म, संप्रदाय तथा भाषा का कोई भेद नहीं है। विज्ञान को आज आम आदमी तक पहुँचाने की जरूरत है, ताकि उन्हें वैज्ञानिक सच का पता चल सके। इस प्रकार समाज के बदलाव में वैज्ञानिक सोच का बहुत बड़ा महत्व है।

(२९)प्रश्नः क्या आप भी ऐसा महसूस करते हैं कि उपेक्षा से पीड़ित बुजुर्ग अपने खुशहाल हमउम्रों की तुलना में कम उम्र तक जीते हैं? ऐसा क्यों?

उत्तरः हाँ, मैं भी ऐसा महसूस करता हूँ कि उपेक्षा से पीड़ित बुजुर्ग अपने खुशहाल हमउम्रों की तुलना में कम उम्र तक जीते हैं, क्योंकि बुजुर्गों के साथ अच्छा बर्ताव न करने और उन्हें बोझ समझने के रवैए से उनके मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के ताजा आँकड़े बताते हैं कि दुनिया भर में बुजुर्गों के प्रति नकारात्मक रवैया बढ़ता जा रहा है जिससे एक बड़ी आबादी खुशहाल जिंदगी से महरूम हो रही है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा 57 देशों के करीब 83000 बुजुर्गों पर किए गए सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार करीब 60 प्रतिशत बुजुर्गों का कहना था कि उनका समुचित सम्मान नहीं किया जाता। आश्चर्यजनक बात तो यह है कि बुजुर्गों के प्रति सबसे बुरा रवैया ऐसे देशों में पाया जाता है, जहाँ लोगों की आमदनी बहुत अच्छी है। दरअसल, बुजुर्गों के प्रति नकारात्मक रवैए से उनमें यह भावना घर कर जाती है कि वे अपने परिवार या समाज पर बोझ हैं जिसकी वजह से वे अवसाद का शिकार हो जाते हैं। ऐसे बुजुर्ग अपने खुशहाल हमउम्रों से कम जीते हैं।

(३०)प्रश्नः हम लगातार एक बीमार समाज का हिस्सा क्यों बनते जा रहे हैं?

उत्तरः मदन जी, आप इस बात से अवगत हैं कि दुनिया चलाने के लिए हर समाज में कुछ–न–कुछ नियम कानून स्थापित किए गए हैं। अगर कोई व्यक्ति इन नियमों व कानूनों को नहीं मानता है या इससे हटकर कोई कृत्य करता है तो उसे असामाजिक कहते हैं। मनोविकार की प्रवृत्तियों की परिभाषा काफी कुछ इस एक शब्द 'असामाजिक' से ही प्रभावित है।

इधर देखने में यह आ रहा है कि समाज में गुस्साजनित समस्याएँ

पहले की अपेक्षा काफी हद तक बढ़ी हैं। राह चलते अनजान लोगों में जरा सी बात पर हिंसा या झड़प हो जाना, बलात्कार होना, एकतरफा प्रेम और न होने पर बदले की भावना आदि बहुत सी बातें हैं जो गुस्से के नतीजे के रूप में लगातार बढ़ती जा रही हैं। ये बातें इंगित करती हैं कि हम लगातार एक बीमार समाज का हिस्सा बनते जा रहे हैं। बीमार समाज का सबूत है कि रोज-व-रोज सड़क पर गाड़ियों की टक्कर होने, पैदल यात्रियों के साथ टकरा जाने या ठीक से गाड़ी चलाने की नसीहत देने पर ही वाद-विवाद इतना तेज हो गया कि कुछ लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। अभी हाल में ही आपने यह खबर पढ़ी होगी कि एक विधायक ने अपने आगे जाने वाली गाड़ी के चालक की हत्या इसलिए कर दी, क्योंकि उसने विधायक की गाड़ी को आगे जाने के लिए पास क्यों नहीं दिया। सुनने में यह बात भले ही विश्वसनीय नहीं लगे, मगर यह सच है कि रोज-रोज की यह समस्या यातायात नियंत्रकों के लिए परेशानी बनती जा रही है। दरअसल, आज लोगों की व्यस्तता और तनाव इतना अधिक हो गया है कि छोटी सी बात पर भी लोगों को गुस्सा आ जाता है। अपनी ही समस्याओं ने हमें संवेदनहीन बना दिया है और दूसरों की समस्याओं को गंभीरता से नहीं लेते। हममें धैर्य व सहनशीलता नहीं रह गई है। इन्हीं सब कारणों से हम बीमार समाज का हिस्सा बनते जा रहे हैं।

(३१)प्रश्नः क्या देश भर में होने वाले व्यापक आरक्षण आंदोलन खेती की दुर्दशा व बढ़ती आर्थिक विषमता के नतीजे तो नहीं है?

उत्तरः गुजरात, राजस्थान, हरियाणा के बाद महाराष्ट्र के मराठों के मूक विद्रोह पर एक नजर डालने से तो ऐसा लगता है कि ये सारे आंदोलन की जड़ें खेती में जारी संकट से हैं। खेती धीमी और निरंतर गति से खत्म हो रही है। इस संकट को देखने का एक तरीका तो किसानों की आत्महत्या की संख्या में वृद्धि है। आपको याद होगा महाराष्ट्र के विदर्भ या मराठवाड़ा से ही किसानों की आत्महत्याओं ने राष्ट्रीय सुर्खियाँ बनाई हैं। दरअसल, कृषि का सुनियोजित विनाश ही उन जाति आधारित विरोध प्रर्दशनों में सरकारी नौकरियों में आरक्षण की माँग की वजह है, जो हाल में महाराष्ट्र में मराठा, गुजरात में पाटीदार, राजस्थान में गुर्जर, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में जाट तथा कर्नाटक में लिंगायत आदि आंदोलन करते और नौकरियों में आरक्षण की माँग करते देखे गए हैं। लेकिन महाराष्ट्र में मराठा क्रांति मोर्चा अन्य जाति आधारित विरोध प्रदर्शनों से अलग इस मायने में देखा गया कि ये शांतिपूर्ण

प्रदर्शन थे और इनका कोई चेहरा नहीं रहा। जाति के आधार पर एकजुट होने के बावजूद सड़कों पर इतने बड़े पैमाने पर लोग तबतक नहीं उतर सकते जबतक कि पूरे समुदाय में क्रोध की लहर न चल रही हो। अहमदनगर के कोपार्डी में 13 जुलाई 2016 को मराठा लड़की से दुष्कर्म की घटना ने ट्रिगर का काम किया, लेकिन सारे विरोध प्रदशकों को जोड़ने वाला कारण आर्थिक हताशा ही है।

सच तो यह है कि महाराष्ट्र में खुदकुशी करने वाले 90 प्रतिशत मराठा समुदाय से हैं क्योंकि उनके कृषि का अर्थशास्त्र विनाशकारी रहा है। महाराष्ट्र की कृषि योग्य जमीन के मोटे तौर पर 4.5 हिस्से पर गन्ना है जो लगभग 71 प्रतिशत भूजल पी जाता है। शेष 96 प्रतिशत किसानों का हाल यह है कि धान के प्रति हेक्टेयर शुद्ध प्राप्ति 966 रुपए है यानी यदि मासिक आधार पर गणना करें तो यह 300 रुपए महीना होता है। रागी की खेती में तो महाराष्ट्र के किसान को प्रति हेक्टेयर 10674 रुपए की हानि होती है। इसी तरह मूंग और उड़द में क्रमश: 5873 और 6663 रुपए की हानि होती है। यहाँ तक कि जिस कपास की खेती का बड़ा प्रचार किया जाता है उसमें शुद्ध आमदनी मात्र 2949 रुपए प्रति हेक्टेयर है। मनरेगा में काम करने वाले श्रमिक से भी कम आमदनी पर महाराष्ट्र का किसान इस बरस अपना वजूद कैसे बनाए रख सका, यह आश्चर्य की बात है। इसीलिए महाराष्ट्र में उपजे रोष और आक्रोश का औचित्य है। वही गुजरात, कर्नाटक, राजस्थान, उत्तरप्रदेश और हरियाणा सहित शेष देश के लिए भी सही है, जहाँ हाल ही में आरक्षण के प्रदर्शन देखे गए हैं।

मेरा मानना है कि विरोध प्रदर्शन चाहे जितने मौन हों, लेकिन इसका संदेश इतना प्रखर है कि उसे दरकिनार नहीं किया जा सकता, क्योंकि इनमें बड़े सामाजिक-आर्थिक संकट के सारे तत्व मौजूद हैं जिसकी उपेक्षा करना, पूरे देश को खतरे में डालने के बराबर है।

(३२)प्रश्न: क्या आपको ऐसा लगता है कि आज सौंदर्य की दुनिया सादगी और स्वाभाविकता से दूर होती जा रही है? क्या आज का समाज जाने-अनजाने अपने जीवन के ही विरूद्ध खड़ा हो रहा है?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि आज सौंदर्य की दुनिया सादगी और स्वाभाविकता से दूर होती जा रही है, क्योंकि उसकी जगह जटिलता और कृत्रिमता लेती जा रही है। अपने स्वाभाविक रूप-रंग से असंतुष्ट लोग सौंदर्य को बढ़ाने की कवायद में फँसते जा रहे हैं। यह सही है कि किसको सुंदरता

अच्छी नहीं लगती है उसमें भी तब जब आज बाजार में सुंदर दिखने के लिए तरह-तरह के प्रसाधन उपलब्ध हैं। अब 'मेकअप' का जमाना है जिसमें विभिन्न उपायों से रूप-रंग निखारा जाता है और स्थायी बदलाव के लिए प्रसाधन की खास शल्य क्रिया यानी 'कॉस्मेटिक सर्जरी' और अन्य तरीकों का उपयोग किया जाता है। सिर के बाल, नाक, गाल, स्तन, पेट, पैर, कमर, शरीर का रंग-कुछ भी मनचाही शक्ल में लाने की कोशिश की जाती है।

आमतौर पर सौंदर्य का संबंध मानसिक तौर पर प्रिय होने, सुखद, ऋतु के अनुरूप होना और खुद अपने स्वभाव के अनुकूल होने आदि से जुड़ा होता है। पर बदलते जमाने में 'सुभग', 'मनोरम' और 'चारू' जैसे विशेषण अब सुंदरता की अवधारणा के दायरे से बाहर जा चुके हैं। आपने यह खबर पढ़ी या सुनी होगी कि इस्रायल की एक सुपर मॉडल ओरिल फॉक्स ने अपनी शारीरिक खूबसूरती बढ़ाने के लिए अपने ब्रेस्ट में सिलिकॉन इम्प्लांट करवाया था जिसमें कॉस्मेटिक प्रोडक्ट का इस्तेमाल किया जाता है, हालांकि डॉक्टर्स इसका इस्तेमाल करने से मना करते हैं, लेकिन फिर भी महिलाएँ अपने ब्रेस्ट इम्प्लांट के लिए सिलिकॉन का इस्तेमाल करती हैं। इसी तरह ओरिल फॉक्स ने जब अपने ब्रेस्ट में सिलिकॉन इम्प्लांट करवाया, तो उस दौरान वह एक सांप से खेल रही थीं, लेकिन सांप को यह सब पसंद नहीं आया और शूट के दौरान सांप ने मॉडल पर हमला कर दिया और डस लिया जिसे देख वहाँ मौजूद लोगों द्वारा सांप को अलग किया गया और मॉडल फॉक्स को जल्द ही टिटेनस की सूई दी गई जिसके थोड़ी देर बाद वह ठीक हो गई , मगर सांप की मौत हो चुकी थी। अपनी सौंदर्यता को बढ़ाने के लिए आप कल्पना करें, महिलाएँ इतनी जहरीली सिलिकॉन भी लेना पसंद कर सकती हैं।

दरअसल, आज तकनीकी और सामाजिक तुलना से भावित हुआ हमारा अनुभव अपने परिवेश, जलवायु और संस्कृति के साथ मेल नहीं खाता है। बिना सोचे-समझे एक छद्म पहचान ही हमारी असली पहचान बनती जा रही है और अपनी वास्तविकता इस आरोपित पहचान के पीछे न सिर्फ छिपती जा रही है, बल्कि भार होती जा रही है। इसी के परिणामस्वरूप आज सौंदर्य की दुनिया सादगी और स्वाभाविकता से दूर होती जा रही है और उसकी जगह जटिलता और कृत्रिमता लेती जा रही है। अपने स्वाभाविक रूप-रंग से असंतुष्ट लोग सौंदर्य को बढ़ाने की कवायद में फँसते जा रहे हैं और नकली एवं कम गुणवत्तावाले सौंदर्य प्रसाधन कई तरह के रोगों के भी

कारण बन रहे हैं। यही कारण है कि आज का समाज जाने-अनजाने अपने जीवन के ही विरूद्ध खड़ा हो रहा है।

(३३)प्रश्नः सुप्रीम कोर्ट और पटना उच्च न्यायालय के निर्देश के आलोक में बिहार सरकार द्वारा उच्च और निम्न न्यायिक सेवा की नियुक्तियों में ५०-५० फीसदी आरक्षण देने के फैसले को आप किस रूप में देखते हैं?

उत्तरः बिहार में पहले सबोर्डिनेट स्तर की न्यायिक सेवा की नियुक्तियों में अनुसूचित जाति को 16 प्रतिशत, अनुसूचित जनजाति को 1 प्रतिशत तथा पिछड़ी जातियों को 10 प्रतिशत आरक्षण देने का प्रावधान था। राज्य सरकार बनाम दयानंद सिंह के मुकदमें में सुप्रीम कोर्ट ने राज्य सरकार को उच्च और निम्न न्यायिक सेवा की नियुक्तियों में 50-50 प्रतिशत आरक्षण देने का निर्देश दिया था। सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर पटना उच्च न्यायालय ने भी इससे संबंधित तथ्यों को एकत्र किया तथा बिहार लोक सेवा आयोग से भी इस संदर्भ में परामर्श लेने के बाद पटना उच्च न्यायालय ने उच्च और निम्न न्यायिक सेवा की सीधी नियुक्तियों में 50-50 प्रतिशत आरक्षण देने की अनुशंसा राज्य सरकार से की थी। तदुपरांत राज्य सरकार ने विगत 27 दिसंबर, 2016 को हुई बिहार मंत्रिमंडल की बैठक में उच्च एवं निम्न न्यायिक सेवा की सीधी नियुक्तियों में अत्यंत पिछड़ा वर्ग को 21 प्रतिशत, पिछड़ा वर्ग को 12 प्रतिशत, अनुसूचित जाति को 16 प्रतिशत तथा अनुसूचित जनजाति को एक प्रतिशत- इस प्रकार कुल 50 प्रतिशत आरक्षण देने का फैसला किया गया जो स्वागत योग्य है, क्योंकि पिछले कई वर्षो से पटना न्यायिक सेवा के उच्च अधिकारियों को भी 50 प्रतिशत आरक्षण की माँग की जा रही थी।

बिहार सरकार के सामान्य प्रशासन विभाग के प्रधान सचिव डी.एस. गंगवार के मुताबिक अब मुंसिफ मजिस्ट्रेट स्तर से लेकर जिला जज और अपर जिला जजों की सीधी नियुक्तों में कुल मिलाकर 50-50 प्रतिशत आरक्षण का लाभ इसके दायरे में आने वाले अभ्यर्थियों को मिलेगा। इसके साथ ही न्यायिक सेवा की सीधी नियुक्तियों में सभी श्रेणी की महिलाओं को 35 प्रतिशत और दिव्यांगों को एक प्रतिशत आरक्षण का लाभ मिलेगा जो कुल 50 प्रतिशत आरक्षण के अंतर्गत होगा। उल्लेख्य है कि दोनों स्तर के न्यायिक सेवा के अधिकारियों के कुल 1100 पद स्वीकृत हैं। राज्य सरकार के इस फैसले से अब 550 अधिकारियों को न्यायिक सेवा में पिछड़ा, अति

पिछला, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों को आरक्षण का लाभ मिल सकेगा जिससे वे पिछले कई दशक से वंचित थे और अब ऐसे वर्गो को भी उचित न्याय मिल सकेगा। न्याय मिलने से ही समाज में शांति स्थापित हो सकेगी। पिछड़े और अत्यंत पिछड़े वर्गो को न्यायिक सेवा में आरक्षण देने के लिए बिहार सरकार ने 2008 में नियमावली में संशोधन किया था, लेकिन पटना उच्च न्यायालय ने इसे असंवैधानिक करार दिया था, क्योंकि सरकार ने कोर्ट से परामर्श नहीं लिया था। सरकार ने इसे सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी। फिर 1 अगस्त, 2016 को सुप्रीम कोर्ट ने न्यायिक सेवा में आरक्षण लागू के पूर्व सरकार पटना उच्च न्यायालय से परामर्श लेने का आदेश दिया। तदुपरान्त 1जनवरी, 2017 के पूर्व न्यायिक सेवा में आरक्षण संबंधी कबायद खत्म करने तथा 30 जून, 2017 के पूर्व न्यायिक सेवा में रिक्तियों को भरने की प्रक्रिया पूरी कर लेने को कहा। अभी 9 राज्यों में न्यायिक सेवा में यह आरक्षण लागू है। बिहार में यह चिर-प्रतिक्षित निर्णय लागू हुआ है जो स्वागत योग्य है।

ऊँची अदालतों में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए किसी भारतीय नागरिक का दस वर्षो तक न्यायिक सेवा में होना या फिर उच्च न्यायालय में 10 वर्षो तक बतौर अधिवक्ता रहने का अनुभव अनिवार्य है। नियुक्ति की इस प्रणाली में न्यायाधीश की सामाजिक पृष्ठभूमि को नजरअंदाज कर दिया गया है। कुछ इन्हीं कारणों से अनुसूचित जाति के राष्ट्रीय आयोग ने न्यायपालिका में आरक्षण पर केंद्रीत अपनी रिपोर्ट में इस चलन को सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने की दिशा में बाधक माना है। निचली अदालतों में वंचित वर्ग के लिए आरक्षण की राह खुलने से इस तबके के ज्यादा न्यायाधीशों के उच्च अदालतों में पहुँचने के रास्ते खुले हैं। साथ ही दलित वंचित वर्गो पर जातिगत कारणों से होने वाले उत्पीड़न और महिलाओं के विरूद्ध अपराध के मामलों की सुनवाई में बिहार की अदालतें कहीं ज्यादा संवेदनशील होंगी और उन्हें न्याय देने में बिहार एक खास नजीर साबित होगा।

(३४)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि आज से ठीक चार साल पहले हुए निर्भया कांड के बाद शुरू की गयी मार्च की मोमबत्तियाँ मंजिल के पहले ही बुझ गई हैं और उनकी जगह सिर्फ धुँआती आँखें बच गई हैं?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि आज से ठीक चार साल पहले यानि

2012 में निर्भया कांड के बाद शुरू हुए मार्च की मोमबत्तियाँ मंजिल के पहले ही बुझ गई हैं और उनकी जगह सिर्फ धुँआती आँखें बच गई हैं। आपको याद होगा आज से चार साल पहले निर्भया कांड के बाद हजारों-हजार लोगों ने हाथ में जलती मोमबत्तियाँ लिए यह संकल्प लिया था कि और किसी को निर्भया जैसा हश्र न होने देंगे और सरकार ने भी कानून में आमूल बदलाव किए थे। उम्मीदें जताई गई थीं कि निर्भया कांड के बाद स्त्री के प्रति समाज के नजरिए में भी शर्तिया बदलाव आएगा, वह वस्तु नहीं समझी जाएगी और उसका सम्मान किया जाएगा तथा पहले से ज्यादा रक्षणीया होंगी। यही नहीं सत्तातंत्र की सोच व उसके तौर-तरीके में संवेदनात्मक सुधार आएगा और वह मामले दर्ज किए जाने से लेकर अभियुक्त को सजा दिलाने तक ईमानदारी से सदैव पीड़िता के पक्ष में यानी न्याय के साथ मुस्तैद रहेगा। इसके साथ ही सरकार ने यह भी वादे किए थे कि कानूनन तय की गयी मियाद के भीतर ही एक फूलप्रूफ दायर चार्जशीट त्वरित अदालत त्वरित फैसले देगी। इनका समवेत नतीजा स्त्री के अपने खिलाफ होने वाली अमानुषिकता के विरूद्ध खड़े होने का नैतिक साहस देगी। इस तरह धीरे-धीरे ही सही बराबरी का एक सभ्य समाज बनेगा, जिसमें से बलात्कार विदा हो जाएगा, किंतु इन चार सालों में बलात्कार और दुष्कर्म की घटनाओं में वृद्धि हो गई। 'नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो' के अनुसार 2015 में ही बलात्कार के 36645 मामले दर्ज किए गए। सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण यह कि इनमें से 95 प्रतिशत बलात्कार पीड़िता के नजदीकी या जानने वालों ने किये थे।

दिल्ली में दुष्कर्म के 2199 मामले दर्ज किए गए। जबकि यहाँ का पुलिस-प्रशासन बाकी राज्यों के मुकाबले ज्यादा सक्षम, तेज-तर्रार और सक्रिय माना जाता है। मेरा ख्याल है कि इसके लिए समाज और सत्ता की वह मानसिकता जिम्मेदार है, जो निर्भया के बाद भी कमजोर नहीं पड़ी है, बल्कि और मजबूत हो गई है। देश की अदालतों में महिलाओं के खिलाफ अपराध के 95 हजार से ज्यादा मुकदमें लंबित हैं। ऐसे में आधी आबादी के मन में कानून का संबल पाने का भरोसा कैसे उत्पन्न किया जाए, इस पर भी चिंतन-मंथन आवश्यक है, क्योंकि देश के हजारों-हजार युवा वर्ग के हाथों की जलती मोमबत्तियों मंजिल पहुँचने के पूर्व बुझ गई हैं और बच गई हैं केवल लोगों की धुँआती आँखें।

मुझे लगता है कि इन घटनाओं की धुरी निःसंदेह पुरुषों की

पितृत्ववादी सोच, पुरुष का प्रमुख, श्रेष्ठता एवं सेक्स के प्रति उनके नजरिए को जिम्मेदार ठहराती हों, पर इसमें हमारी सामाजिक भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। सेक्स यदि सामाजिक जरूरत है, तो इसके सही समय की जानकारी भी जरूरी है। कानून यदि सख्त है, तो सबूत मिटाने का प्रेरक भी इन घटनाओं को क्रूर रूप दे रहा है। आज जरूरत है ऐसे समाज के निर्माण की, जहाँ स्त्रियाँ एवं पुरुषों के बीच कोई दीवार न हो। इसके साथ ही पुरुषों को स्त्रियों के प्रति अपने नजरिए को भी बदलने की आवश्यकता मैं महसूस करता हूँ।

(३५)प्रश्नः महाराष्ट्र के औरंगाबाद स्थित लासूर निवासी अजय मुनीत द्वारा अपनी बेटी की शादी के लिए रखे धन से नब्बे मकान बनाकर जरूरतमंदों को देने का फैसला क्या प्रेरणाप्रद नहीं कहा जाएगा? इस अनूठी पहल पर क्या पूरी दुनिया गौर नहीं कर सकती?

उत्तरः हाँ, निश्चित रूप से महाराष्ट्र के औरंगाबाद स्थित लासूर निवासी अजय मुनीत द्वारा अपनी बेटी की शादी के लिए रखे धन से निर्मित नब्बे मकान को जरूरतमंदों को देने का फैसला कर प्रेरणादायी पहल की है। सचमुच मुनीत ने अपनी जमीन पर डेढ़ करोड़ की लागत से नब्बे लोगों को एक कमरा सहित रसोईघर तथा शौचालय निर्मित कर मकान देने का विचार जितना प्रगतिशील व समाज कल्याण की वास्तविक सोचवाला है हर भारतीय इन पर गर्व कर सकता है। वह भी खुशी-खुशी ताकि बेटी के जीवन में बेघरों को छत मिलने की खुशी में शामिल हो जाए। ये सरकारों को भी सबक है जो बड़ी-बड़ी बातें तो करती हैं, मगर वास्तविक धरातल पर लोगों की भावनाओं से छल ही करती हैं। नोटबंदी के बाद ऐसी खबरें आई कि लाखों रुपए पानी में तैरते मिले, बोरियों में भरकर आग के हवाले कर दिए गए। क्या वे रुपए सैकड़ों गरीबों का जीवन नहीं बदल सकते थे?

दूसरी ओर खबर तो यह भी आई कि कई नेता अपनी बेटी की शादी में करोड़ों रुपए खर्च कर अपनी संपत्ति का भौंडा प्रदर्शन किया। जाहिर सी बात है कि शादी-विवाह में खर्च होने वाले करोड़ों रुपए या तो अनुचित संसाधनों से जुटाए जाते हैं या फिर मजबूरी में ऋण लेकर। यदि मुनीत द्वारा की गई सकारात्मक पहल होती है तो कई नकारात्मक प्रवृतियों पर भी अंकुश लगेगा। मीडिया को इस प्रयास का प्रचार-प्रसार समाज के हित में करना चाहिए।

(३६)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि जिस देश में कभी बुजुर्गो की सेवा को धर्म मानकर की जाती रही हो, वहाँ आज वृद्धाश्रमों की जरूरत महसूस की जाने लगी है? आखिर क्यों?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि जिस भारत देश में कभी बुजुर्गो की सेवा को धर्म मानकर की जाती रही हो, वहाँ आज वृद्धाश्रमों की जरूरत महसूस की जा रही है। यह सच है कि भारतीय दर्शन में माँ-बाप की सेवा को ईश्वर की अराधना के समान माना गया है, लेकिन बदलते समय में बुजुर्गो के प्रति बदलते रवैए की चिंताजनक तस्वीर सामने आ रही है। पारिवारिक रिश्तों की इस गिरावट का सबसे यह अहम पहलू भौतिकवादी दृष्टिकोण ही है। दरअसल, हम बिना आगे-पीछे देखे इस अँधी दौड़ में शामिल हो रहे हैं। अपेक्षाएँ बढ़ती जा रही हैं और आय के सीमित साधनों ने स्वार्थ को पहली पायदान पर खड़ा कर दिया है। स्वार्थ ही के कारण संतान का माता-पिता या अन्य बुजुर्गो के प्रति जिम्मेदारी का भाव कम हो रहा है। उपयोगी को दुलार और अनुपयोगी को तिरस्कार का एक अदृश्य-सा व्यवहार हमारा समाज न जाने कैसे ग्रहण करता जा रहा है।

दुनिया भर में हुए बुजुर्गो की हालत पर शोध या सर्वेक्षण कुछ भी निष्कर्ष निकालते हों, पर इस हकीकत से इनकार नहीं किया जा सकता कि किसी भी उम्रदराज व्यक्ति को प्यार भरा व्यवहार दवा से ज्यादा असर दिखाता है। इससे वह शारीरिक व मानसिक रूप से तो स्वस्थ रहता ही है, बल्कि वह अकेलेपन की भावना से भी बचता है। आज की नई पीढ़ी को भी यह नहीं भूलना चाहिए कि अपने से बड़ों के प्रति निरादर का भाव रखने से एक समय ऐसा भी आएगा जब उन्हें भी इसका खामियाजा अपने जीवन के अंतिम पड़ाव में भुगतना पड़ सकता है।

धर्म न केवल सद्भाव की शिक्षा देता है, बल्कि धर्म के द्वारा पूरे विश्व को यही सीख दी जाती है कि छोटे, कमजोर, आश्रित तथा असहाय लोगों का आदर किया जाय, उन्हें सुरक्षा और संरक्षण प्रदान किया जाए, मगर अब तो इस देश में बेटे अपने माता-पिता के साथ जिस तरह का बर्ताव करते देखे जा रहे हैं वह बेहद शर्मनाक है। अभी-अभी कुछ दिन पहले जद(यू) की बुजुर्ग एवं वरिष्ठ नेत्री ने पटना के भिखना पहाड़ी से दूरभाष पर मुझसे किसी सत्तर वर्षीय महिला के लिए किसी वृद्धाश्रम में रखवाने का अनुरोध किया, क्योंकि उस महिला को सुखी संपन्न परिवार के लोग घर छोड़ने को विवश कर दिया।

(३७)प्रश्न : क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि नोटबंदी से जहाँ एक ओर उच्च और मध्य वर्ग का भ्रष्टाचार सामने आया है, वहीं दूसरी ओर इसने भारतीय समाज को आईना दिखा दिया है? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि नोटबंदी से जहाँ एक ओर उच्च और मध्य वर्ग का भ्रष्टाचार सामने आया है, वहीं दूसरी ओर इसने भारतीय समाज को आईना दिखा दिया है, क्योंकि एक तरफ पाँच सौ और एक हजार के पुराने नोटों के साथ-साथ दो हजार और पाँच सौ रुपए के नए नोटों की निकासी के लिए देश भर में लोग बैंकों और एटीएम के सामने कतारों में खड़े रहने के लिए मजबूर हैं, वहीं दूसरी तरफ लाखों-करोड़ों की नकदी बैंकों, नेताओं, व्यापारियों एवं अन्य पेशेवरों के पास से पकड़ी जा रही है। साथ ही समाज के उच्च एवं मध्य वर्गीय समाज के एक हिस्से में व्याप्त बेलगाम लालच को भी इंगित करती है। यह स्थिति एक बड़े लोकतंत्र के लिए ठीक नहीं है। बैंक अधिकारी, नेता, व्यापारी, पूँजीपति इन सबके बीच मिलीभगत नजर आ रही है और इनमें से एक भ्रष्ट गठबंधन चल रहा है, जिसके चलते बेशुमार नोट पकड़े गए हैं।

लाखों लोग अब भी पैसा ठिकाने लगाने का जुगाड़ खोज रहे हैं। नोटबंदी की घोषणा होते ही सुबह तक स्वर्णकारों की दुकाने खुली रहीं, करोड़ों का सोना खरीदा गया। इसी प्रकार सैकड़ों जगहों पर करोड़ों रुपए या तो जब्त हो रहे या फेंके अथवा पानी में बहाए हुए मिल रहे हैं। सहकारिता के नाम पर खुले हजारों बैंकों ने नोटबंदी होते ही करोड़ों के काले धन को सफेद बना दिया। इसमें कोई शक नहीं कि भारतीय समाज भ्रष्टाचार के कैंसर से जूझ रहा है। नोटबंदी से ईमानदार लोगों को प्रोत्साहन मिलेगा और ऐसे प्रोत्साहन में कोई बुराई नहीं है।

देश के तमाम बैंकों में गैर-कानूनी तरीके से पुराने नोटों को नए नोट में बदले जाने और काले धन को सफेद करने को लेकर हुई छापामारी की समीक्षा के दौरान यह बात समाने आई कि नोटबंदी के बाद एक बड़ी संख्या में बैंकों ने वित्तीय लेन-देन संबंधी सामान्य नियमों का भी पालन नहीं किया। नए नोटों की बरामदगी का सिलसिला थमने का नाम नहीं ले रहा और फिर भी कोई यह बताने वाला नहीं कि ये नए नोट इतनी बड़ी राशि में कालेधनवालों के पास कैसे पहुँच रहे हैं। स्वाभाविक है कि शक की सूई बैंक अधिकारियों और कर्मियों की ओर जाएगी, क्योंकि नए नोटों की बरामदगी के सिलसिले में जिस प्रकार रिजर्व बैंक के अधिकारियों की

मिलीभगत सामने आई और उनमें कई लोगों को गिरफ्तार भी किया गया। केंद्र सरकार और रिजर्व बैंक को हर हाल में उन कारणों की तह में जाना ही होगा जिनके चलते नए नोट काले धनवालों के पास बड़ी आसानी से पहुँच रहे हैं। शायद यही कारण है कि बड़ी संख्या में एटीएम खाली पड़े हुए हैं। जिन भी लोगों ने सरकार और आम जनता के साथ छल किया है उन्हें शख्त से शख्त सजा दी जाए तभी कुछ बात बन सकती है अन्यथा सरकार के फैसले यों ही धरे के धरे रह जाएँगे। आपने देखा नहीं वेनेजुएला में इसी भ्रष्टाचार के चलते नोटबंदी के फैसले को वापस लेना पड़ा।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि नोटबंदी के दौरान सिर्फ बैंकों के अधिकारियों-कर्मचारियों ने ही कालेधन को सफेद करने में नहीं लगे, बल्कि कई विभागों के अधिकारियों और कर्मियों ने इस कालेधन को सफेद करने के खेल में शामिल रहे। आखिर तभी तो खुफिया रिपार्टों के बाद प्रवर्तन निदेशालय ऐसे लोगों पर कार्रवाई करना शुरू किया और ऐसे लोगों के खिलाफ सरकार लगातार शिकंजा कस रही है। रोडवेज, बिजली, निगम और बीएसएनएल आदि में ऐसी गड़बड़ियों का पता चला।

(३८)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि संपोषित समाज ही संपन्न समाज है?

उत्तर: जब किसी समाज को यह लगने लगता है कि जीवनोपयोगी चीजें उनकी क्रय-क्षमता से बाहर हो रही हैं, तो कहते हैं कि महंगाई बढ़ रही है। समाज में जबसे गरीबी है, तबसे महंगाई है। संपन्न तथा अमीर लोगों के लिए आज भी महंगाई नहीं है, क्योंकि उन्हें यह नहीं मालूम कि गरीबी क्या बला है, उनके लिए महंगाई भी हमेशा फिजूल की बात रही है, लेकिन किसी गरीब से पूछिए कि महंगाई क्या है? वह न भी बताए तो उसकी देह बता देगी कि महंगाई ने उसे कैसे एक कमतर मनुष्य बनने के लिए विवश कर रखा है। दरअसल, भोजन खरीदने की सामूहिक क्षमता का जो ह्रास होता है, तो उससे समाज में व्यापक तौर पर उपजी 'अतृप्त सुधा' न सिर्फ व्यक्ति को कमजोर और रूग्न कर देती है, बल्कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी हमारी पूरी नस्ल को कमजोर करती है। सदियों से हम अपनी नस्ल को कमजोर होता चुपचाप देख रहे हैं।

भारत सरकार के अद्यतन आँकड़ों के अनुसार 2012 में देश की 21. 92 प्रतिशत जनता यानी तकरीबन 27 करोड़ लोग अत्यंत गरीब रेखांकित किए गए। इसका मतलब यह कि 'क्रय शक्ति समता' (पीपीपी) के आधार

पर वे प्रतिदिन 1.25 अमेरिकी डॉलर यानी तकरीबन एक सौ रुपए पर गुजारा करते हैं और भरपेट भोजन खरीदना उनके लिए असंभव है। आजादी के सत्तर साल गुजर जाने के बाद भी इस देश के 27 करोड़ लोगों के लिए भर पेट भोजन आज भी वह सपना है जो पूरा नहीं हो पाया है।

इसी प्रकार योजना आयोग, जिसे अब नीति आयोग कहा जा रहा है, द्वारा स्थापित रंगराजन समिति के जुलाई, 2014 के प्रतिवेदन के अनुसार प्रतिदिन जिनकी शहर में 47 रुपए और गाँव में 32 रुपए की कमाई हैं वे ही गरीबी रेखा के नीचे माने गए, क्योंकि कम-से-कम इतनी राशि एक व्यक्ति की भूख मिटाने के लिए आवश्यक है और इसी हिसाब से भारत की कुल 29.5 प्रतिशत जनता को भर-पेट खाना नहीं मिल पाता।

मुझे आश्चर्य इस बात को लेकर है कि भारत जैसे देश में जहाँ विश्व की सबसे अधिक सिंचित भूमि है, में 'भूख' की यह विकट स्थिति है। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र की द फूड एंड एग्रीकल्चर ऑर्गेनाइजेशन या विश्व कृषि संगठन के 2013 के आँकड़ों के अनुसार विश्व मे बाजरे का सबसे बड़ा और गेहूँ, धान और प्याज, आलू, मूंगफली, तिल, टमाटर, गन्ना, बैंगन, फूलगोभी, पत्तागोभी व कद्दू को दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक भारत है। यही नहीं, काबुली चना, केला, आम, पपीता, नींबू, अदरक, अमरूद, कटहल, अनार के साथ हर तरह की दालों और दूध का विश्व में सबसे बड़ा उत्पादक भारत ही है। फिर भी ऐसा क्या है कि इस देश की एक-तिहाई के करीब जनता भूखी रह जाती है।

2000 में संयुक्त राष्ट्र ने सहस्त्राबदी विकास लक्ष्यों में सबसे अव्वल दुनिया को 2015 तक 'अत्यंत गरीबी' और 'अतृप्त क्षुधा' से मुक्त कराने का संकल्प लिया था, पर अब भी पर्याप्त व संतुलित भोजन करोड़ों लोगों की हैसियत से परे हैं। भारत इस विपदा से अलग नहीं है। एक आँकड़े के अनुसार भारत में 19.46 करोड़ के करीब लोग अल्पपोषित हैं। भारत उन 80 देशों में 25वें पायदान पर खड़ा है जहाँ भूख के समाधान में लोग पूरी तरह विफल रहे हैं। ध्यान देने वाली बात यह भी है कि शैशवकाल में जो शिशु कुपोषित रह जाता है वह आजीवन कुपोषण से मुक्त नहीं हो पाता। सही पोषण से ही मस्तिष्क का निर्माण होता है। कुपोषण और भूख एक ऐसा अभिशाप है, जो हमारा पीछा नहीं छोड़ेगा और एक संपन्न समाज का हमारा सपना अधूरा रह जाएगा। इस दृष्टि से देखा जाए, तो आज संपोषित समाज ही संपन्न समाज है।

(३९)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि मानवाधिकार समाज की आधारशिला है? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, मानवाधिकार समाज की आधारशिला है। भारतीय मनीषियों और विचारकों ने अपने चिंतन के आरंभ से ही सदैव मनुष्य की अस्मिता को केंद्र में रखते हुए उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इसीलिए तो मानवता सबसे श्रेष्ठ धर्म कहा जाता है। महर्षि वेद व्यास ने कहा है- 'न मानुषात परतरं किचिदस्ति' अर्थात मनुष्य से परे या ऊँचा कोई दूसरा धर्म नहीं है। हमारी संस्कृति में मानवता को सबसे बड़ी कसौटी मानने पर सदियों से बल दिया जाता रहा है। समय के बदलाव के साथ समाज में बदलाव स्वाभाविक है। उच्च आदर्शो के बावजूद अनेक प्रकार के विकारों ने भी जन्म लिया है। कर्म के स्थान पर जाति, राजा-प्रजा में अन्तर, संकीर्णता तथा धर्मान्धता की वजह से समाज में भेदभाव और शोषण को निरन्तर बढ़ावा मिला। इसके नकारात्मक परिणाम घृणा, हिंसा, भाईचारे में कमी तथा सामाजिक द्वेष के रूप में सामने आए हैं।

भारत में मानव अधिकारों के संरक्षण की परंपरा और इसके संवर्धन की सनातन परंपरा है। यह अधिकार मात्र मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सभी जीव-जंतुओं और वनस्पतियों के साथ भी जुड़ा है। सह-अस्तित्व के साथ जीना हमारी संस्कृति है। भारतीय मनीषियों ने 'सर्वेभवन्ति सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया। सवेभद्राणि पश्चन्तु मा कश्चिद भाग्यवेत' का शाश्वत दर्शन दिया है। इस भावना का मूलाधार हमें हिंदू संस्कृति के आदिग्रंथ ऋग्वेद में भी मिलता है।

यद्यपि इस देश में मानवाधिकार की परम्परा अत्यंत प्राचीन है, किंतु मानवाधिकारों की प्रथम वैश्विक अभिव्यक्ति द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के तत्काल बाद 1940 में संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा में अंगीकृत सार्वभौतिक अधिकार मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त होते हैं। विश्व में न्याय और शांति तभी स्थापित हो सकती है, जब सभी लोगों के मानवीय सम्मान का आदर किया जाय। उसके अनादर से ही मानव जाति की अन्तरात्मा को चोट पहुँचती है। मानवाधिकारों का सार्वभौम घोषणापत्र भले ही औपचारिक रूप से सभी राष्ट्रों के लिए बाध्यकारी नहीं हो, लेकिन अंतरराष्ट्रीय कानून का अंग होने के कारण यह विश्व के देशों की राष्ट्रीय चेतना को प्रभावित करता है और उनपर अपने देशवासियों के लिए अधिकार और न्याय सुनिश्चित करने के लिए नैतिक दबाव बनाता है।

जहाँ तक भारत का सवाल है मानवाधिकारों के प्रति इस देश की निष्ठा संविधान के विविध प्रावधानों में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है, लेकिन यथार्थ के धरातल पर उन्हें सुनिश्चित करना निश्चित रूप से आसान नहीं है। विश्व का संभवतः ऐसा कोई दूसरा देश नहीं है जहाँ इतनी विभाजनकारी और विविधतापूर्ण प्रवृत्तियाँ हों, जितनी कि हमारे देश में हैं। यह विविधता क्षेत्र, धर्म, लिंग, जाति, भाषा आदि पर आधारित है। आर्थिक और शैक्षिक भेद भी यहाँ काफी है। फिर भी मानवाधिकार सुनिश्चित करने और सामाजिक न्याय हासिल करने की हमारी संरचना काफी मजबूत है। कुछ इन्हीं सब कारणों से कहा जाता है कि मानवाधिकार समाज की आधारशिला है।

(४०)प्रश्नः क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि मन की सरिता में औरतों का अलग किनारा है? यदि है तो क्यों?

उत्तरः हाँ, मैं भी यह महसूस करता हूँ कि मन की सरिता में औरतों का अलग किनारा है। किसी भी अन्य जीव की तरह ही स्त्री और पुरुष मूलतः मानव जाति के ही समांतर हिस्से हैं, जिनकी शारीरिक संरचनाएँ कई समानताओं के बावजूद अलग-अलग हैं, किंतु इस भिन्नता का अर्थ यह कदापित नहीं कि प्राकृतिक रूप से कोई किसी से कमतर है। मानव इतिहास के कालांतर में श्रम-विभाजन व सांस्कृतिक सामाजिक मान्यताओं के आधार पर लैंगिक असमानताएँ निर्मित की हैं, जो कि वास्तविक नहीं है।

अगर प्राकृतिक रूप से स्त्री और पुरुष एक दूसरे की आवश्यकताओं को पूरा कर एक पूर्ण सृजनात्मक जैविक व सामाजिक सर्किट बनाते हैं, तो उनमें से किसी एक को इस सर्किट का श्रेष्ठ मानना अन्याय ही दिखाई पड़ता है। इसके लिए सबसे अधिक दोषी ठहरता है वह रूढ़ समाजीकरण, जिसमें दैनिक व्यवहार के विशेषणों को स्त्रियोचित या पुरुषोचित बना दिया गया है। इसके पीछे निश्चित तौर पर एक प्रभुतावादी सामाजिक मनोवृत्ति काम करती है। जहाँ तक मानसिक संरचना या मनोविज्ञान का प्रश्न है, मेरी समझ है कि क्या यह मानसिक विन्यास पैदाइशी होता है या सामाजिक कंडीशनिंग का परिणाम है? मुझे खुशी इस बात से है कि कुछ लोगों द्वारा महिलाओं को नीचा गिराने की कोशिश के बावजूद महिलाओं ने महत्वपूर्ण स्थान हासिल किए हैं।

पता नहीं क्यों 'सौंदर्य' व 'कोमलता' को स्त्रियों तक सीमित कर दिया गया है और 'बौद्धिकता' व 'बलिष्ठता' को पुरुषों का अनिवार्य गुण

मान लिया गया है। क्या ये गुण परस्पर एक-दूसरे के पाले में नहीं जा सकते हैं। मौजूदा दौर में तो महिलाएँ भी वह सब काम कर रही हैं जिसका जिम्मा अबतक पुरुषों के पल्ले रहा है। अब तो पुरुष और स्त्री अपनी पूर्व प्रदत्त स्थितियों को बदल रहे हैं। चाहे वाहन चलाना हो या सैन्य अधिकारी प्रायः सभी क्षेत्रों में स्त्रियों की भागीदारी देखी जा रही है जिसे न केवल समाज, बल्कि मनोरंजन और विज्ञापन जगत भी अनुभव कर रहा है, तो फिर औरतों का अलग किनारा क्यों?

ख्यातिप्राप्त शिक्षाविद् प्रो. कृष्ण कुमार अपनी किताब 'चूड़ी बाजार में लड़की' में इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-'लड़के के लिए सड़क एक खुली जगह है, जिस पर वह कहीं भी रूककर खड़ा हो सकता है... इसके विपरीत लड़की के लिए सड़क एक स्थान से दूसरे स्थान तक कम-से-कम समय में जाने का माध्यम है... ये जगहें लड़कों के लिए उनकी स्वतंत्रता विस्तार का साधन बन जाती हैं। लड़कियों के साथ ऐसा नहीं होता, बल्कि जैसे-जैसे वह बड़ी होती है, सड़क पर पहले से ज्यादा सिमटकर चलना जरूरी पाती है और इस तरह सीखती है कि सड़क उसके लिए असुरक्षित जगह है, जिससे उसे न्यूनतम या सिर्फ जरूरत भर का वास्ता रखना है।'

दरअसल, स्त्रियाँ लंबे समय तक शिक्षा से वंचित रहीं और इसी वजह से परंपरा व मान्यताओं के लबादे में लिपटी विषमताओं को वे समझ नहीं पाई, लेकिन अब स्थितियाँ बदली हैं। सामाजिक विमर्शो ने समाज की मानसिकता को निश्चित तौर पर चुनौती दी है, पर कुछ धारणाएँ इतनी गहरी होती हैं, जिनसे जीत पाना बहुत आसान नहीं होता। जरूरत इस बात की है कि स्त्री-पुरुष की बराबरी की बात करने वाले विमर्श में दो इंसान बिना किसी प्रमुख के एक नए सफर की शुरुआत करें।

(४१)प्रश्नः क्या भारतीय समाज सचमुच आपाद पाखंडी समाज होता चला जा रहा है? कैसे?

उत्तरः एक तरफ तो हम भारतीय संस्कृति और सभ्यता की तारीफ करते नहीं थकते, तो दूसरी तरफ इस देश की आधी आबादी या महिलाएँ क्या पहनेगीं, क्या खाएँगी, कहाँ जाएँगी ये तय करना आज भी उसके अख्तियार में नहीं है? यही नहीं, सिलीकॉन सिटी कहे जाने वाले बंगलूरू में नए साल आने पर सरेआम लड़कियों के साथ छेड़छाड़ की घटना और उसके बाद दिल्ली के मुखर्जी नगर में नए साल के जश्न में ऐसी घटनाएँ घटीं जिसे उजड्डता, अभद्रता और बेशर्मी के साथ आने को क्या कहेंगे? यह एक नई संस्कृति

है कि जहाँ भी युवक-युवतियों के इस तरह जुटान होते हैं, वहाँ युवकों की उच्छृंखलता जैसे स्वत:-स्फूर्त ढंग से फूटने लगती है। वहाँ उनके लिए कोई मर्यादा नहीं होती, सिर्फ मौज मस्ती होती है और लड़कियों के प्रति दैहिक या भाषिक अश्लीलता उनकी इस मौज-मस्ती का स्वाभाविक हिस्सा होती है। यह समूह की संस्कृति होती है। बंगलूर या दिल्ली में लड़कियों के साथ जो घटनाएँ घटीं, क्या ये वारदात हमें ये सोचने के लिए मजबूर नहीं करतीं कि आखिर हम दुनिया के सामने कौन सी तस्वीर पेश कर रहे हैं? मुझे तो लगता है कि महाराष्ट्र के अबू आजमी और उनके शहजादा जैसे नेता या कर्नाटक के जी. परमेश्वर जैसे गृहमंत्री का इस घटना के बाद आने वाला बयान इस बात तस्दीक करता है कि इस मूल्क के तमाम लोग आज भी कबिलाई सोच पर जिंदा हैं। उनके आगे लिखे जाने वाले ओहदे या उनके रसूख का कोई मतलब नहीं होता। वो आज भी आदिम काल में ही जी रहे हैं। उनकी मानसिकता कभी बदल नहीं सकती।

परिवार, समाज और राजनीति के बीच परंपरा और मानसिकता के बहुत सारे मोर्चो पर दशकों के संघर्ष के बाद महिलाओं ने अपनी काबिलियत के साथ देश और दुनिया में अपनी जगह बनानी शुरू की है। सार्वजनिक गतिविधियों में शिरकत करते हुए वे भी बराबरी की जिंदगी जीना चाहती हैं। समानता के मूल्यों में विश्वास करने वाले किसी भी समाज के लिए यह सहज स्थिति होनी चाहिए, यह तो समझ में आती है, लेकिन नए साल की पूर्व संध्या पर बंगलूरू में कई युवतियों को जिस तरह युवकों की अश्लील हरकतों का शिकार होना पड़ा, वह क्या किसी भी समाज के लिए शर्म की बात नहीं है? सैकड़ों लोगों के उत्सव के बीच सार्वजनिक रूप से पुलिस की मौजूदगी में महिलाओं के खिलाफ यौन हिंसा की वजह अगर अबू आजमी को पोशाक, देर रात पार्टी और पश्चिमी संस्कृति दिखाई देती है, तो सोचने के स्तर पर अफसोस जताया जाना चाहिए। मैं यहाँ तक स्वीकार करता हूँ कि लड़कियों के छोटे होते पोशाक और उसे पहनकर सार्वजनिक जगहों में भड़काऊ अंदाज भी ठीक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसी के परिणामस्वरूप भी तो जब नए जीवन मूल्यों से प्रेरित महिलाएँ इस पोशाक में घर से निकलती हैं और आधुनिकताजन्य जीवन शैली के तहत नवविकसित उत्सवधर्मिता में भागीदारी भी करती हैं, तो वे सुरक्षित नहीं रह पातीं। इसका सीधा कारण है कि व्यक्तिगत अधिकार और समानता के मूल्यों की चेतना का तो विस्तार हुआ है, लेकिन इस चेतना की ढाल बनने वाली

सुरक्षा-संस्कृति का विकास नहीं हुआ यानी ऐसी संस्कृति का विकास नहीं हुआ जिसके चलते महिलाएँ स्वयं को बाहर भी उतना ही सुरक्षित महसूस करें जितना कि वे घर और परिवार में करती हैं। मेरा आशय यह है कि उस संस्कृति का विकास नहीं हुआ जो लंपटता पर लगाम लगाती हो। मनुष्य का मर्यादित, संयमित और संवेदनशील बताती हो। ऐसे में महिलाओं को भी सचेत रहने की जरूरत तो है ही।

(४२)प्रश्नः क्या आप यह महसूस करते हैं कि आमतौर पर मूल्यहीनता को लेकर समाज के हर वर्ग में चिंता व्यक्त की जा रही है? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, मैं यह महसूस करता हूँ कि आम तौर पर मूल्यहीनता को लेकर समाज के हर वर्ग में चितां व्यक्त की जा रही है, क्योंकि मूल्य एक ऐसे प्रेरक तत्व के रूप में समझे जाते हैं, जो हमें विभिन्न प्रकार के कार्यो को करने में प्रवृत्त करते हैं और सामाजिक चेतना को जगाए रखते हैं। धैर्य, क्षमा, चोरी न करना, पवित्रता, अपने ऊपर नियंत्रण सत्य और क्रोध न करने आदि व्यवहारों को धर्म का लक्षण बताया गया है, क्योंकि ये सभी मूल्य हमें धर्म के लिए प्रेरित करते हैं। मगर प्रायः समाज के सभी वर्गो में आज देखा जा रहा है कि ये मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं। सच तो यह है कि हम दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम खुद अपने बारे में कैसा सोचते हैं और दूसरों को किस रूप में ग्रहण करते हैं, क्योंकि भारतीय सोच में अहंकार को एक समस्या के रूप में देखा गया है और यह माना गया है कि अहंकार एक भ्रम है और अपने अहं को खत्म कर या उसे विसर्जित करते हुए ही समग्र का विकास हो सकता है। मगर चिंता का विषय यह है कि यही अहंकार समाज के प्रायः सभी वर्ग में देखने को मिल रहा है। दरअसल, आजकल 'स्व' अकेले व्यक्ति के विस्तार या अहंकार को बढ़ाता है। यही भ्रम लोगों को है, क्योंकि सच्चे अर्थ में 'स्व' में निज और पराया का कोई स्थान नहीं है, मगर आज यही 'स्व' निज और पराया में विभाजित करने वाली रेखा बन गयी है जिसमे से अंदर बाहर आना-जाना संभव नहीं हो पा रहा है। कारण कि वह मूल्य ऐसा नहीं हो सकता, जिसमें मेरा हित हो और दूसरे का अहित हो। इसमें सबके कल्याण की बात होगी।

दरअसल, वक्त के साथ हम और भी सभ्य, सुसंस्कृत और सहिष्णु होते, मगर ऐसा लगता है कि वक्त की सूई उलटे घूम गई है। समाज में

आधुनिकता के चलते जहाँ कुप्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं, वहीं हम विनम्र और स्वभाव में लचीला होने की बजाय एक अजब तरह के जंगलीपन, भौंडेपन और स्वार्थपन की तरफ बढ़ते जा रहे हैं। स्वार्थीपन की यह पराकाष्ठा ही है कि हम छोटे से लाभ के लिए किसी का बड़ा नुकसान करने से भी नहीं हिचक रहे। मामूली कहासूनी और बहुत ही छोटी सी बात पर हत्या जैसे बड़े अपराध समाज में बढ़ती असहिष्णुता की तरफ ही संकेत करते हैं।

(४३)प्रश्नः क्या समाज में दिनोदिन बढ़ रही संवेदनहीनता से इनकार किया जा सकता है? नहीं तो क्यों नहीं?

उत्तर: नहीं, समाज में दिनोंदिन बढ़ रही संवेदनहीनता से इनकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि प्रायः प्रत्येक राज्य में कानून-व्यवस्था लचर है और भ्रष्टाचार पराकाष्ठा पर है। सच कहा जाए, तो राजनीतिक भ्रष्टाचारियों ने ही लचर कानून-व्यवस्था ईजाद की है। यदि कुछ मामलों में कठोर कानून भी बने, तो उनका अनुपालन नहीं के बराबर है। पुलिस को सहयोग और सूचनाएँ देने की विज्ञप्ति भले ही प्रकाशित होती रहती हैं और सूचनाएँ गुप्त रखने एवं ईनाम देने के प्रलोभन भी दिए जाते हैं, परंतु नतीजा वही ढाक के तीन पात। वर्तमान कानून और कानून का पालन करने वाले अन्याय का प्रतिकार करने वाले की जान-माल एवं मर्यादा की रक्षा की गारंटी ले नहीं सकते। उल्टे अन्याय का प्रतिकार करने पर उसकी नियति बन जाते हैं जिसने अन्याय का प्रतिकार किया है।

मेरा ख्याल है कि कोई भी इंसान जन्म से अपराधी नहीं होता और संवेदनाएँ हर हृदय में हिलोरें लेती रहती हैं। उसके व्यक्तित्व निर्माण में शिक्षा, पारिवारिक और सामाजिक परिवेश मुख्यतः जिम्मेदार होते हैं और उसके बाद परिस्थितियाँ इन परिस्थितियों के लिए शासन एवं प्रशासन जिम्मेदार नहीं होता। यह बात भी गले से नीचे उतरने वाली नहीं है।

शिक्षा के बावजूद बेरोजगारी का दंश झेलने वाला युवा अपने एवं परिवार का भरण-पोषण एवं प्राण रक्षा के लिए जरायम के क्षेत्र में जब उतरने के लिए मजबूर हो जाता है तो उसकी संवेदनाओं पर प्रश्नचिह्न लगने से पहले शासन व्यवस्था को खुद अपने गिरेबां में झांकना ही होगा। लोभ इंसान की स्वाभाविक प्रवृत्ति है जिसके चलते वह अधिक से अधिक संपत्ति संचित करना चाहता है, भले ही इसके लिए दूसरों का हक क्यों न छीनना पड़े। सच तो यह है कि आज बाहुबलियों के सहारे ही सत्ता पर काबिज रहने

का चलन सा बन गया है। फिर निर्बल को न्याय कैसे मिल सकता है।

हवस धन-संपत्ति की हो या अथवा कामवासना की, दोनों ही समाज के लिए पीड़ादायी है। इस पर नियंत्रण के लिए कठोर कानून के साथ ही उनका अनुपालन भी बहुत जरूरी है जो आज नहीं हो पा रहा है। इसी प्रकार अहंकार चाहे धन संपत्ति का हो या रसूख का, संवेदनाओं का हनन कर देता है। आज देखने में तो यह आ रहा है कि दबंगई, आर्थिक एवं चारित्रिक भ्रष्टाचार के मामलों में अधिकारी, नेता, मंत्री, विधायक, सांसद एवं उद्योगपतियों के लाड़ले ही अधिकतर लिप्त रहते हैं जिसका प्रमुख कारण है कि पद-प्रतिष्ठा और सत्ता की हनकवाले परिजनों पर उनका दृढ़ विश्वास रहता है कि वह उन्हें बचा ही लेंगे। इसी प्रकार रिश्वतखोरी की प्रवृत्ति ने तो व्यवस्था के हर क्षेत्र में झंडे गाड़ दिए हैं। घुस के लालच में तो पुलिसवाले भी संवेदनहीन हो जाते हैं और वह कोर्ट-कचहरी से भी देर-सबेर मुक्त हो जाते हैं। ऐसे में संवेदनाएँ कहाँ तक जीवित रह सकती हैं।

(४४)प्रश्नः भारतीय समाज में महिलाओं को बेटर हाफ कहा जाता है, लेकिन उन्हें बेटर हाफ तो क्या ईक्वल हाफ भी क्यों नहीं बनाया जाता?

उत्तरः हाँ, हमारे भारतीय समाज में पत्नी को बेटर हाफ कहा जाता है, लेकिन यह सिर्फ कहने के लिए है, क्योंकि ऐसा मानने वाले व्यवहार में बहुत कम लोग देखने में आते हैं । महिलाओं के प्रति समाज की सोच और पुरुष की मानसिकता चिंतनीय है। मुझे याद है सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश ए के सीकरी ने एक विश्वविद्यालय में आयोजित संगोष्ठी में 'रिप्रोडक्टिव राइट्स इन इंडियन कोर्ट्स' विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा था कि अपने देश में अगर रिप्रोडक्टिव राइट्स की बात करें, तो एक ही नजारा दिखता है। यहाँ महिलाओं के रिप्रोडक्टिव राइट्स से जुड़े फैसले में भी उनसे नहीं पूछा जाता कि ये अधिकार सिर्फ महिलाओं का है, लेकिन इसके फैसले सिर्फ पुरुष या उनका परिवार करता है। ये लोग उसे बताते हैं कि उन्हें बच्चा कब चाहिए, कितने चाहिए। वो लड़का होगा या लड़की। उसे दुनिया में लाना है या अर्बासन करना है। जबकि ये सारे फैसले लेने का हक सिर्फ उस महिला का है जिसे बच्चे को जन्म देना है। ये उसके शरीर से जुड़ा है। इसलिए चुनाव भी सिर्फ उसका ही होना चाहिए। इसमें कोई हस्तक्षेप कर सकता है, तो वो सिर्फ महिला का पति है। फिर भी अंतिम फैसला महिला का ही होगा।

मुझे भी आश्चर्य होता है कि 21वीं सदी में पहुँचने के बाद भी जब, तकनीकी रूप से भारत बहुत आगे बढ़ चुका है, लगातार स्पेस में जा रहे हैं, लेकिन फिर भी लोग महिलाओं के साथ इंसानियत नहीं बरत पा रहे हैं। ये हमारे समाज के साथ कड़वा सच है। इसके पीछे पुरुषों की वह मानसिकता है जो हमेशा महिलाओं पर अपना वर्चस्व रखना चाहती है। ये हमारे समाज की जड़ों में बसे हैं जिसे शीघ्रताशीघ्र पूरी तरह उखाड़ फेंकने की जरूरत है।

दरअसल हमारे यहाँ महिलाएँ स्वतंत्र नहीं हैं, क्योंकि कोई महिला तब तक स्वतंत्र नहीं कही जा सकती है जबतक उसके शरीर पर सिर्फ उसका अधिकार न हो। हालांकि कुरीतियाँ दूर करने के लिए कई बार कानून तो बनते हैं, लेकिन ऐसा हो नहीं पाता, क्योंकि समाज के अपने नियम-कानून ऐसा होने नहीं देते।

इसके मद्देनजर मेरा भी ख्याल है कि पत्नी को अगर बेटर हाफ नहीं बना सकते, तो कम से कम उसे ईक्वल हाफ तो बनाइए।

प्रश्न : क्या आपको ऐसा लगता है कि महिलाओं के खिलाफ आपत्तिजनक टिप्पणी के अपराध को 'अक्षम्य' माना जाना चाहिए? ऐसा क्यों?

उत्तर : हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि गुजरे सालों में महिलाओं के खिलाफ जिस तरह की आपत्तिजनक टिप्पणियाँ की जा रही हैं और नेताओं के बयान आ रहे हैं उसके मद्देनजर ऐसे अपराध को न केवल 'अक्षम्य' माना जाना चाहिए, बल्कि मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि जरूरत हो तो ऐसे अपराधों के लिए सख्त सजा का प्रावधान हो।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि महिलाओं के प्रति हमारी सड़ांध भरी सोच में इजाफा हुआ है जिसकी बानगी हमारे रहनुमाओं के वक्त-बेवक्त सामने आने वाले संवेदनहीन और अनर्गल बयानों में दिख जाती हैं। आँध्र प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष कोडेला शिवप्रसाद राव ने पिछले दिनों एक प्रेस कांफ्रेस में बोलते-बोलते महिलाओं की तुलना कार से कर डाली। उन्होंने कहा कि कार को गैराज में रखें, तो एक्सीडेंट का खतरा नहीं होता। इसी तरह महिलाएँ घर में रहें, तो छेड़खानी, रेप जैसी वारदातें कम होंगी। इससे पहले जद(यू) के राष्ट्रीय नेता शरद यादव, भाजपा के विनय कटियार, काँग्रेस के दिग्विजय सिंह, सपा के मुलायम सिंह यादव तथा भाजपा के उ.प्र. के उपाध्यक्ष दयाशंकर सिंह जैसे बड़े-बड़े ओहदेवाले नेताओं के बयानों को लेकर शर्मनाक स्थितियाँ उत्पन्न होती रही हैं।

नेताओं के ऐसे अभद्र और अनर्गल बयानों पर अब सिर्फ अफसोस जाहिर करने और भर्त्सना करने भर से ये शर्मनाक सिलसिला नहीं रूकने वाला। ऐसी टिप्पणियाँ जिसे अशोभनीय कही जाएँगी, तभी रूकेंगी जब ऐसा करना संज्ञेय अपराध माना जाए और इसके लिए सख्त सजा का प्रावधान हो। हमारे कानून में पहले से कुछ धाराएँ जरूर मौजूद हैं जिनके तहत इन मामलों में कार्रवाई की जा सकती है या शिकायतें दर्ज कराई जा सकती हैं लेकिन असलियत यही है, कि सख्त कार्रवाई के उदाहरण बहुत कम हैं। महिलाओं के खिलाफ आपत्तिजनक टिप्पणी के अपराध को 'अक्षम्य' माना जाना चाहिए। जरूरत हो, तो ऐसे अपराधों में आरोप सिद्ध होने पर आरोपियों को संवैधानिक पदों से हटाए जाने के प्रावधान कानून में किए जाने चाहिए।

विगत वर्ष संसद में महिला नीति का जो मसौदा पेश किया गया था, उसमें महिलाओं के खिलाफ ऑनलाइन टिप्पणी को संज्ञेय अपराध की श्रेणी में लाए जाने का प्रस्ताव है। जाहिर है अब पानी सिर से ऊपर गुजर चुका है। तेजाबी जहरीली जुबान पर लगाम के लिए सख्त कदम उठाने का वक्त अब आ चुका है, क्योंकि संवदेनाएँ अब लगातार शुष्क पड़ती जा रहीं हैं।

(४५)प्रश्नः आज देश में अवसाद से जुड़े मामले बहुत तेजी से क्यों सामने आ रहे हैं? अवसाद और चिंता से निजात पाने के लिए आज क्या जरूरी है?

उत्तर: हाँ, आज देश में अवसाद से जुड़े मामले बहुत तेजी से सामने आ रहे हैं, क्योंकि लोगों की निजी इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं का लगातार बढ़ना जारी है। लिहाजा ईर्ष्या, गलाकाट होड़ व रातों-रात सब कुछ पा लेने की इच्छा भी चिंता व अवसाद के चक्र को और मजबूत बना रही है।

अभी हाल में विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा अवसाद एवं अन्य सामाजिक विकार -'एक वैश्विक स्वास्थ्य आकलन' विषय पर प्रकाशित अपनी रिपोर्ट में 18 देशों के तकरीबन एक लाख लोगों पर किए गए सर्वे में खुलासा किया गया है कि चीन और भारत जैसे देश बुरी तरह अवसाद की गिरफ्त में हैं। यह रिपोर्ट यह भी साफ करती है कि इस समय दुनिया में तकरीबन 32 करोड़ से भी अधिक लोग अवसाद के शिकार हैं। हैरत की बात यह है कि इनमें पचास प्रतिशत भारत और चीन में हैं। अकेले भारत में इस समय तकरीबन पाँच करोड़ लोग अवसाद में जी रहे हैं। तकलीफदेह बात यह है कि भारत में 36 फीसद लोग तो अत्यंत अवसाद ग्रस्त के शिकार हैं। भारत इस समय अवसाद के मामले में नंबर एक पर है और

दूसरे नंबर पर फ्रांस तथा तीसरे पायदान पर अमेरिका है।

रिपोर्ट यह भी खुलासा करती है कि विगत एक दशक में अवसाद व चिंता से जुड़ी भावनात्मक समस्याओं में 18 फीसद से भी अधिक का इजाफा हुआ है। भारत व अन्य मध्य आय वर्गवाले देशों में आत्महत्या से जुड़े मामलों में अवसाद जिम्मेदार है। वैश्विक स्तर पर तो हालात यह है कि यहाँ हर चालीस सेकंड में एक व्यक्ति आत्महत्या कर रहा है। रिपोर्ट में इस बात का भी संकेत है कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं में अवसाद और चिंता की घटनाएँ ज्यादा तेजी से बढ़ रही हैं।

मेरा ख्याल है कि आज के इस गलाकाट होड़ के माहौल में चाहे छात्र हों या सेवाकर्मी वे सभी अपनी कार्यक्षमता से अधिक काम करने को मजबूर हैं। यही वजह है कि इन लोगों की नींद के घंटे लगातार कम हो रहे हैं। इसका दुष्परिणाम यह हो रहा है कि तकरीबन 48 फीसद बच्चे व युवा तक निरंतर थकान की अवस्था में है। भारत जैसे धार्मिक व आध्यात्मिक देश में 36 फीसद लोग तो गंभीर रूप से हताशा की स्थिति में हैं। इस अवसाद और निराशा से निजात पाने के लिए जरूरत इस बात की है कि लोग सामाजिक जीवन की उदासीनता से बाहर निकलें और अपने मित्र-दोस्तों व अपने निजी सामाजिक रिश्तों के अहसास और उसके बीच संवाद की परंपरा को और ताकतवर बनाएँ।

(४६)प्रश्नः संसद के दोनों सदनों द्वारा कामकाजी महिलाओं को १२ हफ्ते की बजाय २६ हफ्ते की मैटरनिटी लीव देने के प्रस्ताववाले बिल पर मंजूरी दिया जाना क्या मातृत्व को सम्मान देने की दिशा में स्वागत योग्य कदम नहीं कहा जाएगा? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, संसद के दोनों सदनों द्वारा कामकाजी महिलाओं को 12 हफ्ते की बजाय 26 हफ्ते की मैटरनिटी लीव देने के प्रस्ताव वाले बिल पर मंजूरी दिया जाना मातृत्व को सम्मान देने की दिशा में निश्चित रूप से स्वागत योग्य कहा जाएगा, क्योंकि मातृत्व और गृहस्थी हमारे राष्ट्र और हमारी अर्थव्यवस्था की अत्यंत महत्वपूर्ण कड़ी है। मातृत्व संरक्षण और प्रोत्साहन की दिशा में यह एक ऐसा कदम है, जिसकी जरूरत लंबे-अरसे से महसूस की जा रही थी। सच तो यह है कि मातृत्व सिर्फ एक महिला या उसके परिवार के लिए व्यक्तिगत तौर पर महत्वपूर्ण मसला नहीं है, बल्कि बड़े अर्थो में यह देश के लिए स्वस्थ और सक्षम मानव संसाधन के सृजन की चुनौती से जुड़ा विषय है।

आमतौर पर हमारी मानसिकता यह है कि हम उसी उपक्रम का सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण मानते हैं जिसके जरिए आर्थिक उत्पादन होता है। पर जरा सोचिए कि महिलाएँ, जो जिम्मेदारी 'बिना वेतन और बिना मोल' के निभाती हैं, यदि उसके लिए परिवार और समाज को भुगतान करना पड़ता, तब हमारी अर्थव्यवस्था की स्थिति क्या होती ? इस नए कानून से संगठित सेक्टर में काम करने वाली 18 लाख महिलाओं को लाभ मिलेगा।

(४७)प्रश्नः देश के बदलते राजनीतिक परिवेश के परिप्रेक्ष्य में क्या मुस्लिम समाज को नया नजरिया नहीं अपनाना चाहिए?

उत्तरः हाँ, देश के बदलते राजनीतिक परिवेश के परिप्रेक्ष्य में मुस्लिम समाज को निश्चित रूप से नया नजरिया अपनाना चाहिए। हालात ने मुस्लिम समाज को एक और मौका दिया है कि वह नकारात्मक सोच के दायरे से बाहर निकले। कारण कि 2014 के लोकसभा चुनाव में देश में सबसे ज्यादा 80 सांसद भेजने वाले उ.प्र. से एक भी मुस्लिम सांसद नहीं है और 2017 के फरवरी मार्च में हुए उत्तरप्रदेश विधानसभा चुनाव में प्रचंड बहुमत हासिल करने वाली भाजपा में एक भी मुस्लिम विधायक नहीं। दरअसल, भाजपा ने एक भी मुस्लिम उम्मीदवार को टिकट नहीं दिया था इसलिए कि टिकट देने के बाद भी वह हार जाते। बावजूद इसके नए मंत्रिमंडल में एक मुस्लिम को जगह दी गई।

आपको याद होगा 1947 में मजहब के नाम पर बँटे पाकिस्तान में जाने का पूरजोर मुस्लिम समाज ने किया था और भारत को अपनी मातृभूमि के रूप में चुना था, मगर आजादी के बाद बदलते भारत में वही तबका का कोई खास रचनात्मक योगदान नहीं रहा जबकि इंडोनेशिया के बाद भारत में ही दुनिया की सबसे अधिक मुस्लिम आबादी रहती है। सच तो यह है मुस्लिम समाज के नेतृत्व ने भी अपने समाज को सही दिशा में अपेक्षित भूमिका नहीं निभाई, बल्कि समाज के अक्षम नेतृत्व ने ऐसे अफसोसजनक हालात पैदा किए जिससे वह पिछले पायदान पर पहुँचकर एक वोट बैंक बनकर रह गया है। मुस्लिम नेतृत्व ने मुस्लिम समाज को जिस ओर अग्रसर किया वह राह सिर्फ मानसिक विध्वंस की ओर ले जाती है। आखिर तभी तो शिक्षा, विज्ञान और व्यापार जैसे क्षेत्रों में मुस्लिम समाज आखिरी छोर पर आज खड़ा मिलता है और राजनीतिक क्षेत्र में भी उसकी संख्या नगण्य रह गयी है। 2011 की जनगणना के मुताबिक देश में हर चौथा भिखारी मुसलमान है और तलाकशुदा मुसलमानों में 80 फीसद महिलाएँ हैं।

मेरा ख्याल है कि दुनिया में वही लोग कुछ अलग कर पाते हैं जो बदले हालात में भी सकारात्मक नजरिया रखते हैं। मुस्लिम समाज में भी ऐसा कई उदाहरण हजरत मुहम्मद साहब के जीवन से मिलता है। दरअसल, मुस्लिम समाज पहले तो हमेशा से भाजपा को सांप्रदायिक पार्टी समझता रहा; जबकि नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद से तो सांप्रदायिकता फैलाने का एक भी उदाहरण नहीं मिलता है। दूसरी बात यह कि विपक्षी पार्टियाँ भी उन्हें बरगलाती रहीं और वोट बैंक बनाकर अपनी रोटियाँ सेकती रहीं। इसलिए बदलते राजनीतिक हालात के मद्देनजर मुस्लिम समाज को अब नया नजरिया अपनाने की जरूरत है।

इस संदर्भ में एक और बात आपको मैं बताना चाहूँगा कि भारत में रहने वाले हर धर्म-संप्रदाय के नागरिकों को अपने आपको सबसे पहले भारतीय समझना चाहिए। भारतीय संविधान में सबको एक समान अधिकार और कर्तव्य दिए गए हैं। लिहाजा मुस्लिम समाज को भी अपने मजहब के स्वंयभू ठेकेदारों की चिकनी-चुपड़ी और बहकाने वाली बातों से बचना चाहिए, क्योंकि नकारात्मक सोच और शक हमेशा ही इंसान को आगे बढ़ने से रोकते हैं।

(४८)प्रश्नः लाखों की संख्या में भिखारी होने की वजह सें क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि भारत के शहर बदनाम हो रहे हैं?

उत्तर: हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि लाखों की संख्या में भिखारी होने की वजह से भारत के शहर बदनाम हो रहे हैं। हमारे देश में आजादी के सत्तर साल बाद आज भी सार्वजनिक स्थलों पर भीख माँगते बच्चे, बूढ़े, युवक-युवती आसानी से देखे जा सकते हैं। सन् 2011 की जनसंख्या के आँकड़े के मुताबिक भारत जैसे संप्रभु देश में जहाँ 'वसुधैव कुटुम्बकम, सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया' का भाव रहता है वहाँ सड़कों पर भीख माँगने वालों की संख्या पूरे देश में 3.72 लाख भिखारी अपना जीवन यापन इस व्यवसाय से कर रहे हैं। इनमें से 79 हजार भीख माँगने वाले शिक्षित हैं और अधिकांश के पास प्रोफेसनल डिग्री भी है जिसका उपयोग वे रोजगार प्राप्ति में न करके भीख माँगने में कर रहे हैं। एक अन्य सरकारी आँकड़ों के अनुसार भीख माँगने वालों में 40 हजार से ज्यादा बच्चे शामिल हैं जबकि राज्यों में भीख माँगना प्रतिबंध की श्रेणी में है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि भीख माँगने की आड़ में कपट करके लोगों की भावनाओं पर कुठाराघात कर भीख को अपना

कारोबार करने वाले कुछ ऐसे भी हैं जो आलीशान कोठियाँ व भीख के पैसे से ब्याज पर रुपए देने जैसे धँधे अपनाए हुए हैं। आपके अंत:करण में यह हकीकत सुनकर शायद भविष्य में सार्वजनिक जगहों, मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, रेलवे स्टेशनों व भीड़-भाड़वाली जगहों में भिखारी के वेश में आए शख्स पर संदेह अवश्य होगा। भीख को ऐसे लोग अपना धंधा बना लिए हैं। मुझे तो यह भी जानकारी मिली है कि कुछ ऐसे लोग भी हैं जो असली भिखारियों को बंधुआ मजदूरों से भिक्षाटन कराते हैं और संध्या समय अपनी कार या भान की डिग्गी में भर-भरकर बंधुआ भिखारियों से पैसा तसीलकर अपनी आलीशान कोठियों में ले जाते हैं।

मैं मानता हूँ कि कुछ लोग तो जान-बुझकर भिखारी बने हैं, मगर अधिकांश लोग बहुत मजबूरी और मुसीबत में भिखारी बने हैं। स्वामी विवेकानंद ने कहा था-युवा पीढ़ी राष्ट्र की रीढ़ होती है, उनका मनोबल, उनकी क्षमता, साहस असीम है ... पर जिस देश में नन्हें बच्चे, युवा पीढ़ी भीख जैसे व्यवसाय में लिप्त हैं,तो यहाँ विवेकानन्द जैसे युवा नेतृत्व की जरूरत को तलाशना समय की माँग है। बच्चे का भीख माँगना अपराध ही नहीं, बल्कि देश की सामाजिक सुरक्षा के लिए खतरा है। भारत में ज्यादातर बाल भिखारी अपनी मर्जी से भीख नहीं माँगते। वे संगठित भविष्य के हाथों की कठपुतली बन जाते हैं। इन बच्चों के हाथों किताबों की जगह भी रखकर कटोरा आ जाता है जो देश के लिए शर्मनाक तो है ही, इसकी वजह से देश के शहर बदनाम भी हो रहे हैं।

(४९)प्रश्न: भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्या क्या है?

उत्तर: मेरी समझ से भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्या है धर्मशास्त्रों की मानसिक गुलामी, क्योंकि धर्मशास्त्रों की मानसिक गुलामी से भारत अपनी मुक्ति का संघर्ष करने से बचता रहा है। संसार की सभी सभ्यताएँ अपने विकास के किसी न किसी दौर में धर्मशास्त्रों की मानसिक गुलामी से निकली हैं। यही उनके सामाजिक और नैतिक विकास का एक मात्र सूत्र रहा है। चाहे यूरोप के देश हों, चीन-रूस हों या अमेरिका - इन सबने नए आधारों पर अपने समाज और रानज़ीति का पुनर्गठन किया, पर भारत में ऐसा नहीं हो पाया।

धर्मशास्त्रों की मानसिक गुलामी से यह मतलब नहीं है कि हम धार्मिक चेतना के लोग हैं और हमें इससे अपने को मुक्त करना है। इसका मतलब यह है कि धर्मशास्त्र के सामाजिक विधानों ने भारतीय समाज को

अँदरूनी तौर पर विखंडित और जर्जर अवस्था में रखा हुआ है। धर्मशास्त्र के विधानों ने भारतीय व्यक्ति को उसकी संभावनाओं और शक्तियों से वंचित रखा है। तकरीबन सौ साल पहले धर्मशास्त्रों की मानसिक गुलामी से मुक्त करने का प्रयास राजा राम मोहन राय, स्वामी विवेकानंद तथा महात्मा गाँधी आदि ने किया था, जिसके परिणामस्वरूप भारत सदियों के अँधेरे से उठ खड़ा हुआ था। पर यह दुखद है कि मानसिक गुलामी से यह संघर्ष थम गया और अब अधिक दुखद स्थिति यह है कि युगों से संचित मानसिक गुलामी अब राजनीति के पंखों पर सवार होकर अपना पुनर्गठन कर रही है।

भारत इस समय दो स्तरों पर जी रहा है- आर्थिक विकास और मानसिक पिछड़ापन। यह बेहद खतरनाक स्थिति है। यदि समाज में इस स्थिति से निकलने की स्वतःस्फूर्त शक्तियाँ जन्म वहीं लेतीं, तो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र विखंडन के कगार पर खुद को खड़ा पाएँगे।

(५०)प्रश्न: **क्या आज आप ऐसा महसूस करते हैं कि कई जरूरी सामाजिक सरोकारों पर बहस न होने से घर-भीतर अकेले अंतर्मुखी जीवन जी रहे नागरिक लोकतांत्रिक सरोकारों तथा आस-पड़ोस से कटकर असामाजिक तत्व बनते जा रहे हैं? यदि हाँ, तो क्यों?**

उत्तर: हाँ, मैं भी आज ऐसा महसूस करता हूँ कि कई जरूरी सामाजिक सरोकारों पर बहस न होने से घर-भीतर अकेले अंतर्मुखी जीवन जी रहे नागरिक लोकतांत्रिक सरोकारों तथा आस-पड़ोस से कटकर असामाजिक तत्व बनते जा रहे हैं। दरअसल, सूचना संचार क्रांति के होने से दुनिया लोकतंत्र विमुख, मानवता विरोधी, एक-दूसरे के सुख-दुख से तटस्थ काठ बनती चली जा रही है।

भाई आनंदवर्द्धन जी, आप भी इस बात के साक्षी हैं कि इन दिनों लगभग हर दूसरा कार्यालयकर्मी, राहगीर या वाहन चालक ही नहीं, फुटपाथ पर सामान बेचने वाला खड़ा बिक्रेता भी, आसपास से बेखबर अपने सेलफोन पर बतियाता, स्मार्टफोन पर वीडियो क्लिप देखता या कान में खूँटी डाले संगीत सुनता रहता है। आप यह भी देख रहे हैं कि हमारे समाज में हर कहीं, हर उम्र के लोगों में असुरक्षा और अवसाद के मरीज तथा सार्वजनिक जीवन जुनूनी हिंसक आचरण बढ़ रहे हैं। जाहिर है कि ऐसी स्थिति में बेरोकटोक बतकहीं, मनोरंजक कार्यक्रमों और संगीत के इस प्रसार के बावजूद तेजी से शहरी बन रहे हमारे युवा नागरिकों के बीच अजनबियत और तनाव बढ़ रहे हैं। हम और आप आज आसानी से दंपतियों और

अभिभावकों का बच्चों व बूढ़ों के साथ सहजता से उठना-बैठना और अंतरंग बातचीत करना मिट रहा है। आए दिन यह खबरें पढ़ने या सुनने को मिलती हैं कि पुलिस ने घर में बंद मानसिक रूप से बीमार मृतप्राय लोगों को ताला तोड़कर निकाला या दुर्गंध आने पर चौकीदार ने जब पुलिस को इत्तला दी, तो अकेले में मर गए या मार दिए गए लोगों के शव बरामद किए।

आज के युवा अपने जेहन में परिवार या लोकतंत्र की नैतिकता को लेकर कोई बोझ नहीं पालते और न ही परिसर मे समानधर्मा लोगों को जुटाकर सामाजिक मुद्दों या सियासी विचारों पर बहस व कार्रवाई शुरू करते हैं। आखिर तभी तो ख्यातिलब्ध कवि टी एस एलिएट ने कहा था कि आज का नागरिक बहुत दूर तक वास्तविकता का बोझ नहीं उठाता। यही कारण है सुरसाकर बनते निजी सूचना साम्राज्य की जी-हुजूरी निरंतर एकाधिपत्य की तरह लपकते राज समाज के तकलीफदेह ब्योरों से हम दूर रखे हुए हैं। आए दिन हम और आप सड़कों पर उतरी जुनूनी भीड़ अपने हाथ में कानून लेकर इठला रही है और लोगों को यह सही लगता है।

मैं यह नहीं कहता कि युवा पीढ़ी अपने रास्ते से भटक गई हैं, बल्कि वे बनने की प्रक्रिया से गुजर रही है और अपनी पहचान बनाने की कोशिश में लगी है। सच तो यह है कि पिछली दो-तीन पीढ़ियाँ अपनी आने वाली पीढ़ियों को यह जताने में नाकाम रही हैं कि हमारे पास भारतीय संस्कृति अथवा पश्चिमी संस्कृति की असली ताकत काम के प्रति ईमानदारी, तार्किक क्षमता और उनका शिष्टाचार है। पश्चिमी संस्कृति से आए कोकाकोला, शराब, ड्रग्स और शोर-शराबा बस यही सब तो हमारे युवा अपना रहे हैं और पिछली दो-तीन पीढ़ियाँ अपनी आने वाली पीढ़ियों को यह जताने में नाकाम रही हैं कि हमारे पास जो सांस्कृतिक धरोहर है वो कितनी बेशकीमती है। आज जरूरत इस बात की है कि हमें अपनी संस्कृति के खूबसूरत पहलुओं को उजागर करना चाहिए और ग़ंदगी को साफ करना चाहिए तभी तो अगली पीढ़ी को हम कुछ दे पाएँगे जिसके अभाव में युवा पीढ़ी और अकेले अंतर्मुखी जीवन जी रहे नागरिक लोकतांत्रिक सरोकारों तथा आस-पास से कटकर असामाजिक तत्व बनते जा रहे हैं।

जरूरत इस बात की है कि समाज में सामंजस्य और परस्पर सहयोग की भावना को मजबूत किया जाए। इसकी जितनी जरूरत तब थी, उतनी ही, बल्कि उससे ज्यादा जरूरत आज है, क्योंकि घर-बाहर अंतर्मुखी जीवन जी रहे नागरिक लोकतांत्रिक सरोकारों तथा आस-पड़ोस से कटकर असामाजिक

तत्व बनते जा रहे हैं। यही नहीं जब घर के सदस्य बिखर गए तो अकेलापन नामक आतंकी संगठन घर में प्रवेश कर गया है। पाँच-दस लोगों के बीच में रहने के बाद भी लोगों को अकेलापन महसूस होता है। भले ही परिवार के नेतृत्व करने वाले परिवार को आर्थिक दृढ़ता दे रहे हों, शिक्षा के क्षेत्र में उच्चता देते हों और सामाजिक पहचान देते हों, लेकिन परिवार की उदासी नहीं मिटा पा रहे हैं जिसके अभाव में उन्हें प्रसन्नता और शांति नहीं मिल पा रही है।

(५१)प्रश्न: १५ जून को अंतरराष्ट्रीय बुजुर्ग दुर्व्यवहार विरोधी दिवस पर क्या आज की युवा पीढ़ी में वो क्षमता, धैर्य या साहस है जो उन्हें झुर्रीदार चेहरों के अंदर की भावनाओं को समझने को प्रेरित कर सकें और अपने बुजुर्गों की गिरती काया को बढ़ते बोझ या उपहास के पात्र के रूप देखने के बदले उन्हें दुर्लभ संपत्ति के रूप में देख सकें?

उत्तर: प्रत्येक वर्ष के 15 जून को अंतरराष्ट्रीय बुजुर्ग दुर्व्यवहार विरोधी दिवस मनाया जाता है, मगर दिनोदिन बुजुर्गों के प्रति नई पीढ़ी का रूख बदलता जा रहा है। एक समय था जब भारतीय भूमि और हमारी सांस्कृतिक परंपराओं का इतिहास गौरवशाली रहा है जिसमें माता-पिता, गुरु और बुजुर्ग को देवताओं की श्रेणी दी गई थी। हमें अपने संस्कारों में मातृ देवो भव:, पितृ देवो भव: आचार्य देवो भव:, अतिथि देवो भव: का ज्ञान परिवार की पाठशाला में ही मिल जाता था। जिंदगी के हर बड़े फैसले या हर खुशखबरी के वक्त बुजुर्गो का आशीर्वाद लेने की परंपरा थी और उनके चरण स्पर्श को सफलता की पहली कड़ी माना जाता था, लेकिन आज की परिस्थिति बिल्कुल विपरीत हो गई है। मौजूदा दौर की अतिगतिशील और आधुनिक जीवन शैली अपनाने के कारण परिवार में न केवल युवाओं और बुजुर्गो के बीच बातचीत के मौके कम होते जा रहे हैं, बल्कि उनके बीच अलगाव भी बढ़ता जा रहा है। बुजुर्गो को दुर्व्यवहार, मार-पीट, घर से बाहर कर देना एवं अन्य तरह की अनेक प्रताड़ना का शिकार होना पड़ रहा है। परिवार में बुजुर्ग बोंझ की तरह प्रतीत होने लगे हैं और अब उन्हें बीमारियों के इलाज के बहाने या धार्मिक स्थलों के सैर के बहाने अनजान जगहों में छोड़कर भाग जाने में उनके अपने बच्चें या परिवार के सदस्य गुरेज नहीं करते हैं।

ऐसी स्थिति में सवाल उठता है कि क्या आज की पीढ़ी में वो क्षमता, धैर्य या साहस है जो उन्हें झुर्रीदार चेहरों के अंदर की भावनाओं को खासतौर पर 15 जून को अंतरराष्ट्रीय बुजुर्ग दुर्व्यवहार विरोधी दिवस के अवसर पर

प्रेरित कर सके और अपने बुजुर्गो की गिरती काया को बढ़ते बोझ या उपहास के पात्र के रूप में देखने के बदले उन्हें दुर्लभ संपत्ति के रूप में देख सकें। अगर नहीं, तो हमें यह याद रखने की जरूरत है कि समय किसी को नहीं छोड़ता। गुजरते वक्त के साथ हम भी बुढ़ापे की दहलीज पर कदम रखेंगे और हमारे द्वारा किया गया कृत्य हमें ही खुद ले डूबेगा, क्योंकि बच्चे अपने माँ–बाप से सीखते हैं। इसलिए हम पाश्चात्य संस्कृति को नकारते हुए अपनी समृद्ध सामिजिक परंपरा को कायम रखने की कोशिश करें। 15 जून को अंतरराष्ट्रीय बुजुर्ग दुर्व्यवहार विरोध दिवस पर हम क्यों न ऐसे ही संकल्प लें?

(५२)प्रश्नः सोशल मीडिया के इस दौर में आज जब 'ब्लू व्हेल' जैसे इन्टरनेट पर आधारित खतरनाक खेल की वजह से सामाजिक कड़ियाँ बुरी तरह बिखरने लग जाएँ, तो वैज्ञानिक तरक्की क्या सामाजिक पतन की कीमत पर इसे लक्ष्य की ओर बढ़ने की सीढ़ी करार दिया जा सकता है?

उत्तरः नहीं, कतई नहीं। इंटरनेट आधारित एक खतरनाक खेल खेलने वाले बच्चों की आज जब तेजी से आत्महत्या की खबरें सोशल मीडिया पर आ रही हैं, तो वैज्ञानिक तरक्की को सामाजिक पतन की कीमत पर इसे लक्ष्य की ओर बढ़ने की सीढ़ी कतई करार नहीं दिया जा सकता है। वैज्ञानिक तरक्की अच्छी बात है और ऐसा भी नहीं है कि प्रौद्योगिकी का नकारात्मक इस्तेमाल ही हो रहा है। यह तर्क किसी भी स्तर पर नहीं दिया जा सकता कि सोशल मीडिया और इंटरनेट का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा करने से तो हम दुनिया के साथ कदमताल ही नहीं कर पाएँगे, लेकिन इस तथ्य से भी मुँह नहीं मोड़ा जा सकता है कि सोशल मीडिया का दुरुपयोग पूरी दुनिया में हो रहा है।

क्या यह सही नहीं कि सामाजिक प्राणी कहा जाने वाला आदमी समाज से ही कटता जा रहा है और लोगों के अंदर सकारात्मक संवेदनाएँ खत्म होती जा रही हैं? कोई घायल सड़क पर तड़पता रहता है, आसपास भीड़ भी जुटती है तो लोग केवल उसकी तस्वीर या वीडियो बनाते रहते हैं, उसे अस्पताल लेकर जाने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं रहती। बहुत कम लोग हैं जो जरूरतमंदों को मदद के लिए तुरंत आगे आते हैं। क्या यह चिंता की बात नहीं है?

हाल ही में ऐसी खबरें आई हैं कि कुछ युवाओं ने खुदकुशी के

लाइव वीडियो सोशल मीडिया पर अपलोड किए हैं। ऐसी खबरें चिंता बढ़ाती हैं, क्योंकि यह कैसा सोशल मीडिया है जो बहुत से दोस्त होते हुए भी व्यक्ति को अकेला करके छोड़ देता है। ऐसे में आवश्यकता इस बात की है कि बचपन से ही लोगों को मोबाइल फोन, इंटरनेट, सोशल मीडिया आदि के इस्तेमाल के बारे में जागरूक किया जाए, क्योंकि आज ऐसा देखा जा रहा है कि आतंकवाद, तमाम तरह के आर्थिक घोटाले, जासूसी वगैरह में इंटरनेट का धड़ल्ले से इस्तेमाल हो रहा है। अकेले हमारे देश में 50 करोड़ से ज्यादा लोग इंटरनेट का इस्तेमाल करते हैं और सौ करोड़ से ज्यादा लोग मोबाइल फोन का इस्तेमाल कर रहे हैं। सरकारी कामकाज भी आधुनिक तौर-तरीकों से किए जा रहे हैं। निजी क्षेत्र भी सोशल मीडिया और इंटरनेट को तरजीह दे रहा है। शिक्षा, रोजगार, उत्पादन सभी क्षेत्रों में संचार के साधनों की तरक्की बहुत कारगर साबित हो रही है। ऐसे में हमें कंटेट की निगरानी के तंत्र के विकास को भी उतना ही महत्व देना होगा और सोशल मीडिया को प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक के पाठ्यक्रमों में शामिल किए जाने की भी जरूरत है। अन्यथा 'ब्लू व्हेल' जैसा खेल किसी बच्चे की जिंदगी खत्म करने का माध्यम बन सकता है।

दूसरी बात यह है कि भारत का अधिकांश समाज पुरातन युग में है, क्योंकि उसका पुनर्जागरण नहीं हो पाया- न स्वत: स्फूर्त, न पश्चिमी प्रभाव से। भारत के सशक्त, साधन-संपन्न सुशिक्षित जनों का मानस भी परम्परागत और रूढ़िवादी है, फिर गरीब और अशिक्षित जन समाज का पूछना ही क्या! सच तो यह है कि वर्तमान दौर में भारतीय समाज पश्चिमी ढाँचे का विकास और सामाजिक पिछड़ापन-इन दो पाटों के बीच पिसता हुआ समाज है, जो भारत का संपूर्ण सार है।

ब्लू व्हेल एक ऐसा गेम है जिसको बनाने वाला फिलिप बुदेकिन अब रूस की जेल में है, लेकिन फिर भी माना जा रहा है कि इंटरनेट पर ऐसे गुट सक्रिय हैं जो बच्चों को इस खेल में फँसा सकते हैं और बच्चे को मौत तक ले जा सकता है। आखिर तभी तो दुनिया भर में इस खेल ने अबतक 250 से ज्यादा बच्चों की जान ले ली है।

मोबाइल और इंटरनेट ने बच्चों का बचपन छीन लिया है। उन्हें टेक्नोलॉजी का एडिक्शन होता जा रहा है। वे हर वक्त मोबाइल अथवा कम्प्यूटर में उलझे रहते हैं। उनकी बातचीत, व्यवहार सब बदल गया है। वे बेगाने हो गए हैं। दिक्कत यह है कि हम सब यह चाहते हैं कि देश में

आधुनिक टेक्नोलॉजी आए, लेकिन उसके साथ किस तरह तालमेल बिठाना है, इस पर कोई विचार नहीं करता।

(५३)प्रश्नः स्त्रियों की मुखरता से समाज में कितना बदलाव आया? स्त्रियों की आज भी समाज में क्या दशा है?

उत्तरः शैलेन्द्र जी, आप तो स्वयं सामाजिक कार्यों से जुड़े रहे हैं और इस लिहाज से अवगत होंगे कि पूँजीवादी विकास के साथ मध्यवर्ग की स्त्रियों का मुखर होना स्वाभाविक है। ये स्त्रियाँ जेंडर के आधार पर सामाजिक रूप से विशेष सुविधा संपन्न हैं, किंतु आम मेहनतकशों के राजनीतिक मंच से मेहनतकश स्त्रियाँ पुरुष-वर्चस्ववाद के धक्के से नीचे धकेल दी जाती हैं और नारीवादी आंदोलनों के मंच पर उन्हें वर्गीय आधार पर चढ़ने नहीं दिया जाता। यही कारण है कि इधर स्त्रियों पर अत्याचार पहले की तुलना में बढ़े हैं, ऑनर किलिंग बढ़ा है और यह सब उनकी मुखरता की परिणति है। फिर भी स्त्री घर से बाहर निकली है और उसने वर्जनाओं को तोड़ा है, अपनी चुप्पी तोड़ी है तथा पुरुष के वर्चस्व को तोड़ा है। इसीलिए भी उस पर अत्याचार बढ़ा है। सभी स्त्रियाँ यदि शिक्षित नहीं हो पाईं तो भी कहीं न कहीं वे इतना समझ गई हैं कि उन्हें अपनी बेटी को उन अत्याचारों से बचाना है जिनसे वे खुद गुजरी हैं। सामाजिक न्याय, आदिवासी, दलित समानता आंदोलन, छात्र आंदोलन में स्त्रियों की बड़ी भागीदारी रही है, लेकिन विमर्श मुख्यधारा के राजनैतिक दलों में चूँकि आर्थिक मुद्दों के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता है, इसलिए आजतक 33 प्रतिशत महिला आरक्षण बिल संसद में पारित नहीं हो सका है। मगर इतना जरूर हुआ है कि ससुराल में प्रताड़ना सहती बेटी को अब 'निभाओ-निभाओ' का मंत्र अनपढ़ माँ भी नहीं पढ़ाती। यह इबारत की सनद नहीं चेतना की ताकत है जो उसने पढ़ी-लिखी स्त्रियों के सान्निध्य में रहकर पाई है। ज्ञान हुआ है कि वह सती नहीं है, जीती-जागती मनुष्य है जिसे अपने वजूद की रक्षा करनी है। कुछ इसी वजह से वह मर्दाना तबका ज्यादा खफा रहता है, जो औरत को पांव की जूती समझता रहा है। इसलिए ही तेजाबी हमलों, बलात्कारों और हत्याओं के नजारे देखने को मिलते हैं। इससे तो स्पष्ट है कि औरत ने सिर उठाया है। यह समाज में बदलाव का द्योतक है।

हाँ, इतना जरूर है कि हिंदी में मराठी, तमिल, मलयालम आदि की तुलना में विमर्श कुछ देर से प्रभावी हुए, क्योंकि इन इलाकों में आजादी के पहले से ही नारी आंदोलन या दलित मुक्ति के आंदोलन शुरू हो चुके थे।

इसके अलावा कई दलित संत कवि भी इन क्षेत्रों में समानता और इसांन की आजादी की भावना का प्रसार कर रहे थे, जबकि हिंदी पट्टी में सांप्रदायिकता की प्रबलता थी और स्त्री को परंपरा के नाम पर ब्राह्मणवादी शिकंजे का सामना करना पड़ रहा था और हिंदुत्व के नाम पर दलितों का दमन भी बहुत प्रबल था। मराठी साहित्य में तो उस चेतना का प्रवेश पहले से रहा है, जो अपने कर्तव्यों के साथ अधिकारों को संज्ञान में लेती है। कहा जाता है कि कसावट जितनी ज्यादा होगी, छटपटाहट उतनी ही तेज होगी। दक्षिण के प्रांतों में छुआछूत से लेकर नृशंसताएँ अपने चरम पर रही हैं। संस्कार बेड़ियों की तरह कठोरता से लागू रहे हैं।

जहाँ तक आज के दौर में समाज में स्त्रियों की दशा का सवाल है, कल तक क्या आज भी कुछ लोग समझते हैं कि स्त्रियों का काम है घर की देखभाल करना, पति सेवा के साथ-साथ परिवार के हर सदस्य का ध्यान रखना, घर और उसके सब तरह के हितों के लिए अपना सब-कुछ समर्पित कर देना और बदले में कोई प्रतिदान न चाहना। स्त्री चाहे गृहिणी हो या कामकाजी, प्राथमिक तौर पर उसका दायित्व यही है। बल्कि सच तो यह है कि कामकाजी स्त्रियाँ दुतरफा दायित्व निर्वाह की चक्की तले पिसती हैं। वे हमेशा आधी इधर और आधी उधर बँटी रहती हैं। वे भौतिक और अधिभौतिक दोनों ही स्तरों पर इस कदर व्यस्त रहती हैं कि राजनीति, समाज, अर्थशास्त्र आदि विषय उन्हें गैर जरूरी लगते हैं। वह नींव की ईंट की तरह इमारत के निर्माण में खुद को खपा दें, बस! अरसे से यही हो रहा है। राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रवादी आंदोलनों, देशभक्ति इत्यादि का यही पितृसत्तावादी स्वरूप है। यही उसका स्त्रीवादी पर्यालोचन है।

जहाँ तक स्त्रियों की आज भी समाज में दशा का सवाल है, दुनिया भर में महिलाओं का उत्पीड़न बढ़ता जा रहा है। महिलाओं की सहजता और सहनशीलता को उनकी कमजोरी समझा जा रहा है जबकि पुरुषों से महिलाएँ किसी भी तरह कमजोर नहीं हैं। नारी अपने आत्मविश्वास के बल र अब दुनिया में अपनी एक अलग पहचान बनाने में सफल हो रही है। आज की नारी आर्थिक व मानसिक रूप से आत्मनिर्भर है और शिक्षा के बढ़ते प्रभाव की वजह से वह पहले की अपेक्षा ज्यादा जागरूक हुई है। वह न केवल आत्मनिर्भर हुई है, बल्कि रचनात्मकता में भी पुरुषों के दबदबेवाले क्षेत्रों में अपनी बुलंदी का झंडा फहरा रही है। आज कोई सिर्फ यह कहकर उनके आत्मविश्वास को ठेस नहीं पहुँचा सकता है कि वह नारी है। अपनी

काबिलियत और साहस के दम पर वह कामयाबी को छू रही है। वह न केवल परिवार को संभाल रही है, बल्कि कैरियर के मोर्चे पर भी पुरुषों को बराबर की टक्कर दे रही है। इन दोनों भूमिकाओं में नारी जिस तरह से तालमेल बैठा रही है उससे आज की नारी का कौशल बाकई काबिले-ए-तारीफ है। आखिर तभी तो भारत जैसे विकासशील देश के रक्षा मंत्री के पद पर आज एक महिला निर्मला सीतारमण बैठ चुकी है और सऊदी अरब जैसे विकसित देश में महिलाओं को गाड़ी चलाने का अधिकार मिल चुका है। अब महिलाएँ बंद आत्मविश्वास की पंखुरियों को खोलने में सफल हो चुकी हैं और कहीं-न-कहीं और किसी-न-किसी रूप में आज की नारी सजग और सचेत है तथा उनके स्वर मुखर हो चुके हैं।

ऐसे वक्त जब मैं वर्तमान दौर में स्त्रियों की दशा पर विचार कर हूँ तब भारतीय समाज में स्त्रियों की आर्थिक आजादी पर जानी-मानी लेखिका और छायावाद के चार स्तंभों में से एक महीयसी महादेवी वर्मा की यह टिप्पणी मुझे याद आ रही है जिसमें उन्होंने कहा है- 'आज की बदली हुई परिस्थितियों में स्त्री केवल उन्हीं आदर्शों से संतोष न कर लेगी, जिनके सारे रंग उसके आँसुओं से धुल चुके हैं, जिनकी सारी शीतलता उसके संताप से क्षीण हो चुकी है। समाज यदि स्वेच्छा से उसके अर्थसंबंधी वैषम्य की ओर ध्यान न दे, उसमें परिवर्तन या संशोधन न समझे तो स्त्री का विद्रोह दिशाहीन आँधी जैसा वेग पकड़ता जाएगा और तब निरंतर ध्वंस के अतिरिक्त समाज उससे कुछ और न पा सकेगा। ऐसी स्थिति न स्त्री के लिए सुखकर है, न समाज के लिए सृजनात्मक। आधुनिक परिस्थितियों में स्त्री की जीवनधारा ने जिस दिशा को अपना लक्ष्य बनाया है, उनमें पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता ही सबसे अधिक गहरे रंगों में चित्रित है। स्त्री ने इतने युगों के अनुभव से जान लिया है कि उसे सामाजिक प्रामाणिक प्राणी बने रहने के लिए केवल दान की ही आवश्यकता नहीं है, आदान की भी है, जिसके बिना जीवन, जीवन नहीं कहा जा सकता।'

(54)प्रश्न: क्या विवाह संस्था की समाज में कोई जगह बची है? क्या अंतरजातीय विवाहों से जातियों के बीच की खाई पट सकती है?

उत्तर: शैलेन्द्र जी, यह बात ठीक है कि आधुनिकता के दौर में आज लोग पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति को अँधाधुंध अपनाते हुए सहजीवन शैली(live in relationship) की ओर तेजी से अग्रसर हो रहे हैं, मगर हमारे देश भारत की संस्कृति के मद्देनजर यह शैली अभी भी अच्छी नहीं समझी जाती है। इसी

प्रकार जब हम अतीत की ओर झाँकते हैं तो उस व्यवस्था में भी नहीं जाना चाहते जहाँ मनुष्य कबीलों में स्वच्छंद विचरता था, बच्चे सामूहिक तौर पर पलते थे। इस ख्याल से देखा जाए, तो आज विवाह संस्था का कोई विकल्प नहीं, क्योंकि जब परिवार समाज की पहली इकाई है, तो संतान और बुजुर्ग इसी इकाई में सुरक्षित रह सकते हैं। सहजीवन मुझे इसलिए पसंद नहीं है कि पुरुष तो मुक्ति चाहता है, ऐसे में स्त्री माँ बनने पर तकरीबन कैद हो जाती है। स्त्री अकले बच्चा पाले, खर्चा भी उठाए तो यह दोहरी कैद है। विवाह से भी बुरी स्थिति में रहने को स्त्री विवश हो जाती है। अकेले और आजाद रहना भी संभव नहीं। इसके लिए दृढ़ मनोबल की जरूरत है। इसलिए सब मिलाकर देखा जाए तो मैं बहुत हद तक विवाह संस्था के पक्ष में हूँ। इसके लिए समाज में जगह बची है।

जहाँ तक अंतरजातीय विवाहों से जातियों के बीच की खाई पटने का सवाल है, इससे बहुत कुछ खाई पट सकती है, बशर्ते कि दोनों जातियों के बीच समझ से काम लिया जाए और दोनों के संस्कारों और रहन-सहन को बखूबी देखभाल कर वैवाहिक संबंध जोड़ा जाए। हमारे दो अत्यंत नजदीक के रिश्तेदारों में अतरजातीय शादियाँ हुई हैं और अबतक तो सफल दिख रही हैं। मेरी समझ से अंतरजातीय विवाह से सामाजिक एकता आएगी। जातिवादी कलंक को मिटाना प्रत्येक विचारवान, समझदार और मानवतावादी व्यक्ति का यह धर्म है। इसे ही तो कहते हैं रोटी-बेटी का व्यवहार। रोटी यानी आपसी खान-पान, यह कुछ मात्रा में तो होने लगा है। मैं तो जातिभेद नहीं मानता, इसीलिए तो जहाँ मैं अपने यहाँ खाना अथवा जलपान के लिए कई जाति के लोगों को आमंत्रित करता हूँ तो मेरे यहाँ सभी जाति के लोग एक ही टेबूल पर बैठकर आनन्द से खाते हैं, वहीं मैं भी किसी मित्र या पड़ोसी के यहाँ जाता हूँ तो जातिभेद कहीं नहीं देखता। दरअसल, जातिभेद भी मन की बात है और इससे अधिक मैं इसे पाखंड मानता हूँ। जब कभी आप किसी होटल अथवा ट्रेन के कैंटिन या किसी दफ्तर के कैंटिन में बैठकर खाना या जलपान करते हैं तो आपके मन में जातिभेद कहाँ आ पाता है। इसलिए आज की नई पीढ़ी द्वारा समझदारी से या फिर प्रेमविवाह करती है तो ऐसे कई उदाहरण हैं जो सफल हो रहे हैं, क्योंकि वहाँ भेदभाव का सवाल नहीं रह जाता। लोगों को समझने का दायरा बढ़ाना होगा। इससे कोई मतभेद हुए बगैर विभिन्न स्वभाववाले लोगों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में सुविधा होगी।

(55)प्रश्न: आज भी भारतीय जनतंत्र में समाज की वंचित जातियों और तबकों की आवाज को अनसुना कर दिया जाता है। ऐसा क्यों?

उत्तर: आज भी भारतीय जनतंत्र में समाज की वंचित जातियों और तबकों की आवाज को अनसुना कर दिया जाता है जिसके संबंध में दो तर्क हैं-पहला भारत में आज भी सामाजिक संसाधनों से वंचित जातियों और तबकों की संख्या कम नहीं है और दूसरा उन जातियों और तबकों के विकास के लिए उठाई गई आवाज को भारतीय जनतंत्र में गंभीरता पूर्वक नहीं लिया जाता है। यथार्थ यही है कि चुनाव के वक्त उन जातियों और वंचित तबकों से तमाम वादे तो किए जाते हैं, मगर चुनाव के बाद उनकी बातों को जनतंत्र सुनने के लिए तैयार नहीं होता। अर्थात वे जातियाँ चुनाव के वक्त राजनीतिक क्रिया तो करती हैं, किंतु सरकार बनने पर उनके विकास की प्रतिक्रिया नहीं होती है। कहीं न कहीं उनकी आवाज समाज के इर्द-गिर्द ही गूँजती है, किंतु जनतंत्र सरकार के कान तक पहुँचने से वंचित रह जाती है।

अतएव आवश्यकता इस बात की है कि जनतांत्रिक व्यवस्था में समाज की वंचित जातियों एवं तबकों तक सरकार के बीच सीधा प्रवाह हो, जो उनके विकास के लिए वरदान साबित होगा। पटना में हाल ही में आयोजित एक कार्यक्रम में सुप्रीम कोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश के. जी. बालाकृष्णन ने अपने संबोधन में भी स्पष्ट किया था कि दलितों और पिछड़ों को अपने हक के लिए एकजुट होना होगा।

(56)प्रश्न: इतनी सारी सुविधाओं के बावजूद लोगों का जीवन सरल होने की बजाय जटिल क्यों होता जा रहा है? क्यों लोग आभासी दुनिया में अकेलेपन की दवा ढूँढ रहे हैं?

उत्तर: भाई हेमंत जी, पिछले दिनों आपको भी एक खबर सोशल मीडिया या अखबार से जानकारी मिली होगी कि मुंबई में एक वृद्ध महिला का कंकाल अपने ही घर में पाए जाने की खबर से लोग सकते में आ गए, क्योंकि वह महिला अपने बड़े से फ्लैट में एकदम अकेली इसलिए रहती थी कि उसका पुत्र विदेश में रहता था। उस महिला के अकेलेपन को क्या हम-आप सामान्य अकेलापन कह सकते हैं? एक अरसे तक कंकाल बनने तक अकेले रहना क्या यह सामान्य घटना है? क्या अमीर घरानों या समाज में हुई यह असामान्य अवसान पूरे समाज की संवेदना पर कोई प्रश्न उठाती है? देखा जाए, तो देश भर में प्रतिदिन ऐसी कितनी ही घटनाएँ घट रही हैं, जिन्हें सुनकर हम आहत तो हो लेते हैं, पर उनके होने की वजह नहीं तलाशते और

न इतनी सारी सुविधाओं के बावजूद लोगों का जीवन सरल होने की बजाय जटिल होते जाने की वजह तलाशते हैं।

नि:संदेह हमारे समय का अकेलापन नकारात्मक है। यह एकांत जैसा आनंदमय नहीं है। इसमें भीतर तक टूट चुके मन की उदासियाँ हैं। हम अकेलेपन को रिश्ते में डुबो देना चाहते हैं, क्योंकि हम अकेले हैं, क्योंकि अकेला होना तकलीफ देता है। दरअसल, मनुष्य की सारी गतिविधियों को एक अकेले स्रोत में सिकोड़ा जा रहा है, क्योंकि स्रोत यह है कि वह अपने अकेलेपन से डरता है।

यह बात ठीक है कि हमारे समय का अकेलापन डराने वाला है, लेकिन क्या हमने अपने जीवन को इस अकेलेपन से बाहर निकालने की दिशा में कोई कदम बढ़ाया है? क्या विकास की हमारी मौजूदा सोच से हमारे अकेलेपन का, हमारे भीतर ही भीतर टूटते जाने का कोई नाता नहीं है? कंदराओं से चला मनुष्य आज अत्यधिक सुविधायुक्त घरों में रह रहा है, ऐसे में उसके भीतर का आनंद भी बढ़ना ही चाहिए था, पर इसकी बजाय वह भीतर ही भीतर टूटता नजर आ रहा है। आज बड़े-बड़े शहरों में पड़ोसी एक-दूसरे को जानते तक नहीं। ऐसी स्थिति में सोचने वाली बात अब यह है कि आर्थिक संपन्नता हमें अकेलेपन स्वार्थ और टूटन की ओर ढकेल रही है, जबकि अभाव के समय हम फिर भी मिल-जुल कर रह रहे थे। मगर आज लोग अपने करीबी लोगों से भी अनजान होते चले जा रहे हैं और ज्यादातर लोग तो अपने आप से भी दूर। जीवन की संपन्नता ने उन्हें किसी के घर जाने से रोक दिया-सा लगता है। एक-दूसरे के साथ धमा-चौकड़ी मचाने वाले बच्चों को हमने घरों में कैद कर दिया है। ऐसे में सामाजिक चेतना का प्रश्न ही कहाँ उठेगा उसके मन में? कहाँ से सीखेगा, वह दूसरों से जुड़ना? आजकल सामाजिक आयोजन पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गए हैं। पर अपनत्व और संवाद के अभाव ने इन सामाजिक आयोजनों की गर्माहट को कम कर दिया है। यही नहीं आज तो ऐसी स्थिति आ गई है कि लोग अपने जीवन से इतने भयभीत हो गए हैं कि किसी के सामने अपने मन की कोई बात कहने का साहस भी नहीं जुटा पाते? इसी सोच और इसी प्रवृत्ति की वजह से इंसानियत का रूप बदल गया है। जो लोग सुगंधित फूल हो सकते थे, वे कांटे बने घूमते हैं। जब इंसान के दिमाग में ऐसी हिसाब-किताब की बातें आ जाती हैं, तो उन्हें पहाड़ से कूदने की जरूरत नहीं, वे पहले ही आधे मरे हुए हैं। आखिर तो कुछ इन्हीं सब वजहों से लोग अकेलेपन की दवा ढूँढ़ रहे हैं।

मैं अपना उदाहरण आपके समक्ष पेश करता हूँ कि अकेलापन मैंने आजतक कभी महसूस नहीं किया, क्योंकि साहित्य-साधना मुझे कभी अकेलापन महसूस होने नहीं देती और दूसरी कि सामाजिक मानसिकता की होने के कारण दो-तीन जने तो मिलने और बातचीत करने अथवा अपनी समस्या के समाधान के लिए मेरे निवास पर प्रतिदिन अवश्य ही आ जाते हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो हमारे समक्ष अकेलापन की समस्या है ही नहीं मेरा ख्याल है कि इस अकेलेपन की समस्या को दूर करने के लिए लोगों को जीवन में अपनी अभिरुचि के अनुरूप एक मकसद बना लेना चाहिए, ताकि उस मकसद को पूरा करने में अपने को व्यस्त रख सके। और जब वे व्यस्त रहेंगे तो उन्हें आभासी दुनिया में अकेलेपन की दवा नहीं ढूँढ़ना पड़ेगा।

(57)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि किशोरों के बढ़ते अपराध केवल कानून से रुक पाएँगे? आखिर कैसे?

उत्तरः भाई सतीश जी, मुझे भी ऐसा लगता है कि किशोरों के बढ़ते अपराध केवल कानून से नहीं रुकेंगे, क्योंकि ये किसी मजबूरी में किए गए अपराध नहीं, बल्कि एक खास मनःस्थिति में किए गए अपराध हैं जिन्हें सिर्फ कानून से रोकना संभव नहीं। सच तो यह है कि सामाजिक और पारिवारिक स्तर पर बच्चों को अपराध की ओर बढ़ने से रोकने की हमारे पास कोई सोच ही नहीं है। हाल ही में बाल अपराध अधिनियम में किए गए बदलाव के तहत यदि कोई कम उम्र में बड़ों जैसा अपराध करेगा, तो उसे सजा भी बड़ों जैसी ही मिलेगी। मगर मुझे ऐसा लगता है कि कानून में बदलाव से अपराधियों को सजा देने में तो मदद मिल सकती है, पर अपराध रोकने में शायद ही मिले, क्योंकि कानून का डर अपराधियों के हौसलों को संभवतः कभी कम नहीं करता। आपने देखा नहीं निर्भया कांड के बाद दुष्कर्म कानून को तो बेहद कठोर बना दिया गया, पर उसके डर से दुष्कर्म नहीं रुके, बल्कि सच तो यह है कि ऐसे अपराधों की बाढ़ आ गई है।

भारत सरकार के गृह मंत्रालय से जारी किए गए आँकड़ों के मुताबिक किशोरों में बढ़ते अपराध बेहद चिंताजनक हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि हर चार घंटे में एक किशोर दुष्कर्म के अपराध में पकड़ा जा रहा है और यह प्रवृत्ति लगातार तीन सालों से जारी है। यही नहीं, हर छह घंटे में एक किशोर औरतों पर हमले के आरोप में भी पकड़ा जा रहा है।

रिपोर्ट है कि वर्ष 2016 में इस तरह के मामले काफी ज्यादा बढ़े हैं। 2016 में ही हत्या के अपराध में हर आठ घंटे में एक किशोर को पकड़ा

गया है। और यह सब ऐसे समय में हो रहा है जब इंटरनेट के जरिए पोर्न साइट तक सबकी पहुँच आसान हो चुकी है। ऐसे दौर में जब हर कोई चाहता है कि उसके बच्चे इंटरनेट में महारत हासिल करें, बच्चों को इसकी सुविधाएँ उपलब्ध कराई जा रही हैं। इसके अतिरिक्त अपने पास स्मार्ट फोन रखने वाले किशोरों की संख्या काफी तेजी से बढ़ी है, खासतौर पर शहरी क्षेत्रों में।

समाजशास्त्री की मान्यता है कि बच्चे और किशोर वही सीखते हैं, जो देखते हैं। समाज में अगर औरतें सिर्फ लोगों के मन बहलाने के लिए हैं और इसी तरह की छवियाँ तमाम तरह के माध्यमों के जरिए लगातार प्रस्तुत की जाती हैं तो बच्चे और किशोर भी यही सीखते हैं। रही–सही कसर तकनीक के बहुत पास चले आने से पूरी कर लेते हैं। ऐसी भयावह स्थिति में माता–पिता, अध्यापक और विद्यालयों में भी बच्चों और किशोरों को अच्छे–बुरे की पहचान करना सिखाएँ, लेकिन हर वक्त बच्चों की निगरानी भी तो संभव नहीं है और जितना आप बच्चों को रोकते हैं, बच्चे और किशोर वही ज्यादा करते हैं।

(58)प्रश्नः नौजवानों को रोजगार न मिल पाने की समस्या को जातिवादी नजरिए से देखना क्या ज्यादा घातक नहीं हो सकता है? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, नौजवानों को रोजगार न मिल पाने की समस्या को जातिवादी नजरिए से देखना कहीं ज्यादा घातक हो सकता है, क्योंकि सरकारी नौकरियाँ लगातार कम होती जा रही हैं और सरकार नौकरी सृजन करने में अबतक सफल नहीं हो पाई है जिसके परिणामस्वरूप बेरोजगारों के पास निजी क्षेत्र की नौकरियों में भी दलितों को आरक्षण देने की माँग उठ रही है।

वैसे भी एक आँकड़े के मुताबिक आँध्र प्रदेश में करीब 12 लाख बेरोजगार हैं जबकि तेलंगाना में यह संख्या इसकी दोगुनी है। यही नहीं आज की तिथि में पूरे देश में जब नौकरियों का पूरा परिदृश्य एक ही बड़े संकट की ओर है तब यह स्थिति दलितों, आदिवासियों और अन्य पिछड़े समुदायों के लिए ज्यादा तकलीफदेह हो सकती है, क्योंकि इससे दलितों व पिछड़ों की परेशानियाँ गहराती जाएँगी।

यह बात ठीक है कि मशहूर दलित लेखक और एक्टिविस्ट कांचा इलैया का लेखन विवादास्पद रहा है, लेकिन 2009 में उन्होंने जो कुछ लिखा है, उसे लेकर आज क्यों हंगामा हो रहा है और उन्हें हैदराबाद के उनके घर में नजरबंद कर दिया गया है, ताकि इलैया को अभिव्यक्ति की आजादी

विषय पर विजयवाड़ा में भाषण देने जाने से रोका जा सके। यही नहीं अपने लेखन से धार्मिक भावनाएँ आहत करने के लिए कांचा इलैया को जान से मारने की कई बार धमकियाँ मिल चुकी हैं। इलैया का विरोध कर रहे लोगों का नेतृत्व आर्य वैश्य-ब्राह्मण ऐक्य वेदिका यानी आर्य वैश्व और ब्राह्मण समुदायों की संयुक्त समिति कर रही है। इस समिति की माँग है कि इलैया की किताब पर प्रतिबंध लगे और वह माफी माँगे। एक नेता ने तो यहाँ तक धमकी दे डाली कि अगर इलैया ने अपना रास्ता नहीं बदला, तो उनकी जुबान काट दी जाएगी।

यह कहना सर्वथा उचित होगा कि मौजूदा राजनीतिक परिदृश्य में अतिवादी व विरोधी विचारों या दृष्टिकोणों को निशाना बनाना फौरन सबका ध्यान खींच लेता है। इलैया के लेखन और विश्लेषण को कुछ लोग अकादमिक की बजाय 'राजनीतिक प्रकृति' वाला अधिक बताते हैं। कांचा इलैया के लेखन की चर्चा हिंदुत्ववादी राजनीति के विरोध के रूप में आई है। उनके विचार विध्वंसक हैं ऐसा कहा जाता है, पर क्या ये दो विरोधी धुर नहीं हैं, जो एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं जिसका परिणाम घातक हो सकता है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि नौजवानों को रोजगार न मिल पाने की गंभीर समस्या को सरकार गंभीरता से विचार करते हुए इसका समाधान निकालने का प्रयास करे अन्यथा इसे जातिवादी नजरिए से देखना मेरे ख्याल से कही ज्यादा घातक हो सकता है।

(59) प्रश्नः मद्यपान को किसी भी धर्म ने उचित नहीं बताया है और न किसी शासन व्यवस्था ने औपचारिक रूप से इसकी अनियंत्रित छूट दी है। इसके बावजूद मदिरा हर दौर में क्यों बहती रही है?

उत्तरः शराब का आकर्षण और इसका प्रभाव अधिकतर लोगों के विवेक को विचलित करने की क्षमता रखता है इसीलिए मद्यपान को किसी भी धर्म ने उचित नहीं बताया है। दरअसल, कहा जाता है कि सरकार मद्यनिषेध इसलिए लागू नहीं कर पा रही है कि मद्यपान से जुड़े उद्योग-व्यवसाय सरकार को बहुत अधिक राजस्व आता है। हालांकि इस मुद्दे पर मोरारजी भाई देसाई का तर्क यह था कि मद्यपान से जुड़े उद्योग व्यवसाय सरकार को जो राजस्व देते हैं, उससे कहीं ज्यादा मदिराजन्य समस्याओं के समाधान पर खर्च करना पड़ता है। फिर ऐसे राजस्व से क्या फायदा, जो खजाने में टिकता ही नहीं।

वैश्विक बाजारीकरण के वर्तमान दौर में जब शराब की सामाजिक स्वीकृति तेजी से बढ़ रही है, तब नई पीढ़ी के बहकने का स्वाभाविक क्षोभ

भी माथे की लकीरें मोटी कर रहा है। बीमारी, गृह-कलह, मामूली बात को तूल देकर होने वाले झगड़े, चुनावी हिंसा, गरीब मतदाताओं का प्रलोभन, नौकरशाही में भ्रष्टाचार, महिलाओं और स्कूल-कॉलेज में जाने वाली लड़कियों से छेड़खानी जैसी अनेक समस्याओं के मूल में शराब पाई गई है। इस दृष्टिकोण से मद्यनिषेध जितनी जल्द लागू हो उतना बेहतर।

(60)प्रश्न: क्या केवल कड़े कानून और सख्त सजा के बूते अपराध पर नियंत्रण लगाना संभव है? यदि नहीं तो, अपराध नियंत्रण के लिए और कौन से उपाय किए जाने की जरूरत है?

उत्तर: नहीं, भाई मुरारी जी, केवल कड़े कानून और सख्त सजा के बूते अपराध पर नियंत्रण लगाना संभव नहीं है। हाल में राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की जो ताजा रिपोर्ट आई है उसके मुताबिक अपराध और समाज के ताने-बाने पर बड़े सवाल खड़े किए गए हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि 2015 के मुकाबले 2016 में भारत में होने वाले अपराध की दर ढाई फीसद से अधिक का इजाफा हुआ।

मेरा ख्याल है कि अपराध पर समाज के ताने-बाने को ठीक करने के लिए जन चेतना और सामाजिक चेतना भी जरूरी है। लेकिन चिंता का विषय यह है कि इस देश में जन चेतना और सामाजिक चेतना-इन दोनों कारकों को कभी प्राथमिकता में नहीं रखा गया और न अभी तक अपराध के खात्मे के लिए समाज की जवाबदेही तय की गयी है। अँग्रेजों के जमाने के कानून और पुलिस प्रणाली से अपराधमुक्त समाज की संकल्पना हम कर रहे हैं।

सच तो यह है कि पुलिस को अपनी कार्यशैली में जहाँ सकारात्मक और प्रभावी बदलाव करने की जरूरत है, वहीं कठोर और निर्भीक कदम से अपराध को नियंत्रित किए जाने की जरूरत है।

मुझे तो पुलिस विभाग में वरिष्ठ पदाधिकारियों के परिपक्व मार्गदर्शन का अभाव दिखाई पड़ता है। अभियोजन की त्रुटियों की वजह से बड़ी संख्या में अपराधी दोषमुक्त हो जाते हैं। यही नहीं थानों का नियमित निरीक्षण न होने के साथ-साथ दुराचारियों, हिस्ट्रीशीटरों और एक्टिविस्ट के अपराधियों पर निगरानी नहीं होने से उनका मनोबल बढ़ जाता है। इससे वे अपराध करने के लिए लगातार क्रियाशील रहते हैं। इसके अतिरिक्त संसाधनों के अभाव में आधुनिक तरीकों का समुचित इस्तेमाल नहीं हो पा रहा है। आज आवश्यकता इस बात की भी है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आदेशित पुलिस सुधारों को तत्काल लागू किए जाएँ।

सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि कानून व्यवस्था को कड़ा किया जाए। जो लोग सीधे तरीके से नहीं मानते उन्हें सुधारने के लिए टेढ़ा तरीका अपनाना ही पड़ता है। साथ ही राजनेताओं और राजनीतिक दलों के पुलिस पर दबाव खत्म किए जाएँ। राजनीतिक दबाव और दावपेंच, कम वेतन, नगण्य सुविधाएँ और पुराने हथियारों जैसी तमाम परेशानियों से जूझते हुए पुलिस अपना काम करती है। इसलिए पुलिस के हितों का अगर ख्याल रखा जाए तो वह बेहतर काम कर सकती है।

इनके अतिरिक्त आज के युवा वर्ग भूमंडलीकरण के बाद जो सबकुछ जीना और पा लेना चाहते हैं और जो उनका जीवन दर्शन सब कुछ भोग लेने का है उसमें बदलाव जरूरी है। यही नहीं उनके जीवन में एक बहुत बड़ा बदलाव एक जीवन पद्धति का भी है। व्यक्तिवादिता बढ़ने से भी अपराध में वृद्धि हुई है। नैतिक रूप से भी लोगों को सुदृढ़ बनाने की भी जरूरत है, बल्कि सच तो यह है कि नैतिक शिक्षा को निम्न शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए।

(61)प्रश्न: किशोरावस्था में क्यों बढ़ रहे हैं आत्महत्या के मामले?

उत्तर: मुझे लगता है किशोरावस्था में आत्महत्या के मामले बढ़ने की और जो वजहें हों, मगर मोबाइल, इंटरनेट, सहजीवन शैली, पढ़ाई और काम का दबाव की वजह से भी अधिकतर युवा आत्महत्या कर रहे हैं। नेशनल क्राइम ब्यूरो के आँकड़े के अनुसार देश में आत्महत्या का ग्राफ बढ़ा है। पिछले सालों में इसमें तेजी आई है। 15 से 29 साल के युवा अधिक आत्महत्या कर रहे हैं। 2010 में रिकॉर्ड के मुताबिक जहाँ 27 हजार लोगों ने आत्महत्या की थी, वहीं 2015 में यह आकड़ा बढ़कर 51 हजार हो गया।

आजकल किशोर और बच्चों ने मैदान में खेलना छोड़ दिया है। वे एकाकी जीवन जी रहे हैं। इस वजह से भी अवसाद से ग्रसित होते जा रहे हैं युवा। माता-पिता और अभिभावक भी अक्सर अपने बच्चों से उम्मीद से अधिक प्रदर्शन करने का दबाव देते हैं। अगर बच्चे की क्षमता 60 प्रतिशत तक सबसे अच्छा करने की है, तो उसे 70 प्रतिशत सबसे अच्छा करने को कहा जा सकता है, लेकिन ऐसा नहीं होने पर उसे सीधा 98 प्रतिशत सबसे अच्छा करने को कहेंगे तो इस वजह से बच्चे की अपनी वास्तविक क्षमता भी घट जाएगी और वह अवसाद में जाने के लिए बाध्य होगा।

मोबाइल और इंटरनेट की वजह से भी बच्चे कई बीमारियों की चपेट में आ रहे हैं और आभासी पहचान पाने की कोशिश में युवा फँस रहे हैं।

इंटरनेट पर ब्लू व्हेल गेम जैसे खेल खेलने वाले बच्चे भी इन दिनों तेजी से आत्महत्या करते देखे जा रहे हैं।

(62)प्रश्न: क्या सामाजिक सौहार्द से हमारी साझा संस्कृति बची रहेगी? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, सामाजिक सौहार्द से हमारी साझा संस्कृति बची रहेगी, क्योंकि दुनिया में भारत ही ऐसी जगह है जहाँ सभी जाति-धर्म के लोग शांति और सुकून से रह पाते हैं। चंद मुट्ठी भर लोगों के कारण समाज में यदा-कदा परिस्थितियाँ प्रतिकूल भले ही हो जाती हैं, पर ऐसी परिस्थिति में हम सभी को एक जुट रहना चाहिए। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी हम प्रबुद्धजनों एवं सजग नागरिकों का दायित्व है कि केवल मुकदर्शक नहीं बने रहें, बल्कि युवा पीढ़ी को सही राह दिखाने के लिए तैयार और तत्पर रहें। हमसबों की कोशिश रहे कि सामाजिक सद्भाव बना रहे और समरसता किसी भी हाल में नहीं टूटे। इसके लिए संवाद जरूरी है, क्योंकि संवादहीनता की वजह से प्रतिकूल परिस्थितियाँ बन जाती हैं। हमें आपस में मेलजोल बढ़ाना होगा और अफवाहों से बचना होगा। ऐसा करने पर ही हमारी साझा संस्कृति बची रहेगी।

मुझे लगता है कि विभिन्न धर्म-समुदाय के लोगों के बीच संवादहीनता के कारण कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ बन जाती हैं कि हम एक-दूसरे को संदेह की नजर से देखने लगते हैं तथा समाज की ओर से अपनी महती भूमिका के निर्वह्ण में कोताही हो जाने से चंद मुट्ठी भर लोग सामाजिक सौहार्द बिगाड़ने की कोशिश करते हैं। ऐसे लोगों की तादाद बहुत कम है। अधिकतर लोग अमन पसंद हैं।

(63)प्रश्न: क्या आपको आज ऐसा नहीं लगता कि संसार भर के देश और समाज विकास की एक प्रणाली के हिस्से बनते जा रहे हैं? ऐसा क्यों?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि संसार भर के देश और समाज विकास की एक प्रणाली के हिस्से बनते जा रहे हैं और वह प्रणाली है पूँजीवादी तरीके से उत्पादन और वितरण की प्रणाली। उदाहरण के तौर पर मैं बताऊँ कि जब नदी अपने उद्गम निकलती है तो उसमें अनेक धाराएँ मिलकर उसे बड़ा बनाती जाती हैं और एक ऐसी स्थिति आ जाती है कि उद्गम पर छोटा-सा स्रोत रही वह नदी विराट हो जाती है। उसे बहने के लिए बहुत चौटे पाट और दूर तक का धरातल होना चाहिए।

आज संपूर्ण विश्व-समाज विकास के जिस मोड़ पर पहुँच गया है,

वहाँ सारी दुनिया इस विकास की अर्थव्यवस्था से संबद्ध है। यही नहीं दुनिया की आबादी तेजी से बढ़ गई है। इस बढ़ती हुई आबादी की हर तरह के उपभोग की क्षमता असीम हो गई है। यानी पृथ्वी पर साधन सीमित है और विकास की दो सौ साल पहले तक की छोटी नदी अब विराट नदी में बदल चुकी है। इस सदी में दुनिया फिर से विस्फोट के मुहाने पर खड़ी है और किसी भी कीमत को चुकाकर एक बार फट पड़ने के बाद ज्वालामुखी को नियंत्रित नहीं किया जा सकेगा। इसलिए जरूरत इस बात की है कि मानव-समाज की चेतना और विचारधारा का रूपांतरण किया जाए। इसके अतिरिक्त मेरी समझ से और कोई वैकल्पिक राह नहीं दिखती है।

(64)प्रश्नः क्या दुष्कर्मी के बच्चे को जन्म देने के लिए पीड़िता को बाध्य किया जा सकता है? नहीं, तो क्यों?

उत्तरः नहीं, भाई अमरेन्द्र जी, दुष्कर्मी के बच्चे को जन्म देने के लिए पीड़िता को बाध्य नहीं किया जा सकता, क्योंकि दुराचार से गर्भवती होकर हर दिन की वेदना और प्रताड़ना का पीडिता के मानसिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। हाल ही में मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने विगत 7 दिसंबर, 2017 को न्यायाधीश सुजॉय पॉल की एकल पीठ ने 20 सप्ताह की गर्भवती दुराचार की शिकार एक नाबालिग पीड़िता को एबोर्शन कराने की सर्शत इजाजत दे दी यह कहते हुए कि किसी भी दुष्कर्म पीड़िता को दुष्कर्मी के बच्चे को जन्म देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। अदालत ने यह भी कहा कि दुराचार से गर्भवती होकर हर दिन की वेदना और प्रताड़ना का पीड़िता के मानसिक स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। पीड़िता की वेदना का असर बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है।

मामले की गंभीरता को देखते हुए मध्यप्रदेश के उच्च न्यायालय ने शिवराज सरकार को निर्देश दिए कि 24 घंटे के भीतर तीन विशेषज्ञ डॉक्टरों की एबॉर्शन कमेटी गठित करे और पीड़िता की जाँच कराए। कोर्ट ने यह भी कहा कि 'द मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेगनेंसी एक्ट, 1971 की धारा 3 के तहत यदि कमेटी के दो डॉक्टरों की राय मिलती है तो तुरंत गर्भपात की प्रक्रिया पूरी करें। पीड़िता के गर्भपात और उसके बाद के इलाज का सारा खर्च सरकार वहन करेगी।

दरअसल, मामला ये है कि खंडवा के निवासी एक किसान ने म.प्र. उच्च न्यायालय में याचिका दायर कर ज्यादती के बाद गर्भवती हुई अपनी नाबालिग बेटी का गर्भपात कराने की गुहार लगाई थी। उसने 15 अक्टूबर,

2017 को पुलिस थाने में रिपोर्ट दर्ज कराई कि कुछ दिन पहले उसकी नाबालिग लड़की को कोई अनजान व्यक्ति बहला-फुसलाकर ले गया था और उसके साथ दुराचार किया। इसके बाद पुलिस ने 31 अक्टूबर, 2017 को आरोपी को गिरफ्तार किया।

(65)प्रश्नः जिस समाज को शिक्षा के आसरे अपने पैरों पर खड़े होना है उसके बच्चे देश का भविष्य न होकर क्या वर्तमान में कमाई का जरिया नहीं होते जा रहे हैं? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, अमरेन्द्र जी, जिस समाज को शिक्षा के आसरे अपने पैरों पर खड़े होना है उसके बच्चे देश का भविष्य न होकर वर्तमान में कमाई का जरिया होते जा रहे हैं, क्योंकि 'स्कूल चले हम सर्व शिक्षा अभियान के तहत' 99 प्रतिशत बच्चे का नामांकन विद्यालय में हो तो गया और 27 हजार करोड़ का बजट बनाया गया, मगर सरकारी सच यही है कि दशवीं तक पढ़ते-पढ़ते देश के 47.4 प्रतिशत बच्चे पढ़ाई छोड़ देते हैं जिनमें 19.8 प्रतिशत पाँचवी तक, तो 36.8 प्रतिशत आठवीं तक पढ़ाई पूरी नहीं कर पाते।

दूसरी बात यह है कि बच्चों की पढ़ाई के लिए बिना इन्फ्रास्ट्रक्चर सरकारी स्कूलों में 11 करोड़ बच्चे जाते हैं और मोटी फीस देकर 7 करोड़ बच्चे निजी स्कूल जाते हैं। सरकार का शिक्षा बजट 46356 करोड़ रुपए है और निजी स्कूलों का बजट 8 करोड़ का है यानी जिस समाज को शिक्षा के आसरे अपने पैरों पर खड़ा होना है, उसके भीतर का सच यही है कि बच्चे देश का भविष्य नहीं होते, बल्कि वर्तमान में कमाई का जरिया होते जा रहे हैं। और मुनाफे में भागते-दौड़ते देश में बच्चे कैसे या तो पीछे छूट जाते हैं या फिर बच्चों को पढ़ाने के लिए माँ-बाप बच्चों से देश ही छुड़वा देते हैं। देश के 5 लाख 53 हजार बच्चे वर्ष 2017 में देश छोड़कर विदेशों में पढ़ने चले गए और उनके माँ-बाप उन बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के लिए 1 लाख 20 हजार करोड़ सिर्फ फीस देते हैं।

चाहे या अनचाहे समूचा समाज ही मुनाफा पाने और कमाने की होड़ में है तो फिर जो बच्चे देश छोड़कर विदेश जा रहे हैं, वह भारत लौटेंगे क्यों? आज की तारीख में 17835,519 भारतीय दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में हैं। 1,30,08,407 एनआरआई हैं यानी कुल 3 करोड़ से ज्यादा भारतीय देश छोड़ चुके हैं। तो फिर कौन सा देश हम तैयार कर रहे हैं?

(66)प्रश्न: विदेश सेवा के पूर्व अधिकारी और पूर्व केंद्रीय मंत्री के साथ-साथ एक लेखक की पहचान रखने वाले काँग्रेस के वरिष्ठ नेता मणिशंकर अय्यर जैसे पढ़े-लिखे लोग मर्यादा लांघकर समाज को आखिर क्या संदेश दिना चाहते हैं?

उत्तर: पिछले दिनों विदेश सेवा के पूर्व अधिकारी और पूर्व केंद्रीय मंत्री के साथ-साथ एक लेखक की पहचान रखने वाले काँग्रेस के वरिष्ठ नेता मणिशंकर अय्यर ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के प्रति जैसी अभद्र और निम्न कोटि की भाषा का इस्तेमाल किया उससे यही स्पष्ट हुआ कि अपने आगे वे किसी को कुछ समझते नहीं। दरअसल, भारतीय राजनीति और सामंतवादी समाज में अभी भी सामंती मानसिकता का बोलबाला है और भाषा की गरिमा के लिए कहीं कोई स्थान नहीं बचा है। मणिशंकर अय्यर ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के लिए जिस 'नीच' शब्द का प्रयोग किया उससे आखिर गरिमा से हीन समाज और राजनीति तथा देश को सही दिशा कैसे दे सकती है? ऐसी राजनीति तो समाज में कटूता और कलह ही पैदा करेगी। मणिशंकर अय्यर गोल-मोल शब्दों में खेद जताकर और माइक झटककर चलते बने थे। चुनावी कारणों से ही सही राहुल गाँधी ने मणिशंकर अय्यर के खिलाफ कार्रवाई करके एक सही संदेश देने का प्रयास किया है। फूहड़ भाषा का इस्तेमाल करने वालों के साथ वैसा ही होना चाहिए जैसा मणिशंकर अय्यर के साथ हुआ।

(67)प्रश्न: अगर पत्थर पर लगातार रस्सी की रगड़ से निशान उभर आते हैं, तो अकूत संभावनाओं से भरी इस दुनिया में क्या नहीं हो सकता, जहाँ सभी के लिए पर्याप्त अवसर और पर्याप्त रास्तें हैं?

उत्तर: प्रतिकूल परिस्थितियों से निकल कर सफलता तक जाने वाली हर यात्रा अनोखी और अद्वितीय होती है। इतिहास साक्षी है कि मनुष्य के संकल्प के सम्मुख देव, दानव सभी पराजित होते हैं। अक्सर जीवन में हम भंवर में फँस जाते हैं। ऐसा लगता है कि सारे दरवाजे बंद होते जा रहे हैं, जबकि वास्तव में ऐसा होता नहीं हैं। समाज के कुछ लोग इन्हीं स्थितियों में मजबूत होते हैं और खराब समाज को ही अपने जीवन को स्वर्णिम ढंग से रूपांतरित करने वाला समय बना देते हैं। जो विपरीत हालत में धैर्य और खुदी को बुलंद रखता है, उसके रास्ते से बाधाएँ हटती ही हैं, बेशक भले ही देर लग जाए। समाज के ऐसे लोगों को प्रेरणा उसे तब मिलती है जब वह पत्थर पर लगातार रस्सी की रगड़ से निशान उभर आते हैं। वैसे समाज के लोगों के लिए अकूत

संभावनाओं से भरी इस दुनिया में क्या नहीं हो सकता, जहाँ सभी के लिए पर्याप्त अवसर और पर्याप्त रास्ते हैं।

शेक्सपीयर कहते थे कि हमारा शरीर एक बगीचे की तरह है और दृढ़ इच्छाशक्ति इसके लिए माली का काम करती है, जो इस बगिया को बहुत सुंदर और महकती हुई बना सकती है। एक विद्वान ने इसी प्रकार कहा कि किसी भी तरह की मानसिक बाधा की स्थिति खतरनाक होती है। खुद को स्वतंत्र करिए। बाधाओं के पत्थरों को अपनी सफलता के किले की दीवारों में लगाने का काम करिए। इसी को दृष्टिकोण में रखते हुए समाज के लोगों को अच्छे हृदय और संकल्प से काम करना चाहिए। अच्छे काम के लिए धन की कम आवश्यकता पड़ती है इसलिए जीवन में बाधाओं से घबराएँ नहीं, बल्कि उनका डटकर मुकाबला करें तभी सफलता भी मिलेगी और समाज भी स्वस्थ होगा।

(68)प्रश्नः आज समाज मानव-विरोधी ताकतें ज्यादा सक्रिय हैं। इन ताकतों के प्रति तटस्थ उदासीन लोग भी बहुत हैं। ये मानव-विरोधी शक्तियाँ जो माहौल निर्मित कर रही हैं, क्या वह उत्कृष्ट साहित्य के निर्माण के लिए अनुकूल जमीन निर्मित करता है?

उत्तरः ऐसा नहीं है कि समाज में मानव-विरोधी शक्तियाँ आज ही दिख रही हैं। ये कल भी थीं और आगे भी रहेंगी। हाँ, इतना जरूर है कि विगत दो-ढाई दशकों से ये मजबूत स्थिति में आ गई हैं।

दरअसल, वर्तमान दौर में सत्ता का जो स्वरूप है, वह मनुष्यता विरोधी है जिसकी वजह से यह सृजनात्मकता का भी विरोधी है। आखिर तभी तो प्रायः सभी राजनीतिक दलों के चाहे मणिशंकर अय्यर जैसे वरिष्ठ नेता हों या तेजप्रताप सरीखे युवा नेता अथवा नित्यानंद राय, उनके मुँह से अनर्गल और मानव-विरोधी बातें अक्सरहां निकल रही हैं। यह आने वाली पीढ़ियों के लिए घातक तो हैं ही, अन्याय भी हैं। कुछ इन्हीं सब कारणों से सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार, पुरुष वर्चस्व, वर्णवाद आदि समाज में कुछ ऐसी ताकतें पनप रही हैं जिसका विरोध आमजन में भी अब होने लगा है।

जहाँ तक ऐसे माहौल में उत्कृष्ट साहित्य के निर्माण के लिए जमीन निर्मित करने का सवाल है, दुनिया का सर्वश्रेष्ठ साहित्य तो कठिन संघर्षों के दौर में ही लिखा गया है। मेरा ख्याल है कि मानवविरोधी शक्तियाँ समाज में जितनी अधिक सक्रिय होंगी, मानवरक्षा का समर्थक स्वर उतना ही सशक्त होगा। आखिर तभी तो वर्तमान दौर की कथाओं में मानव-विरोधी स्वर

कथाकारों की कलम से निकल रहे हैं। हिंदी साहित्य तो एक लंबे अरसे से मानव-विरोधी ताकतों की इस वास्तविकता को रेखांकित करने में लगा है।

दरअसल, समाज का नेतृत्व आज उनके हाथ में आता जा रहा है जो मानव विरोधी है। चाहे धर्म हो या राजनीति, संस्कृति हो या सामाजिक कार्यकलाप, यहाँ तक कि प्रतिरोधात्मक आंदोलनों में भी ऐसी मानव-विरोधी ताकतों ने अपनी घुसपैठ बना ली हैं जो अंदर से चीजों को ध्वस्त करने पर तुली हैं और जिसकी वजह से आज दूध का दूध और पानी का पानी जैसी स्थितियाँ विलुप्त होती जा रही हैं, क्योंकि अनुशासनहीनता जीवन के प्रायः हर क्षेत्र में दिखाई पड़ रही है।

(69)प्रश्न: क्या विश्व बैंक और विश्व स्वास्थ्य संगठन की यह रिपोर्ट नीति-नियंताओं की आँख खोलने वाली नहीं है कि बीमारी की हालत में भारत की एक बड़ी आबादी अपनी जेब से इलाज खर्च वहन करने को विवश होती है? ऐसा क्यों?

उत्तर: हाँ, शिवबालक जी, विश्व बैंक और विश्व स्वास्थ्य संगठन की यह रिपोर्ट नीति-नियंताओं की आँख खोलने वाली है कि बीमारी की हालत में भारत की एक बड़ी आबादी अपनी जेब से इलाज खर्च वहन करने को विवश होती है, क्योंकि लोगों को बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना शासन में बैठे लोगों का बुनियादी दायित्व है। दुर्भाग्य से भारत की गिनती उन देशों में होती है जहाँ सरकारी स्वास्थ्य ढाँचा दयनीय दशा में हैं और निजी क्षेत्र के स्वास्थ्य ढाँचे का खर्च आम लोगों के बूते से बाहर है। इसी कारण संयुक्त राष्ट्र का मानव विकास सूचकांक यह दर्शाता है कि स्वास्थ्य सेवाओं के मामले में भारत का स्थान कई अफ्रीकी देशों से भी पीछे है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि आजादी के बाद जिस स्वास्थ्य ढाँचे का निर्माण किया गया वह अब और अधिक अपर्याप्त नजर आने लगा है। बीते चार दशकों में मेडिकल साइंस ने बहुत तरक्की की है। नई तकनीक, अधिक असरकारी दवाओं और आधुनिक उपकरणों के चलते चिकित्सक उन अनेक बीमारियों पर काबू पाने में समर्थ हैं जो कुछ समय पहले लाइलाज मानी जाती थीं। इन बीमारियों का उपचार इसलिए आसान हुआ है, क्योंकि रोगों की सही पहचान के लिए तमाम मशीनें इस्तेमाल होने लगी हैं। इसी के साथ नई-नई दवाओं की खोज के चलते यह माना जाने लगा है कि चिकित्सा जगत एड्स सरीखे रोगों का भी निदान खोजने में समर्थ होगा। विडंबना यह है कि जैसे-जैसे बीमारियों के निदान में उपकरणों और प्रभावी दवाओं की भूमिका

बढ़ रही है वैसे-वैसे इलाज महंगा होता जा रहा है। अभी-अभी कुछ दिनों पूर्व हमारे एक मित्र ने बताया कि कैंसर रोग के इलाज के लिए दी जाने वाली एक सुई की कीमत 20 हजार रुपए आती है।

हर कोई अपना अपने परिजनों का बेहतर इलाज कराना चाहता है, लेकिन जहाँ सरकारी अस्पतालों की अव्यवस्था और उचित इलाज के अभाव की शिकायतें उन्हें हतोत्साहित करती हैं, वहीं निजी अस्पतालों का महंगा इलाज उन्हें डराता है। कई निजी अस्पतालों का इलाज तो इतना महंगा है कि वहाँ चंद दिनों का उपचार लोगों की कमर तोड़ देता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि चिकित्सक बेहतर इलाज के जरिए मरीज को बचा लेने की उम्मीद जताते हैं। इस उम्मीद में लोग अपने परिजन को बचाने के लिए कुछ भी करने और यहाँ तक कि जेबर-जमीन बेचने को विवश हो जाते हैं।

(70)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि आरक्षण के नाम पर समाज को बाँटने और मूल समस्याओं से उनका ध्यान हटाने का सिलसिला बंद होना चाहिए?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि आरक्षण के नाम पर समाज को बाँटने और मूल समस्याओं से उनका ध्यान हटाने का सिलसिला बंद होना चाहिए और यह बंद तभी होगा, जब जनता यह संदेश दे कि उन्हें आरक्षण नहीं, विकास चाहिए। अगर आरक्षण जैसे मुद्दे को इसी तरह हवा दी जाती रही तो इससे किसी का भला नहीं होगा, क्योंकि आरक्षण का जो स्वरूप आज दिख रहा है, वह इसकी मूल भावना से कोसों दूर है।

सच कहूँ, तो आरक्षण की मूल भावना कमजोर नहीं है, क्योंकि संविधान में आर्थिक और शैक्षिक रूप से जो पिछड़ें हैं उन्हीं को आरक्षण देने का प्रावधान है, मगर आज वह हो नहीं रहा है। जो आर्थिक रूप से सबल हैं या आरक्षण देने के बाद सबल हो चुके हैं उन्हीं के बाल-बच्चों को आरक्षण दिया जा रहा है और वास्तव में जो आर्थिक या शैक्षिक रूप से कमजोर हैं वे आरक्षण के लाभ से वंचित रह रहे हैं। आपने देखा नहीं हरियाणा के जाट हों या गुजरात के पाटीदार अथवा महाराष्ट्र के मराठा इन सभी राज्यों में जाट, पाटीदार और मराठा आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से सबल हैं फिर भी आरक्षण के लिए रैलियाँ तथा प्रदर्शन लगातार कर रहे हैं, लेकिन उसका नतीजा अभी तक नहीं निकला है। न तो रैली बंद हुई है और न ही कोई रास्ता निकाला गया। असल में आरक्षण की आग ऐसी आग है, जिसे राजनीतिक पार्टियाँ अपने हित में हमेशा हवा देने का काम करते हैं और लोगों

की भावनाओं को भड़काकर अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेकते हैं। लेकिन भावनाओं के साथ खिलवाड़ करने वालों की राजनीति अब ज्यादा देर नहीं ठहर सकती। आरक्षण को लेकर राजनीति बंद होनी चाहिए और इसे लेकर सरकार कों स्पष्ट कानून बनाने चाहिए। यही नहीं जिन लोगों को अभी तक आरक्षण का लाभ दिया गया है उसकी समय-समय पर समीक्षा भी होनी चाहिए, ताकि आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े लोगों को ही आरक्षण का लाभ मिल सके। आज के परिप्रेक्ष्य में आरक्षण की जरूरत और लाभान्वित होने वाले लोगों को स्पष्ट पारिभाषित करना अब सरकार के लिए जरूरी है, ताकि आरक्षण के नाम पर जनता की भावनाओं को आसानी से भड़काने का काम न किया जा सके।

(71)प्रश्न: स्त्री विमर्श के बारे में आपकी क्या राय है, स्त्री-मुक्ति क्या अभी भी स्वप्न है?

उत्तर: मेरे ख्याल से स्त्री विमर्श एक मुहावरा है। उसके विषय के साथ सबका अपना-अपना नजरिया है और उसी के साथ मेरा भी अपना नज़रिया है कि स्त्री-मुक्ति अब स्वप्न नहीं है, बल्कि हकीकत है। उसे स्त्री ने अपने साहसिक कदमों से हासिल किया है। पहले स्त्रियाँ घर की चारदीवारी में बंद थीं, सात परदों और लक्ष्मण रेखाओं में आबद्ध थीं, परंतु अब स्त्रियाँ न केवल उस कारागार से, बल्कि 'रोमांटिक इमेज' से बाहर आ गई हैं। नई पीढ़ी मुक्तकामी और संघर्षरत है। लड़कियाँ बड़ी-बड़ी मल्टीनेशनल कंपनियों में ऊँचे पदों पर आसीन हैं। यह बदलाव शिक्षा और वैश्वीकरण से आया है। हाँ, भारत जैसे विकासशील देशों में जहाँ शिक्षा अभी भी गाँव-देहातों में नहीं पहुँच पाई है, वहाँ की स्त्रियाँ अभी भी घर की देखभाल, पति-सेवा के साथ-साथ घर के हर सदस्य का ध्यान रखने का ही काम कर रही हैं। घर और उसके सब तरह के हितों के लिए अपना सब कुछ समर्पित कर देना और बदले में कोई प्रतिदान न चाहना ही है। स्त्री चाहे गृहिणी हो या कामकाजी, प्राथमिक तौर पर उसका दायित्व यही है।

कहीं-कहीं ऐसा भी देखा जाता है कि कामकाजी स्त्रियाँ दुतरफा दायित्व का निर्वाह की चक्की तले पिसती हैं। वे हमेशा इधर और आधी उधर बंटी रहती हैं। वे भौतिक और आधिभौतिक दोनों ही स्तरों पर इस कदर व्यस्त रहती हैं कि राजनीति, समाज, अर्थशास्त्र आदि विषय उन्हें गैरजरूरी लगते हैं। वे स्त्रियाँ दूसरी होती हैं, जो समय के साथ हर समय एकदम आधुनिक होती हैं और देश में आए दिन चलने वाली बौद्धिक बहसों,

प्रतिरोधी कार्यक्रमों, सत्ता में हस्तक्षेपकारी गतिविधियों में संलग्न रहती हैं।

(72)प्रश्न: क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि आजकल राजनीतिक दलों में स्वार्थ और दलहित की वजह से कुछ ऐसी बयानबाज़ी और कार्यक्रम आयोजित हो रहे हैं जिससे देश के सामाजिक वातावरण में भ्रम पैदा हो रहा है?

उत्तर: हाँ, मैं भी ऐसा महसूस कर रहा हूँ कि आजकल राजनीतिक दलों में स्वार्थ और दलहित की वजह से कुछ ऐसी बयानबाजी और कार्यक्रम आयोजित हो रहे हैं जिससे देश के सामाजिक वातावरण में भ्रम पैदा हो रहा है। आपने देखा नहीं पिछले दिनों 2017 के अंत में गुजरात विधानसभा चुनाव के पूर्व जिस महात्मा गाँधी ने मजहबी उन्माद और जातीय जोड़-तोड़ का हमेशा विरोध किया और जिस धरती के लाल लौह-पुरुष सरदार पटेल ने आधुनिक भारत में चाणक्य की भूमिका का निर्वह्ण किया उनकी धरती पर मजहब के साथ जातीय जोड़-तोड़ की राजनीति हुई, वह दुर्भाग्यपूर्ण और चिंताजनक है।

मुझे तो 132 साल पुरानी राष्ट्रीय स्तर की काँग्रेस पार्टी पर तरस आता है जो अब भी अल्पसंख्यकों को वोट बैंक बनाकर और बहुसंख्यकों में जातीय उन्माद पैदाकर केंद्र की सत्ता हथियाना चाहती है। निश्चित रूप से काँग्रेस पार्टी का यह प्रयोग गाँधी और पटेल की धरती से प्रारंभ करने का षड्यंत्र हैं। जिनकी माँ ने उँगलियाँ पकड़कर कभी मंदिरों में नहीं ले गई, उन्होंने एकाएक मंदिरवादी बन सभी मंदिरों में जाकर पूजा-अर्चना का ढोंग रचने का प्रयास किया। ये वही लोग हैं जो अयोध्या में रामलला के मंदिर को हमेशा होने वाले चुनावों तक सुप्रीम कोर्ट में लंबित रखना चाहते हैं। ये वही लोग हैं जिन्हें भारत की बर्बादी और कश्मीर की आजादी के नारों में लोकतंत्र नजर आता है। ऐसे ही लोग सेना पर अनेक सवालिया निशान लगाते हैं। रोज-रोज की घटनाएँ आखिर क्या दर्शा रही हैं? चाहे कोई भी दल से ऐसे लोग संबंधित हों, यदि वह स्वार्थ हेतु देश व समाज के सद्भाव को बिगाड़ने की कोशिश करता है, तो उसका हर हाल में बहिष्कार और साथ न देने की शपथ लेनी होगी, ताकि लोकतांत्रिक मूल्यों पर किसी तरह की ठेस न पहुँच सके।

दरअसल, वंशवादी राजनीति ने न केवल देश का जबर्दस्त नुकसान किया है, बल्कि सामाजिक वातावरण को भी दूषित किया है। देश के तमाम राजनीतिक दल इस रोग के शिकार हैं। इसलिए आमजन और मतदाताओं का ध्यान इस ओर जाना चाहिए।

(73)प्रश्न: क्या आप ऐसा महसूस करते हैं कि बदलते समाज में मौजूदा कानून अप्रासंगिक होते जा रहे हैं? कैसे?

उत्तर: हाँ, मैं महसूस करता हूँ बदलते समाज में मौजूदा कानून अप्रासंगिक होते जा रहे हैं, क्योंकि आज के संदर्भ में सबसे बड़ी बात तो यह है कि अदालत मान रही है कि समाज की तस्वीर बदल रही है। आखिर तभी तो सह जीवन शैली (लिव-इन-रिलेशनशिप) को भी मान्यता मिल रही है और इसके तहत रह रही महिलाएँ बिना शादी के भी अपने अधिकार माँगने के लिए खड़ी हो रही है। बीते साल सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक निर्णय के तहत सहजीवन शैली में कटूता आने पर एक पार्टनर और उसके बच्चों को भरण-पोषण का अधिकार दिया था। जाहिर है अदालतें कानून नहीं बनातीं, बल्कि केवल उनकी व्याख्या करती हैं।

महिलाओं के प्रगतिशील स्वरूप के अनुरूप ही घरेलू हिंसारोधी कानून बना। महिलाओं ने ही विवाह न करके सहजीवन शैली को स्वीकारा। हालांकि अदालत ने ऐसी महिलाओं को पत्नी का दर्जा न देकर पति-पत्नी की तरह के रिश्ते को अवश्य माना।

हाल ही में देश की सर्वोच्च अदालत के समक्ष प्रस्तुत एक याचिकाकर्ता ने भारतीय दंडसंहिता की धारा 497 को हटा देने की माँग की, मगर सर्वोच्च न्यायालय ने याचिका की सुनवाई करते हुए कहा कि अब समय आ गया है कि समाज इस बात को स्वीकार करे कि महिला को पुरुष के समान दर्जा मिल चुका है। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 198(1) और (2) के अनुसार केवल पुरुष के विरूद्ध ही व्यभिचार जैसे अपराध के लिए शिकायत की जा सकती है, महिला के विरूद्ध नहीं, क्योंकि उसे केवल शोषित-पीड़ित ही माना जा सकता है। दूसरी स्त्री के प्रति आकर्षित होकर जब कोई-पति अपनी पत्नी का परित्याग कर देता है तो पत्नी उस दूसरी स्त्री की कोई शिकायत नहीं कर सकती, क्योंकि हमारे कानून के अनुसार इस मामले में स्त्री पीड़िता मानी जाती है, दोषी नहीं। पत्नी की बेवफाई की शिकायत पति भी नहीं कर सकता, क्योंकि यहाँ भी स्त्री पीड़िता मानी जाती है। व्यभिचार का शिकार भी वही होती है और शोषिता भी वही मानी जाती है और वही पुरुष के विरूद्ध शिकायत भी कर सकती है।

कुल मिलाकर देखा जाए तो हम अपने पुराने और अनावश्यक हो चुके कानूनों से मुक्ति पा लेनी चाहिए। सुप्रीम कोर्ट ने पहल की है कि हम

अपनी सोच बदलें। यह जिम्मेदारी केवल अदालतों की नहीं है, पूरी सामाजिक व्यवस्था की है। तीन तलाक के बहुचर्चित प्रसंग के बाद यह बहुत संगत है कि हम अपनी उन प्रथाओं पर भी एक नजर डालें जो कालांतर में कानून बन गईं।

(74)प्रश्न: क्या इससे बड़ी विडंबना और कोई हो सकती है कि किसी समाज का अपना ही धार्मिक और राजनीतिक नेतृत्व अपने लोगों को कुरीतियों से जकड़े रखने का काम करे? ऐसा क्यों?

उत्तर: हाँ, इससे बड़ी विडंबना ओर कोई नहीं हो सकती है कि किसी समाज का अपना ही धार्मिक और राजनीतिक नेतृत्व अपने लोगों को कुरीतियों से जकड़े रखने का काम करे। तीन तलाक की इस मनमानी प्रथा को लेकर तो ऐसा ही हुआ कि एक ओर जहाँ मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड सरीखे संगठन, तो वहीं दूसरी ओर असदुद्दीन ओवेसी जैसे मुस्लिम नेता शरीयत का गलत हवाला देकर अपने ही समाज को गुमराह करने में लगे हुए हैं।

सुप्रीम कोर्ट की ओर से एक झटके में दिए जाने वाले तीन तलाक को अमान्य असंवैधानिक करार दिए जाने के बाद भी इस तरह के मनमाने तलाक के तकरीबन सौ मामले सामने आने के बाद उस पर कानून बनाना आवश्यक हो गया था। सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद भी तीन तलाक के मामले समाने आने से ही यही प्रकट हो रहा था कि तलाक की इन मनमानी प्रथा ने बहुत गहरे जड़ें जमा ली हैं। आखिर तभी तो सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद भी सौ मामले सामने आए। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि एक महिला को इसलिए तलाक दे दिया गया, क्योंकि वह सुबह जल्द नहीं जगी। ऐसी घटनाओं पर रोक के लिए सजा का प्रावधान जरूरी है। मुस्लिम महिलाओं पर अत्याचार के खिलाफ इस संवेदना को किसी भी राजनीतिक चश्में से नहीं देखा जाना चाहिए।

इस लिहाज से देखा जाए तो तीन तलाक संबंधी मुस्लिम महिला विवाह अधिकार संरक्षक विधेयक को विगत 28 दिसंबर, 2017 को लोकसभा से मंजूरी मिल गई। काँग्रेस ने इस विधेयक को समर्थन देकर एक तरह से 40 साल पुरानी अपनी भूल को सुधार लिया। अगर राजीव गाँधी के नेतृत्ववाली केंद्र सरकार ने शाहबानों के मामले में दिए गए सुप्रीम कोर्ट के फैसले को पलटा नहीं होता तो शायद इस विधेयक की नौबत ही नहीं आती।

हालांकि यह भी सच है कि मनमाने तीन तलाक के खिलाफ कानून बन जाने मात्र से यह सदियों पुरानी कुरीति समाप्त होने वाले नहीं है,

लेकिन इसका यह मतलब भी नहीं कि महिलाओं को असहाय बना देने वाली कुरीतियों को खत्म करने के लिए कानून का सहारा नहीं लिया जाना चाहिए। आखिर सती प्रथा, दहेज की कुरीति और बाल-विवाह के खिलाफ भी तो कानून बनाए गए जिसके बाद सतीप्रथा, दहेज की कुरीति और बालविवाह प्रथाओं पर लगाम लगाने का काम किया तो इसलिए भी कि समय के साथ हिंदू समाज जागरूक हुआ। ठीक इसी प्रकार बेहतर हो कि तीन तलाक के मामले में राजनीतिक और साथ ही धार्मिक नेता सकारात्मक भूमिका निभाने के लिए आगे आएँ। उन्हें मुस्लिम समाज की उन महिलाओं से सीख लेनी चाहिए जिन्होंने तमाम मुसीबतों के बाद भी अपने हक की आवाज बुलंद की।

(75)प्रश्न: क्या किसी भी सभ्य समाज के विकास के लिए हिंसा, उपद्रव और खून-खराबा गंवारा हो सकता है? तो फिर दो सौ सालों पहले की घटना को हम अबतक अपने मन में जहर के बीज क्यों संजोए बैठे हैं?

उत्तर: हिंसा, उपद्रव और खून-खराबा किसी भी सभ्य समाज के विकास के लिए गंवारा नहीं हो सकता है, क्योंकि दो सौ सालों पहले गड़े मुर्दो को उखाड़ना और उस पर बखेड़ा खड़ा करना किसी भी नजरिए से जायज नहीं ठहराया जा सकता है। आखिर महाराष्ट्र की जातीय हिंसा को तो इसी वजह से हवा दी गई। आज से ठीक दो सौ साल पहले अँग्रेजों ने अगर दलितों की मदद से ब्राह्मण शासक पेशवाओं को हराया था तो उसपर कोई बिरादरी शौर्य दिवस मनाकर संघर्ष का माहौल तैयार करने के पीछे क्या मतलब था?

पूणे में भीमाकोरे गाँव नामक स्थान पर दलितों के खिलाफ हिंसा के जवाब में दो सौ साल पुरानी लड़ाई की वर्षगांठ मनाने के दौरान आमतौर पर दस-बीस हजार ही लोग जुटते थे, लेकिन इस बार लाखों की संख्या में भीड़ जुटाई गई और इसे सफल बनाने के लिए दलितों के युवा नेता जिग्नेश मेवाणी, उमर खालिद आदि को बुलाया गया जिन्होंने मोदी शासन को नई पेशवाई करार देते हुए उत्तेजक भाषण दिए जिसका नतीजा यह हुआ कि भीमा कोरेगाँव में शरारती तत्वों को उत्तेजित होने का मौका मिल गया और इस उत्पात में दर्जनों वाहन फूके गए तथा एक युवक की हत्या भी की गई। यह न केवल दुर्भाग्यपूर्ण है, बल्कि चिंताजनक भी कि देश को जातिवादी राजनीति के दुष्चक्र की ओर ले जाने और इस क्रम में जातीय वैमनस्य को उभारने वाले तत्व नए सिरे से सक्रिय होते दिख रहे हैं। वे कहीं दलितों को

भड़का रहे हैं, तो कहीं आदिवासियों को या फिर पिछड़ों के साथ अगड़ों को भी। यदि राजनेताओं के इस सियासी खेल की वजह से देश जातीय वैमनस्य की चपेट में आया तो इसकी कीमत सभी को चुकानी होगी। अँग्रेज जाते-जाते भी हम देशवासियों को जात-जात से लड़ा गए। आखिर तभी तो कवि ओम प्रकाश तिवारी अपनी व्यंग्य कविता में कहते हैं-

जाते-जाते देश को लड़ा गए अँग्रेज,
आजादी ऐसी मिली ज्यों काँटों का सेज।
ज्यों काँटों का सेज न करवट लेने पाएँ,
दो भाई संग्राम अनवरत करते जाएँ।
जात-पात की जंगल में हम पीते-खाते,
ऐसे ठोस उपाय कर गए जाते-जाते।

बेहतर तो यह होगा कि राजनीतिक दल और उसके नेता खासतौर पर वैसे युवा नेता जो हिंसा और उपद्रव फैलाकर जातीय वेमैनस्य फैलाकर अपनी नेतागिरी चमकाना चाहते हैं उन्हें संसद के जरिए देश को यह संदेश देना चाहिए कि सामाजिक सद्भाव को छिन्न-भिन्न करने वाली घटनाएँ कहीं होने नहीं दी जाएगी। अतएव वे जातीय हिंसा से बाज आएँ। नौजवानों को तो अपने अच्छे कर्मों से एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए।

उल्लेख्य है कि 1 जनवरी, 1818 को ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों पेशवा बाजी राव द्वितीय की पराजय हुई जिससे मराठा राज का अंत हुआ। इस युद्ध में स्थानीय महार अँग्रेजों के पक्ष में लड़े थे। पिछले कई दशकों से दलितों का एक वर्ग उसे शौर्य दिवस के रूप में मनाता है। दलितों के साथ जितना अमानवीय व्यवहार उस दौरान होता था उसमें उनके अंदर पेशवा शासन के खिलाफ गुस्सा स्वाभाविक था। आज दो सौ साल के बाद उसे शौर्य दिवस के रूप में मनाना चाहिए या नहीं इस पर निश्चित तौर पर दो राय हो सकती है, किंतु 1 जनवरी, 2018 को उस युद्ध की 200वीं बरसी थी। उसे बड़े पैमाने पर मनाने की योजना कुछ संगठनों ने बनाई थी जिसमें जिग्नेश मेवाणी, उमर खालिद आदि ने जिस तरह उत्तेजना का भाषण दिया उससे दूसरे वर्ग में भी उत्तेजना पैदा हुई थी जिसकी वजह से महाराष्ट्र के तेरह जिले हिंसा के चपेट में आ गए और बड़े पैमाने पर निजी और सार्वजनिक संपत्तियों को क्षति पहुँचाई गई। इस मामले में पूरे महाराष्ट्र में दलित बनाम सवर्ण के बीच हिंसा का रूप ले लिया जिसके पीछे निश्चय ही ऐसे तत्वों की भूमिका होगी जो प्रदेश में जातीए तनाव भड़काए रखना चाहते हैं।

इस तरह के संघर्ष से जहाँ विद्वेष बढ़ेगा, वहीं सभी राजनीतिक दलों को रोटी सेंकने का मौका भी मिलेगा और स्थिति में सुधार नहीं होने पर देश कमजोर होगा। साथ ही सार्वजनिक संपत्तियों का नुकसान और राजस्व की क्षति से देश के विकास को अवरूद्ध करेगी। इसके मद्देनजर शासन-प्रशासन को तत्काल उपद्रवियों को चिन्हित कर कड़ी सजा देते हुए सामाजिक समरसता बनाए रखने की कोशिश करनी होगी। साथ ही दलित एवं मराठा समुदाय के विवेकशील लोग आगे आएँ और तनाव को दूर करने की पहल करें।

(76)प्रश्नः क्या आज आपको ऐसा नहीं लगता कि वर्तमान दौर के भारतीय समाज के लोग पुरुषार्थ भी अपनी बेटियों की गुलामी के माध्यम से पाना चाहता है? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि वर्तमान दौर के भारतीय समाज के लोग पुरुषार्थ भी अपनी बेटियों की गुलामी के माध्यम से पाना चाहते हैं, क्योंकि निर्लज्ज कथित आध्यात्मिक बाबाओं की सूची में जुड़ा नवीनतम नाम वीरेन्द्र देव दीक्षित और उसके कारनामें राष्ट्रीय राजधानी नई दिल्ली से होते हुए बरास्ता राजस्थान, उत्तरप्रदेश और अब मध्यप्रदेश में भी गूँज रहे हैं। यह नया बाबा पिछले कई दशकों से छोटी-छोटी बच्चियों के माध्यम से उनके माता-पिता का पुरुषार्थ बेच रहा था। लड़कियाँ इसके आश्रम में अबोध अवस्था में आयीं और अब वह प्रौढ़ता को प्राप्त हो चुकी हैं। बाबा उनके माता-पिता को हर महीने पैसे भी भेजता था। गजब का पुरुषार्थ है वर्तमान दौर का भारतीय समाज। ऐसा समाज तो शायद धिक्कार का पात्र भी नहीं बचा है। दर्जनों लड़कियाँ पड़ोस में कैद हैं, उनपर बेइंतहा जुल्म ढाए जा रहे हैं, परन्तु ऐसे समाज के लोग अपने घरों में टेलीविजन देख रहे हैं और मजे से खा-पी रहे हैं, मौज-मस्ती कर रहे हैं और इसके बावजूद चाहते हैं कि सामाजिक परिवर्तन आ जाए।

इसी प्रकार आसाराम बापू बलात्कार का आरोपी है और जेल में बंद है, लेकिन उसके साहित्य का प्रचार-प्रसार करने महिलाएँ तक आ रही हैं। राम रहीम का किस्सा अभी कानों में गूँज रहा है। हाल में तेजी से उभरते आध्यात्मिक गुरु पर पत्नी की हत्या का आरोप है और वह पूरे देश का भ्रमण कर रहे हैं तथा तकरीबन सभी प्रमुख हस्तियों से मिल रहे हैं। बड़े मीडिया घरानों से लेकर विशाल औद्योगिक एवं राजनीतिक घराने उनकी यात्रा को प्रायोजित करने के लिए सैकड़ों करोड़ रुपए का योगदान कर रहे हैं। अब

कौन लिखेगा उनके खिलाफ? दरअसल, समाज के लोगों की आँखें व्यक्तिगत स्वार्थ में इतनी चौधियाँ गयी हैं कि उन्हें कुछ दिखाई ही नहीं देता। आखिर वे यह माँग क्यों नहीं करते कि जिन आश्रमों में महिलाओं के साथ बदसलूकी हुई है सबसे पहले उन्हें ध्वस्त किया जाए। फिर कोई अगली कार्रवाई हो।

भारत में इन बाबाओं का इस्तेमाल तमाम सामाजिक समूह महिलाओं पर बंदिशें लगाने के लिए भी करते हैं। आखिर क्या वजह है कि इतनी बड़ी संख्या में महिलाओं पर अत्याचार होने के बावजूद समाज में कोई बबाल नहीं आता जबकि निर्भया जैसे मामलों में हम जबरदस्त सामाजिक प्रतिक्रिया देख चुके हैं? तो फिर ऐसा क्या है कि धर्म की बात आते ही हम अपनी संतानों को अपनी ही इच्छा से देवदासी बना देते हैं? अपने लिए स्वर्ग की कामना क्या बेटी को नरक में धकेलने से पूरी होगी?

(77)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि अँग्रेजों ने जिस साम्राज्यवादी नीति के साथ भारत में मुस्लिम अलगाववाद को भड़काया उसी का अनुसरण स्वंतत्र भारत में कुछ तत्व कर रहे हैं? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि अँग्रेजों ने जिस साम्राज्यवादी नीति के साथ भारत में मुस्लिम अलगाववाद को भड़काया और ईसाई मिशनरियों एवं चर्च द्वारा सामाजिक भेदभाव के शिकार लोगों का मतांतरण कर उन्हें शेष समाज के विरूद्ध खड़ा किया उसी का अनुसरण स्वतंत्र भारत में कुछ तत्व कर रहे हैं। मुझे लगता है कि महाराष्ट्र में पिछले दिनों भीमा कोरेगाँव में एक जनवरी, 2018 को दलित तथा मुस्लिम समुदाय छद्म सेक्युलरवाद के झंडाबरदार लोगों ने जो कुछ किया उन्हें दलित कल्याण की कोई चिंता नहीं, बल्कि वे उनका उपयोग केवल अपने घोषित विभाजनकारी उद्येश्यों के लिए कर रहे थे। महाराष्ट्र जातीय हिंसा को लेकर इन्हीं लोगों ने सार्वजनिक विमर्श में 'दलित बनाम शेष हिंदू समाज' की झूठी अवधारणा को पुन: जगह दी जिसे विकृत तथ्यों और तथ्यों और गलत इतिहास की नींव पर प्रस्तुत किया जा रहा है। उन्हें यह नहीं मालूम कि पेशवाओं की पैदल सेना में भी कथित निम्न जाति के लोग थे। इस लड़ाई में दोनों पक्षों से कई सैनिकों की मौत हुई थी। अब जो युद्ध भारत और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच लड़ा गया था, वह दलित बनाम मराठा कैसे हो गया?

दरअसल, कई 'सेक्युलर' बुद्धिजीवियों ने कोरेगाँव युद्ध को दलित अस्मिता की विजय से जोड़ा है। ऐसे लोगों को उस लंबे इतिहास को पुन:

पढ़ना चाहिए जो यह बताता है कि अँग्रेजों के आगमन से पूर्व मराठा सैन्य बल में महारों की बड़ी संख्या थी। इस समुदाय के सैनिक निर्भीक, बहादुर और निष्ठावान थे जिन्होंने मराठा साम्राज्य के संस्थापक और महान योद्धा छत्रपति शिवाजी महाराज और उनके पुत्र संभाजी को ताकत दी। अँग्रेजों ने वस्तुत: जातिभेद पर बल दिया था। आखिर तभी तो इतिहास में जिन महार सैनिकों के बल पर अँग्रेजों ने कोरेगाँव में मराठों का परास्त करने का दावा किया उनकी ही भर्ती पर वर्ष 1892 में यह कहकर रोक लगा दी कि 'महार लड़ाकू नस्ल नहीं हैं, अपितु निम्न जाति के अछूत हैं।' बाबा साहेब ने कहा था– 'यदि इतिहास से सीख न लेकर राजनीतिक दल और उसके नेता देश के ऊपर पंथ को प्राथमिकता देते हैं तो हमारी स्वतंत्रता पर न केवल संकट आएगा, बल्कि हम उसे हमेशा के लिए खो देंगे। इसलिए हमें अपने खून की आखिरी बूंद तक देश की स्वतंत्रता की रक्षा करनी होगी।' डॉ. अम्बेडकर के नाम पर देश को पुन: बाँटने की कोशिश करने वाले क्या बाबा साहेब के उपरोक्त वक्तव्य के आलोक में अपने विभाजनकारी नीतियों की समीक्षा करेंगे?

चूंकि महाराष्ट्र में मराठा मोर्चा पहले से ही आरक्षण की मांग को लेकर विरोध प्रदर्शन कर रहा है इसलिए अब महारों के साथ संघर्ष को तुल देकर महार-मराठा के बीच अरसे से चली आ रही तनातनी ने आग में घी का काम किया। आने वाले समय में अन्य राज्यों में भी इसी तरह से किसी प्रभावशाली जाति को भड़काकर अशांति का माहौल बनाया जा सकता है, क्योंकि यह जो हो रहा है वह एक तरह से 2019 के लोकसभा चुनावों की तैयारी है। कुछ राजनीतिक दल और उसके खासतौर पर युवा नेता येन-केन-प्रकारेण राजनीति के शिखर पर पहुँचने के लिए शायद यह मान बैठे है कि भाजपा के निरंतर बढ़ रहे विजय रथ को रोकने का एकमात्र रास्ता इसी प्रकार का जातियुद्ध भड़काना है। दरअसल, मौजूदा दौर के नेताओं की आज यही प्रवृत्ति बन गई है क्योंकि समाज और देशहित उनकी नजर से गौण हो गया है।

अध्याय: द्वितीय

सांस्कृतिक

(१)प्रश्नः हम अपनी संस्कृति और जीवनशैली का अपने अनुरूप नवीनीकरण क्यों नहीं कर पा रहे हैं?

उत्तर: यह अक्सर कहा जाता है कि जैसा दृष्टिकोण होगा, जीवन वैसा ही दिखेगा। भारत का आम सामाजिक जीवन अपनी धुरी से उतर चुका है। यह धुरी पुरातनता की थी, परंपरा की थी और सदियों से जिए जा रहे जीवन के अभ्यास की थी। ग्रामीण और कस्बाई संस्कृति जो जिंदगी के मानक तय करती थी, कभी की खत्म हो चुकी है, आज सिर्फ उसके अवशेष ही दिखते हैं। पारिवारिक जीवन के पुराने तयशुदा ढाँचे अब बचे नहीं हैं।

अब हमारे सामने सवाल सिर्फ एक है- कोई भी समाज क्यों बदलता है और कैसे बदलता है? यह परिवर्तन समाज को भीतर से तोड़ रहा है। हम अपने समाज के भीतर से एक स्वाभाविक आधुनिकता क्यों नहीं पैदा कर रहे हैं? आज जिस आधुनिकता की चादर हम ओढ़ रहे हैं वह तो पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति की देन है जिसकी ओर अँधाधूंध भागे जा रहे हैं। हम अपनी संस्कृति और जीवन शैली का अपने अनुरूप नवीनीकरण नहीं कर पा रहे हैं, क्योंकि पश्चिमी संस्कृति ने हमें अँधा बना दिया है और आपाधापी के इस दौर में अधिकाधिक पाने के लिए बिना सोचे-विचारे बढ़े जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि हमारा देश और हमारा समाज उपभोक्तावाद और पश्चिमीकरण के ठीकरे पर जिबह होने के लिए बना है या अतीत की लकीर पीटने वालों का मानसिक कैदी बने रहने के लिए अभिशप्त है। हमने राजनीति से इतनी आशाएँ क्यों पाल रखी हैं जबकि वह ठीक-ठाक भी नहीं है, बल्कि सत्ता के खेल का गणित भर है।

डॉ. ब्रह्मचारी जी, मुझे तो ऐसा लगता है कि हम अपनी संस्कृति और जीवनशैली का अपने अनुरूप नवीनीकरण तभी कर पाएँगे जब हम समाज के भीतर को ऐसी परिवर्तन की गति पैदा करने में अग्रसर होंगे, जिससे व्यक्ति बदले, व्यक्तियों के संबंध बदले और परिवार बदले। यह सारा बदलाव एक नए तरह के समाज के गठन की दिशा में बढ़े कारण की जिंदगी अब वहां नहीं है, जहाँ बीसवीं सदी के मध्य और अंत तक थी। समय बहुत आगे आ गया है। भारत और भारतीय समाज इस समय की चपेट में है और वह इस चपेट से निकलकर अपने अनुसार समय को गढ़ सके, इसी की जरूरत है।

समय की चपेट में भारत और भारतीय समाज में आजकल अँग्रेजी का ही बोलबाला है, चाहे कहीं नौकरी के लिए साक्षात्कार हो या संगोष्ठी, मंच पर बोलना हो या अभिव्यक्ति अँग्रेजी भाषा का प्रचलन जोरों पर है। जहाँ अँग्रेजी बोलने वाले को भारतीय समाज में ऊँचा दर्जा दिया जाता है, वहीं भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी, जहाँ भी जाते हैं अपनी संस्कृति और हिंदी साथ लेकर जाते हैं। चाहे वो संयुक्त राष्ट्र संघ हो, बर्लिन का भाषण हो या जी-20 का शिखर सम्मेलन मोदी जहाँ जहाँ गए हिंदी उनके साथ चलती रही यानी उनका प्रयास है कि समय की चपेट से बचें और अपनी संस्कृति को कायम रखें। ऐसा करने से ही अपनी संस्कृति और जीवनशैली का अपने अनुरूप नवीनीकरण कर पाएँगे। इसलिए हम अपनी भाषा की उपेक्षा कतई न करें। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी कहा है-'आज शक्ति का श्रोत राज-राजेश्वर नहीं है, बल्कि देश की कोटि-कोटि जनता है, वही वास्तविक शक्ति का केंद्र है, दीर्घकाल तक उसकी भाषा की उपेक्षा नहीं चलेगी। उसकी उपेक्षा पर चलने वाली फिलोसफी बालू की भीत की भाँति भहरा जाएगी।'

(२)प्रश्नः यूनेस्को द्वारा नालंदा महाविहार को वर्ल्ड हेरिटेज सूची में शामिल होने पर आप बिहार के नालंदा निवासी होने के नाते कैसा अनुभव करते हैं? प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय के अवशेष पर आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तरः हाँ, मैं बिहार के नालंदा का निवासी हूँ और मैं ही नहीं, बिहार के साथ पूरा भारत को इस बात का गर्व है कि यह ज्ञान और बौद्धिकता से संबंधित धरोहरों की समृद्ध-धरती है। ये धरोहरें देश के गौरवशाली अतीत का अहसास तो कराती ही हैं, इनकी पृष्ठभूमि में देशवासियों को अपना वर्तमान बेहतर करने की प्रेरणा भी मिलती है। ज्ञान-बोध, शिक्षा और लोकतंत्र के लिए बिहार की यह धरती आदिकाल से उर्वर रही है। इस विरासत पर पूरे देश को गर्व होना लाजिमी है। यूनेस्को की वर्ल्ड हेरिटेज कमिटी द्वारा अपने 40वें सेशन के दौरान नालंदा महाविहार को वर्ल्ड हेरिटेज सूची में शामिल किए जाने से एक ओर जहाँ नालंदा के लोगों में खुशी की लहर है, वहीं यहाँ के धरोहरों का भी सम्मान और बढ़ गया है, क्योंकि इसकी महत्ता और आकर्षण पर दुनिया भर में चर्चा होगी और बेशक दुनिया भर के पर्यटकों के आने से यह पर्यटन स्थल फलता-फूलता नजर आएगा।

नालंदा का प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय हमारी विरासत है और

विरासत हमारी संपदा। दुनिया का इस प्राचीनतम विश्वविद्यालय की स्थापना 450ई. में हुई थी तब वहाँ दस हजार से ज्यादा विद्यार्थी अध्ययन करते थे। 12वीं शताब्दी में बख्तियार खिलजी ने इसे नष्ट कर दिया था, मगर अवशेष हमें आज भी उस भव्य विश्वविद्यालय की झलक दिखाते हैं। हमें इस विरासत की अहमियत को समझने और इसके संरक्षण के लिए कदम उठाने की जरूरत है। सरकार को अच्छी सड़कों के साथ परिवहन के सुविधाजनक साधन विकसित करने होंगे, पर्यटकों के ठहरने और भ्रमण के इंतजाम करने होंगे तथा उन्हें हर कीमत पर अचूक सुरक्षा मुहैया करानी होगी। नालंदा विश्वविद्यालय का भग्नावशेष विश्व धरोहर बनने वाला बिहार में बोधगया के महाबोधि मंदिर परिसर के बाद दूसरा व देश का 33वाँ धरोहर है। विश्वविद्यालय का भग्नावशेष 14 हेक्टेयर में फैला है। खुदाई से पता चलता है कि सभी निर्माण लाल पत्थर से किए गए। अब भी इस भग्नावशेष का पूरा हिस्सा सामने नहीं आया है। यहाँ तक कि मुख्य प्रवेश द्वार का भी अभी तक पता नहीं चल सका है।

(३)प्रश्नः क्या आप इस बात से सहमत हैं कि संस्कृति और समाज के साथ पानी का साझा पुराना होते हुए भी आज समय और समाज के बीच पानी और मनमानी का एक नया आवेगी सिलसिला आकार ले रहा है? आखिर क्यों?

उत्तर: हाँ, ब्रह्मचारी जी, मैं भी आपकी इस बात से सहमत हूँ कि संस्कृति और समाज के साथ पानी का साझा काफी पुराना है, मगर मौजूदा दौर में समय और समाज के बीच पानी और मनमानी का एक नया आवेगी सिलसिला आकार ले रहा है। वर्षा और बाजार का खेल नया भले हो, पर संस्कृति और समाज के साथ उसका साझा पुराना है।

जहाँ तक फिल्मों की बात है नायिकाओं के परदे पर भींगने-भिंगाने अथवा नदी-तालाब के बीच नायक-नायिकाओं के होने पर दोनों एक-दूसरे के ऊपर पानी से भिंगाना आप अक्सर देखते होंगे। पर पहले उनका यह भींगना-भिंगाना, नहाना ताल-तलैया, गाँव-खेत से लेकर प्रेम के पानीदार क्षणों को जीवित करने के भी कलात्मक बहाने थे, मगर अब उसे दोनों के बीच रोमांस का औजार मान लिया गया है जो हमारे विवेक और हमारी चेतना को तेजी से सनसना जाता है। बहरहाल पानी के इस सनसनाते अहसास ने सांस्कृतिक रूप से हमें कितना तंगहाल किया है इसके लिए पारंपरिक रूप से चले आ रहे सावनी गीत-संगीत का यह मशहूर कजरी

–'बदरिया घिर आई ननदी.....' का मिसाल प्रस्तुत करना काफी होगा जिसके बिना शायद ही कोई सांस्कृतिक कार्यक्रम हो जो बिना इस गीत के माधुर्य के पूरा होता हो। मगर आधुनिक संस्कृति की उपस्थिति ने इस कजरी को अब नए कद्रदानों की तलाश है। वैसे भी जब हमारी जड़ों के साथ संस्कृति अपना रिश्ता तोड़ लेती है, तो वह एक साथ कई प्रक्षेपित खतरों को लेकर आती है।

वह दौर गया जब रिमझिम फुहारों के बीच धान रोपाई के गीत या सावनी कजरी की तान फूटते थे। जिन कुछ लोक अँचलों में यह सांगीतिक-सांस्कृतिक परंपरा थोड़ी-बहुत बची है, वह मीडिया की निगाह से दूर है। अब तो स्थिति यहाँ तक आ गयी है कि पानी के बिना किसान आत्महत्या कर रहे हैं और गुजरात, महाराष्ट्र से लेकर राजस्थान तक में पेयजल के लिए महिलाएँ सिर पर गगरी लिए पाँच-छह किलोमीटर की यात्रा कर रही हैं, तो इस स्थिति की भयावहता का अंदाजा लगाया जा सकता है। अब तो स्थिति यहाँ तक आ गई है कि लोग यह आशंका जता रहे हैं कि अगला विश्व युद्ध किसी औपनिवेशिक विस्तार की हवस की वजह से नहीं, बल्कि पानी और उसे लेकर हो रही मनमानी को लेकर होगा। पानी के साथ जिम्मेदार और संवेदनशील सलूक का रकबा घटता जा रहा है। इस घटाव में पानी को लेकर सौंदर्यबोध तो क्या, हमारा पूरा विवेक ही एक उपभोक्तावादी सनक में बदल चुका है जिसकी वजह से सौंदर्य और महिला अस्मिता जैसे संवेदनशील सांस्कृतिक सवालों को भी एक नए हाहाकार में बदल दे रहा है।

तभी तो सय्यद अनवार अहमद की गजल कहती है–

"मिट्टी तेरे महकने से मुझको गुमान है,
बारिश की बूँद-बूँद में इक दास्तान है।"

जीवन की दौड़ में हम कितना ही आगे निकल आएँ, पर हमारे आगे बढ़ जाने में मिट्टी और संस्कृति कभी पीछे नहीं छूटती। हम जहाँ भी हों मिट्टी और संस्कृति एक लययुक्त स्मृति बनी हममें लगातार महकती रहती है, मगर आधुनिकता की अँधी दौड़ में आज के गीतों से वहीं सावन के गीत गायब होते जा रहे हैं। आज भी बारिश की पहली फुहार पड़ते ही फिल्म 'परख' के लिए शैलेन्द्र के लिखे इस गीत को गाया है लता मंगेशकर ने–

"ओ सजना! बरखा बहार आयी, रस का फुहार लायी,
नयनों में प्यार लायी....... ओ सजना "

ठीक इसी प्रकार फिल्म 'काला पत्थर' के लिए मोहम्मद रफी और गीतादत्त की आवाज में यह गीत बहुत ही खुशनुमा एहसास देता है–

"रिमझिम के तराने लेकर आयी बरसात
याद आए किसी से वह पहली मुलाकात"

सावन के सुहाने मौसम पर आधारित 'मिलन' के इस गीत को जबरदस्त लोकप्रियता मिली–

"सावन का महीना पवन करे शोर
जियरा झूमें ऐसे जैसे बनमा नाचे मोर"

दरअसल प्रकृति से अब जुड़े नहीं रहने की वजह से चाँदनी, नदियाँ, झरने, हवा और पहाड़ों का जिक्र भी अब गीतों में नहीं, लेकिन बदलते समय के साथ गानों में बारिश कम, अश्लीलता ज्यादा दिखने लगी। नहीं तो राजकपूर–नर्गिस की फिल्म 'श्री–420' का गाना 'प्यार हुआ इकरार हुआ. ......' आज भी बारिश का सबसे रोमांटिक गीत माना जाता है। फिल्म 'चलती का नाम गाड़ी' में किशोर कुमार और मधुबाला पर फिल्माया गया यह गीत– 'एक लड़की भीगी–भागी सी,' और 'मंजिल' का गाना– 'रिमझिम गिरे सावन सुलग–सुलग जाए मन' आज भी पसंदीदा है।

सावन के मौसम में प्रेमी जोड़े जब सपनों की दुनिया में खोकर अपने घर–संसार की कल्पना करते हैं तब 'जीवन–मृत्यु' का यह मनभावन गीत गुनगुना उठते हैं–

"झिलमिल सितारों का आँगन होगा,
रिमझिम बरसता सावन होगा। "

मगर शहर पृष्ठभूमि पर बनते फिल्म और पिछले तीन दशकों से हमारे समाज और समय की रूपरेखा में शहरी जीवन का असर पड़ा है और गाँव तथा वहाँ के लहलहाते खेत, हरियाली गायब हो रही है।

(४)प्रश्न: हमारी राष्ट्रीय संस्कृति की क्या विशेषताएँ हैं? अँग्रेजों ने हमारी राष्ट्रीय संस्कृति की वृद्धि को रोकने के लिए कौन-कौन से तरीके अपनाए? अपनी राष्ट्रीय संस्कृति की रक्षा करने के लिए हमें क्या करना है?

उत्तर: बेटी पल्लवी, तुम तो स्वयं शिक्षा और संस्कृति से जुड़ी होने के नाते इस बात से अवगत हो कि हमारी भारतीय संस्कृति मानवतावाद की संस्कृति है। इसीलिए तो हमने 'सर्वे भवन्तु सुखीन:' और 'वसुधैव कुटुम्बकम' की आवाज बुलन्द की। सभी देशों के बीच शांति और प्यार की संस्कृति है

हमारी राष्ट्रीय संस्कृति, दमन आक्रमण और शोषण के खिलाफ प्रतिरोध की संस्कृति है भारतीय संस्कृति। यह एक लोकप्रिय और लोकतांत्रिक संस्कृति है जो जनता के जीवन से जुड़ी है और उनके हितों के लिए काम करती है।

हमारी राष्ट्रीय संस्कृति की वृद्धि को रोकने के लिए अँग्रेजों ने एक ही भाषा बोलने वाले लोगों को अलग-अलग प्रांतों में बाँटने का तरीका अपनाया। भाषा के आधार पर राज्यों का बँटवारा भारतीय एकता को तोड़ने के लिए थी, भारतीय एकता को मजबूत करने के लिए नहीं।

अपनी राष्ट्रीय संस्कृति की रक्षा करने के लिए हमें पश्चिमी संस्कृति से बचाना होगा, क्योंकि पश्चिमी संस्कृति में हमारे जीवन में दबाव के जो कुछ विरूद्ध है और जो कुछ हमारी राष्ट्रीय संस्कृति में स्वस्थ है और अच्छा है, हमें उन सबको सुरक्षित रखने और बढ़ाने के लिए कटिबद्ध रहना होगा। इसके अतिरिक्त हमें युद्ध चाहने वालों की अमेरिकी संस्कृति के दबाव से अपनी राष्ट्रीय संस्कृति को बचाना है। अमेरीकी संस्कृति खून की प्यासी, पागलपन और मनुष्यता की विरोधी संस्कृति है। यूरोप और एशिया में देशों को गुलाम बनाने की प्रथा चलाने वाली है, अपने देश में शांति चाहने वालों का कठोरतापूर्वक दमन करने वाली है और नस्ल एवं रंगभेद के आधार पर नीग्रो लोगों पर अत्याचार करने वाली है। जबकि हम अपनी भारतीय संस्कृति की मानवतावादी और प्रजातांत्रिक परंपराओं को पुनर्जीवित करना चाहते हैं। हम जनता की याद्दाश्त में धुंधले हो गए अपने ऐतिहासिक नायकों की छवियों को पुनर्जीवित करना चाहते हैं, अपने संत कवियों के निःस्वार्थ कार्य करने की मानसिकता को कबीर जैसे कवियों के व्यंग्य बाण द्वारा ज्वलंत देश प्रेम फिर से जनता को याद दिलाना चाहते हैं।

वैसे भी संस्कृति किसी देश की संजीवनी होती है जो देश के भावी जीवन के लिए दशा-दिशा एवं प्रेरणा प्रदान करती है। यदि राष्ट्रीय संस्कृति विनष्ट हो जाए, तो उस राष्ट्र को पतन से बचाना असंभव-सा है। यूनान, मिश्र, इटली, रोम, ईरान, ईराक, मेसोपोटेमिया आदि देशों को देखकर सभ्यता एवं संस्कृति की दृष्टि से इन्हें पहचानना मुश्किल हो जाता है। इनकी संस्कृतियों एवं सभ्यताओं के खंडहर ही विस्मृत अतीत की स्मृतियों को ताजा करते हैं।

जहाँ तक भारत का सवाल है भारत के करोड़ों नागरिकों के दैनन्दिन जीवन में उनके हजारों वर्षों की सांस्कृतिक विरासत का इतिहास निरंतर स्पन्दित होता रहता है। स्पन्दित हृदय की एक धड़कन है। इसलिए इस राष्ट्र के नागरिकों का यह दायित्व बनता है कि अपनी राष्ट्रीय संस्कृति को बचाने

का हर संभव प्रयास करें। पल्लवी, मेरा तो यहाँ तक मानना है कि सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से लोगों की बुराइयों को दूर करने का संदेश दिया जा सकता है, ताकि संस्कृति बहुत अधिक प्रभावित हो सके।

(५)प्रश्नः क्या हमारी संमृद्ध सांस्कृतिक विरासत आज हमारी आँखों के सामने ही विलुप्त नहीं होती जा रही है? यदि हाँ तो क्यों?

उत्तर: हाँ, हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत आज हमारी आँखों के सामने ही विलुप्त होती जा रही है, क्योंकि आए दिन पुरातत्व विभाग हो अथवा संग्रहालय, मंदिर हो या गुरुद्वारा प्राचीन मूर्तियाँ और प्रतिमाएँ गायब होती जा रही हैं। अभी-अभी बीते दिनों जब छतीसगढ़ के दंतेवाड़ा में 2595 फीट की ऊँचाई पर स्थापित साढ़े तीन फीट ऊँची दुर्लभ गणेश प्रतिमा के विध्वंस का समाचार मिला, तो स्थानीय लोगों के साथ देश भर के पुरातत्व प्रेमी सकते में आ गए। यह प्रतिमा सैकड़ों साल पुरानी ही नहीं, बल्कि भारत की उन सांस्कृतिक धरोहरों में से एक है जिसका मूल्य नहीं आंका जा सकता। आज से लगभग एक हजार साल पहले छिंदक नागवंशी राजाओं ने ढोलकल की ऊँची पहाड़ी पर गणेश प्रतिमा की स्थापना कराई थी। नक्सलियों से लेकर देश भर में फैले मूर्ति की चोरी की ओर संदेह की सूई घूम रही है।

भारतीय पुरातत्व विभाग की 24 इमारतें गायब पाई गई हैं। इसी प्रकार उत्तराखंड में 1960 से अबतक सातवीं और नौवीं शताब्दी के दो मंदिर विलुप्त हो चुके हैं। हमारे इतिहास के सबसे गूढ़ पन्ने जिनमें सिंधु-सरस्वती सभ्यता का वर्णन है राखीगढ़ी जैसे अमूल्य पुरातात्विक स्थलों पर प्रशासन की उदासीनता और ग्रामीणों के अज्ञान के चलते धूल-धूसरित हो रहे हैं। हाल में मध्यप्रदेश में एक लंबी प्राचीन दीवार के अवशेष और मंदिरों के भग्नावशेष मिले। हैरत नहीं कि हमारी यह धरोहर अंतरराष्ट्रीय बाजारों में बिकने को मजबूर हों। औरतों और हमारे अपने ही लोग भी प्राचीन मूर्तियाँ चूराकर औने-पौने दामों में बेचते हैं। हमारे तमाम प्राचीन विश्वविद्यालय और उनके पुस्तकालय विदेशी आक्रमणकारियों की जलती मशालों की भेंट चढ़ चुके हैं। इसके लिए हमें प्रण लेना होगा कि अमूल्य धरोहरों की रक्षा करेंगे।

(६)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि पिछले दिनों जयपुर के जयगढ़ जिले में करणी सेना के लोगों ने फिल्म निर्देशक संजय लीला भंसाली के साथ मारपीट करके राजस्थान की उस महान सांस्कृतिक दृष्टि का अपमान किया है जो अपने संगीत और कला प्रेम के लिए पूरी दुनिया में पहचानी और सराही जाती है?

उत्तर: हाँ, डॉ. उमेश शर्मा जी, मैं आपकी इस बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि पिछले दिनों जयपुर के जयगढ़ जिले में करणी सेना के लोगों ने फिल्म निर्देशक संजय लीला भंसाली के साथ मारपीट करके राजस्थान की उस महान सांस्कृतिक दृष्टि का अपमान किया है जो अपने संगीत और कला प्रेम के लिए पूरी दुनिया में पहचानी और सराही जाती है।

करणी सेना के लोगों ने निर्माणाधीन फिल्म पदमावती की उस स्वघोषित स्क्रिप्ट को लेकर फिल्म यूनिट के खिलाफ हिंसा का रास्ता चूना जिसे वे जानते तक नहीं थे। इससे वे सभी जगहों पर हास्य के पात्र भी बने हैं। कलाकार की वह रचना जो अभी सामने ही नहीं आई, जिसके स्वरूप के बारे में किसी को कुछ भी पता नहीं, उसपर इस तरह का विरोध सरासर नाजायज ही कहा जाएगा।

फिल्म बनकर रिलिज होती और फिर यह बात सामने आती कि उसमें चितौड़गढ़ की रानी पद्मिनी और दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के परस्पर विरोधी चरित्रों के इर्दगिर्द बनी हुई अवधि के महाकवि मलिक मोहम्मद जायसी की रचना पद्मावत के कथातत्व के साथ वाकई कुछ छेड़छाड़ की गई है,तो उसकी आलोचना का कोई वाजिब तर्क बन सकता था। करणी सेना अगर इसे आपत्तिजनक पाती, तो वह उसके खिलाफ मुकदमा दर्ज करा सकती थी। इससे भी आगे कदम यह हो सकता था कि सही कहानी के इर्द-गिर्द कोई नई और बेहतर फिल्म बनाई जाती, लेकिन इसकी जगह उपद्रवियों को समर्थन देते हुए राजस्थान के गृहमंत्री भी हमलावरों का बचाव करते दिख रहे थे, तो इसमें किसी वास्तविक विरोध से ज्यादा वोटबैंक की राजनीति की बू आती है।

इस तरह की राजनीति दुनिया भर के पर्यटकों का खुले दिल से स्वागत करने वाले राजस्थान को किस गर्त में ले जा सकती है, इसके बारे में राजस्थान सरकार को अच्छी तरह सोच लेना चाहिए। इससे संस्कृति के नाम पर लाठी चलाने वाले जड़मति लोगों का तो नुकसान नहीं होगा, लेकिन वह राजस्थान जरूर उदास हो जाएगा, जिसे मूवी कैमरे की नजर से दुनिया की सबसे सुंदर इलाकों में गिनती होती है। इसको लेकर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय फिल्म जगत तो सदमे में है ही, उसके भीतर राजस्थान में शूटिंग को लेकर पहली बार एक दुविधा भी पैदा हो गई है। इस बीच भंसाली पूरा सरो-सामान लेकर मुंबई वापस जा चुके हैं और अब राजस्थान में इसकी शूटिंग नहीं की जाएगी।

(७)प्रश्न: क्या बाहरी आधुनिकता की निरंतरता मौलिक सहज स्वाभाविक भारत के साथ कभी हो सकती है? क्या हम अपने समृद्ध विरासत की अनदेखी हमेशा के लिए कर सकते हैं?

उत्तर: नहीं, बाहरी आधुनिकता की निरंतरता मौलिक सहज स्वाभाविक भारत के साथ कभी नहीं हो सकती, क्योंकि निरंतरता का सूत्र स्थापित करना असंभव-सा इसलिए हो गया है कि मौलिक भारत, प्रमाणभूत भारत की आधारभूत भौतिक व्यवस्था के विषय में ही हम अनजान बने बैठे हैं। मौजूदा दौर के शिक्षित लोगों को क्या यह कितना पता है कि भारत का समाजतंत्र, राज्यतंत्र, अर्थतंत्र, उद्योग तंत्र और ज्ञान विज्ञान तंत्र कैसे थे और कैसे चलते थे? स्वयं के विषय में आत्मविस्मृति हमारी खंडित निरंतरता का कारण है। भारत के प्रत्येक समुदाय को अपनी-अपनी ऐतिहासिक निरंतरता में स्थापित करने की है, ताकि सभी को अपनी छवि अपने राष्ट्र में दिखे।

दरअसल, आजादी के बाद देश के नेतृत्व और बुद्धिजीवियों का यह दायित्व था कि वे प्रमाण के साथ अपनी ऐतिहासिक निरंतरता की छवि को उजागर करें, लेकिन उजागर करना तो दूर उसे और मैला और धूमिल किया गया, ताकि भारतीय अपनी चीज को छोड़ दें और नई चीज को पकड़ने के लिए उतारू हो जाएँ।

भारतीय समाज में परंपरा के नाम पर आए घोर बिगाड़ और जड़ता के बावजूद गाँधी जी ने पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति, उसकी संस्थाएँ उद्योग, तौर-तरीके आदि को पूरी तरह नकारने का साहस बिना सोचे-समझे, बिना किसी अंत:दृष्टि के तो नहीं किया होगा? गाँधी जी के समय में उनसे प्रेरित होकर भारत की सभ्यता और संस्कृति की श्रेष्ठता को स्थापित करने वाले कुछ काम हुए, लेकिन दृष्टांत रूप में। आजादी के बाद अधिकतर काम हमारे निकम्मेपन को, पिछड़ेपन को हमारे मन-बुद्धि में स्थापित करने के लिए बड़ी शिद्दत के साथ हुए। जरूरी यह था कि आत्मविश्वास तोड़ देने की जगह आत्मविश्वास बढ़ाने वाले काम होते। खुद को भुलाने के लिए नहीं, बल्कि खुद को पहचानने के काम होते। देश व समाज के लोगों की प्रतिभा, देश की समृद्धि, आत्मनिर्भरता और राष्ट्र की अस्मिता की पहचान ही हमारी असली विरासत थी जिसे शोषक अँग्रेजी शासन और भारतीय शासन दोनों ने भुला दिए। आजादी के बाद भी हमने अपने आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक और सामाजिक दायरों में जीवन को व्यवस्था देने वाली दृष्टि, विद्या और कौशल को बरकरार नहीं रखा, बल्कि सच तो यह है कि

भारतीय जीवन की भौतिक व्यवस्था को भी नाश की तरफ धकेल दिया। हमने आजादी के वक्त ही अस्मिताहीन, आत्मपरिचयहीन और मौलिकताहीन राष्ट्र की तरह 1947 में ही मान और मनवा लिए गए, जिसके लिए हमारे नीति-नियंताओं की अदूरदर्शिता और वोटबैंक की राजनीति को ही जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

(८)प्रश्नः बाजार और तकनीकी प्रभुत्व के मौजूदा दौर में क्या दुर्गा पूजा का स्वरूप बदल रहा है?

उत्तरः भाई अखिलेश जी, धार्मिक उत्सवों का सीधा संबंध लोगों की रोजमर्रा की जिंदगी से भी है। दशहरा जहाँ कृषि-आधारित समाज के लिए फसलों की कटाई के बीच फुरसत के क्षणों में एक धार्मिक-सांस्कृतिक अवसर है, वहीं बाजार में खास खरीद-बिक्री का मौका भी। समय बीतने के साथ जीवन जीने के ढंग में बदलाव सभ्यता की स्वाभाविक गति है और इससे धार्मिक कृत्य और त्योहार भी अछूते नहीं रह सकते। दुर्गापूजा के पंडालों से लेकर निजी पूजा घरों तक में आधुनिक तकनीक का प्रवेश हुआ है, जिससे उत्सव के नजारे भी बदल रहे हैं।

आज से पचास-साठ वर्षो पहले दुर्गापूजा के 'सर्वजनीन' रूप का मतलब था किसी मुहल्ले विशेष के किसी सामाजिक-सांस्कृतिक संस्था द्वारा आम लोगों की मदद से आयोजित दुर्गोत्सव। ऐसे आयोजनों में बड़े-बूढ़ों से लेकर बच्चों की हिस्सेदारी होती थी और चार दिनों का यह उत्सव लोगों के बीच के अनूठे आत्मीय संबंधों को प्रगाढ़ बनाता था। दुर्गापूजा सदियों से सर्वत्र समान रूप से एक धार्मिक उत्सव होने के साथ-साथ एक प्रमुख सांस्कृतिक उत्सव भी रहा है, लेकिन पिछले दो दशकों से बाजार के बदलते चेहरे ने दुर्गापूजा के समय विशेष रूप से अपने उत्पादों के नए और अभिनव तकनीकों का सहारा लिया। दुर्गा पूजा में देवी दुर्गा की मूर्ति और पूजा के पंडालों में बड़े-बड़े वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों का प्रायोजकों के रूप में सामने आने से व्यापक प्रयोग करना संभव हो सका जो महज जनता से एकत्रित किए गए चंदे से संभव नहीं था। यह भी सच है कि ऐसे आर्थिक सहयोगों के चलते विभिन्न इलाकों में पूरा आयोजकों के बीच एक असहज प्रतिस्पर्धा का जन्म भी हुआ जिसका दुष्परिणाम भी अब देखने को मिल रहा है कि यह अब कुछ लोगों के लिए धन अर्जित करने और मौज-मस्ती करने के लिए व्यापार का रूप भी ले लिया है जिसमें समाज के संभ्रांत, शिक्षित और प्रबुद्ध के स्थान पर अब आपराधिक प्रवृत्ति के ठेकेदार, बाहूबली, दुष्कर्मी,

चोरी-डकैती के आरोप में जेल की सजा भुगते लोग तथा बेरोजगार लोगों की भीड़ देखने को मिल रही है जिनके द्वारा डरा-धमकाकर लोगों से चंदा की तसील की जा रही है और उसी पैसे से शराबखोरी से लेकर हर तरह की हरकतें देखने को मिलती हैं। चार-पाँच दिनों तक माईक से भौंडे गीत और उसी के अनुरूप भौंडे नृत्य भी पंडालों में देखे जाते हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि पूरी दुनिया में युगों से जहाँ धार्मिक त्योहारों की विशेषता उसके मूल स्वरूप को बरकरार रखने में हो रही है और धार्मिक उत्सव को सांस्कृतिक उत्सव के रूप में विकसित करने का प्रयास हो रहा है, वहीं इधर के वर्षो में प्रकाश सज्जा में लेजर और अन्य आधुनिकतम तकनीकों के प्रयोग से पूजा मंडपों का आकर्षण और भी बढ़ रहा है। हमारे मूर्तिकार बड़ी सहजता से देवी दुर्गा की मूर्ति निर्माण में मिस्र के देवी-देवताओं से लेकर प्राचीन ग्रीक और बौद्ध मूर्तियों जैसे विविध प्रभावों को ला पाते हैं। इसी प्रकार मंडपों की साज-सज्जा में मधुबनी, वारली, पटचित्र और फड़ से लेकर अफ्रीकी, इंडोनेशियाई या लैटिन-अमेरिकी आदि विभिन्न लोक कलाओं को आधार बनाते हुए पाते हैं। मगर इसका एक दूसरा पक्ष भी नजर आता है कि धीरे-धीरे यह उत्सव अपनी परंपरा खोते जा रहा है बाहरी आक्रमणों और बाहरी प्रभावों की वजह से। देवी-देवताओं के प्रति आस्था और विश्वास कम दिखावा और भौंडापन ज्यादा दिख रहा है जो आम लोगों को गलत दिशा की ओर ले जा रहा है जिसपर हमारा ध्यान जाना जरूरी है।

(९)प्रश्नः मुस्लिम आबादीवाले देश इंडोनेशिया में रामलीला का मंचन क्यों होता है और वहाँ की संस्कृति क्या है?

उत्तर: इंडानेशिया दुनिया का एक ऐसा देश है जहाँ की 90 प्रतिशत आबादी इस्लाम धर्मावलंबी है। यह देश रामकथा यानी रामायण का दीवाना है। इस देश में अयोध्या भी है और यहाँ के मुस्लिम भी भगवान राम को अपने जीवन का नायक और रामायण को अपने दिल के सबसे करीब किताब मानते हैं। भारत की तरह इंडोनेशिया में रामायण सबसे लोकप्रिय काव्यग्रंथ है।

इतिहास बताता है कि रामायण का इंडोनेशिया संस्करण सातवीं सदी के दौरान मध्य जावा में लिखा गया था। लेकिन भारत और इंडोनेशिया की रामायण में अंतर है। इंडोनेशिया में रामायण को 'रामायण काका वीन' नाम से जाना जाता है जिसके रचयिता कवि योगेश्वर हैं जबकि भारतीय प्राचीन

सांस्कृतिक रामायण के रचयिता आदि कवि ऋषि वाल्मीकि हैं। 'रामायण काकावीन' में सीता को 'सिंता' और लक्ष्मण को इंडोनेशियाई नौ सेना का सेनापति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इंडोनेशियाई संस्कृति में 'रामायण काकावीन' का मंचन करने की परंपरा रही है। श्री रामकथा पर आधारित जावा की प्राचीनतम कृति 'रामायण काका वीन' है। 'रामायण काकावीन' 26 अध्यायों में विभक्त एक विशाल ग्रंथ है जिसमें महाराज दशरथ को विश्वरंजन की संज्ञा से विभूषित किया गया है और उन्हें शैव मतालंबी बताया गया है । इसी प्रकार हनुमान इंडोनेशिया के सबसे लोकप्रिय पात्र हैं। हनुमान जी की लोकप्रियता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि आज भी हर साल इस मुस्लिम आबादीवाले देश की आजादी के जश्न के दिन बड़ी तादाद में राजधानी जकार्ता की सड़कों पर युवा हनुमान जी का वेशधारण कर सरकारी परेड में शामिल होते हैं। हनुमान को इंडोनेशिया में 'अनोमान' कहा जाता है और भगवान गणेश को कला, शास्त्र और बुद्धिजीवी का भगवान माना जाता है।

हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान फादर कामिल बुल्के ने 1982 में अपने एक लेख में कहा था, '35वर्ष पहले मेरे एक मित्र ने जावा के किसी गाँव में एक मुस्लिम शिक्षक को रामायण पढ़ते देखकर पूछा था कि आप रामायण क्यों पढ़ते हैं ? उत्तर मिला, 'मैं और अच्छा मनुष्य बनने के लिए रामायण पढ़ता हूँ।'

दरअसल, रामकथा यानी 'रामायण काकावीन' इंडोनेशिया की सांस्कृतिक विरासत का अभिन्न हिस्सा है। बहुत से लोग हैं जिन्हें यह देखकर हैरानी होती है, लेकिन सच यही है कि दुनिया में सबसे ज्यादा मुस्लिम आबादीवाला यह देश रामायण के साथ जुड़ी अपनी इस सांस्कृतिक पहचान के साथ बहुत ही सहज है। जैसे वह समझता हो कि धर्म बस इन्सान की कई पहचानों में से एक पहचान है। इस बारे में एक दिलचस्प किस्सा और सुनने को मिलता है। बताया जाता है कि इंडोनेशिया के पहले राष्ट्रपति सुकर्णो के समय में पाकिस्तान का एक प्रतिनिधिमंडल इंडोनेशिया की यात्रा पर था। इसी दौरान वहाँ पर रामलीला देखने का मौका मिला। प्रतिनिधिमंडल में गए लोग इससे हैरान थे कि एक इस्लामी गणतंत्र में रामलीला का मंचन क्यों होता है। यह सवाल उन्होंने राष्ट्रपति सुकर्णो से भी पूछा। उन्हें फौरन जवाब मिला कि 'इस्लाम हमारा धर्म है और रामायण हमारी संस्कृति।' मैं समझता हूँ अब आपके सवाल का जवाब भी आपको मिल गया होगा। वैसे

तो हमारी भारतीय संस्कृति प्रारंभ से ही गंगा-जमुनी तहजीब की हिमायती रही है, लेकिन इस उत्तर से आपको यह पता चल गया होगा कि 90 प्रतिशत मुस्लिम धर्मावलंबीवाले देश इंडोनेशिया में भी गंगा-जमुनी तहतीज के लोग हिमायती हैं।

(१०)प्रश्न: पिछले दिनों इस्लाम न केवल हिंसा के मुद्दे पर, बल्कि महिलाओं के प्रति अपने व्यवहार को लेकर भी चर्चा में रहा है। इस बात का हवाला खासकर पश्चिमी देशों में सबसे ज्यादा दिया जाता है कि इस्लाम का आधार 'कुरान' और 'कुरान' मूल रूप से औरत विरोधी है, लेकिन क्या यह बात सच है? चार शादियों पर कुरान में क्या कहा गया है?

उत्तर: नहीं, कुरान स्त्री विरोधी नहीं है। दरअसल, पूरी दुनिया में इस्लाम का जो चेहरा दिखता है, सच तो यह है कि वह 'वहाबी' तहजीब का इस्लाम है, जिसमें हिंसा, जिहाद और औरतों को कमतर इनसान समझना ही इस्लाम का असली रूप समझाया गया है। 1973 के बाद से पूरी दुनिया में बढ़ती तेल की कीमतों के फायदे और 1979 में ईरानी क्रांति के बाद शिया-सुन्नी के टकराव के बीच सऊदी अरब ने वहाबी मत को अपने फायदे के लिए पूरी दुनिया में ताकत के साथ फैलाया। इसका यह असर बन गया कि वहाबी मत ने कुरान की परिभाषा को अपने हिसाब से तोड़ा-मरोड़ा इसमें कोई दो राय नहीं, लेकिन यह बात सबको समझने की जरूरत है कि यह इस्लाम का असली चेहरा नहीं है।

एक दौर तो ऐसा भी आ चुका है कि जब वहाबियों को मक्का में घुसने नहीं दिया जाता था, क्योंकि उनके नजरिए का इस्लाम मक्का को पसंद नहीं था। जिमाउदीन सरदार अपनी किताब 'मक्का : द सेक्रेड सिटी' में लिखते हैं कि मिस्र में जब तक मुहम्मद अली काबिज था और आधीन मक्का की देखरेख थी, वहाबियों को इस्लाम को बदनाम करने वालों की तरह देखा जाता था।

कोई भी धर्म या मजहब जब अपना आधार सीमित करता है, तो उस मजहब के ठेकेदार सबसे पहले औरतों पर ही पाबंदी लगाते हैं। चाहे हिंदू हो या इस्लाम हो या फिर और कोई धर्म औरतों पर पाबंदी लगाने के लिए इस्लाम में कुरान और हदीस का हवाला दिया जाता है।

इस्लामिक विदूषी लैला अहमद अपनी किताब 'वुमन एंड जेंडर इन इस्लाम' में लिखती हैं कि 20वीं शताब्दी से पहले इस्लाम में औरतों की

जिम्मेदारी की चर्चा तो होती थी, लेकिन उनकी हालत का जिक्र नहीं होता था। इसी प्रकार विद्वान अब्देल हलीम ने कहा है कि 'अपने खुदा में अगर आप यकीन रखते हैं तो ये समझ लें खुदा ने औरत और मर्द को एक ही आत्मा का हिस्सा माना है।' अब्देल हलीम ने औरतों के मामले में कुरान में दर्ज 114 सुराओं का जिक्र किया है और उनकी नए सिरे से व्याख्या की है।

इस्लाम के अंदर एक ही मर्द को कई शादियों के हक को लेकर भी अक्सर विवाद होते रहते हैं, लेकिन सच्चाई है कि ये व्यवस्था अनाथों के हक के संदर्भ में बनाई गयी थी। कुरान के मुताबिक अगर कोई अनाथ लड़की के साथ संबंध नहीं रख सकता, तो उसे अपने हिसाब से चार शादियों का हक है, लेकिन शर्त यह है कि वह सभी के साथ समान भाव रखे। अगर ऐसा नहीं है, तो उसे सिर्फ एक शादी का ही हक है या फिर उसे अपनी गुलाम से शादी कर लेनी चाहिए। दरअसल, इस्लाम के आने के पहले अरब अलग-अलग कबीलों में बँटा हुआ था। इस्लाम में इसे दौर-ए-जाहिलिया अनभिज्ञता का युग कहा जाता है। उस दौर में लूटमार, हिंसा का ये आलम था कि औरतें या तो कम उम्र में विधवा हो जाती थीं या फिर गुलाम बना ली जाती थीं। कुरान में अनाथों, गुलामों से शादी या फिर चार शादी का रिवाज उस दौर के हिसाब से ही बनाया गया था। हालांकि मुस्लिम मजहबी और शरीयत के हिसाब से उलेमा दुनिया भर में इस बात को सिर्फ इस हिसाब से जायज ठहरा देते हैं कि हर मुस्लिम चार शादी का हक रखता है, लेकिन वास्तव में कुरान इस बात का आदेश बिल्कुल नहीं देता।

(११)प्रश्नः क्या आतंकवाद मजहब के सियासी इस्तेमाल की उपज है?

उत्तरः मजहब ही नहीं, मजहब के सियासी इस्तेमाल की उपज है आतंकवाद। सच मानिए इस्लाम की कोख से आतंकवाद की पैदाइश नहीं हुई। सबसे पहले तो मैं आपको यह बता दूँ कि मजहब प्रेम करना सिखाता है और 'इस्लाम' का सलाम सबकी सलामती का मायने रखता है। जरा आप इस शेर को देखें-

एक को दूसरे मजहब से लड़ाना
खुदा का काम नहीं
सलामती सबकी न चाहे जो
वो इस्लाम नहीं।।

पर इतिहास गवाह है इस हकीकत का कि अपना सियासी दबदबा कायम करने के लिए इस्लाम को हथियार की तरह इस्तेमाल करने की

फिराक में लगा सीरिया का तत्कालीन अधिनायक यजीद बौखला उठा, जब हजरत मुहम्मद ने इस्लाम की कमान उसे सौंपने से इनकार कर दिया। हजरत मुहम्मद साहब के अजीज रिश्तेदार हजरत हुसैन को उनके बेहतर परिजनों समेत उसने निहायत बेरहमी से मौत के घाट उतार दिया कर्बला के मैदान में।

हजरत हुसैन के भाई अब्बास और 18 वर्ष के उनके बेटे अली अकबर के छः महीने के प्यास से तड़पते बच्चे तक को तड़पा-तड़पा कर मारा यजीद के चमचों ने। इतिहास साक्षी है कि हजरत हुसैन के बीमार बेटे जैनुल आबदीन और उनके परिवार की तमाम औरतों को गिरफ्तार करके और सबके हाथों में रस्सियाँ बाँधकर बेपर्दा घुमाया था कूफा और शाम के बाजारों में यजीद के सैनिकों ने। इस्लाम के इसी यजीदवादी आतंक की याद में हर वर्ष मनाया जाता है मुहर्रम।

जाहिर है इस इतिहास से कि इस्लाम का गहरा और दर्दनाक तालुक है मजहबी आतंकवाद से, यद्यपि इस्लाम की कोख से पैदा नहीं हुआ आतंकवाद। जीत उस दिन होगी मजहब की, जिस दिन खात्मा हो जाएगा मजहब के नाम पर चलाए जाने वाले यजीदवादी मजहबी आतंकवाद का। अलकायदा और लश्कर-ए-तोयबा जैसे यजीदवादी आतंकी संगठन अल्लाह और इस्लाम के नाम पर तो अल्लाह और इस्लाम का गला काटते हैं।

तकलीफ होती होगी अल्लाह को यह देखकर कि खुद को पाक कहने वाला पाकिस्तान आतंकवाद का कारखाना-सा हो उठा है और एक-एक हुक्मरान सीरिया के आतंकवादी बादशाह सजीद की औलाद-सा दिखाई देता है। पर अल्लाह की शान और मर्जी के खिलाफ कोई यजीद और पाकिस्तानी आतंकवाद कायम नहीं रह सकता इस दुनिया में। मौलाना अबुल कलाम आजाद ने अपनी किताब 'तजुमानुल' में लिखा है कि 'खुदा की मुहब्बत की राह उसके बंदों की मुहब्बत में से गुजरती है। जो इंसान चाहता है कि खुदा से मुहब्बत करे, उसे चाहिए कि उसके बंदों से मुहब्बत करना सीखे।'

(१२)प्रश्नः क्या तीन तलाक धार्मिक रीति-रिवाज या उपासना पद्धतियों का विषय है? क्या वास्तव में तीन तलाक से मुस्लिम महिलाओं के मौलिक अधिकारों का हनन नहीं होता है?

उत्तर: तीन तलाक धार्मिक रीति-रिवाज या उपासना पद्धतियों का विषय नहीं है। वास्तव में देखा जाए तो तीन तलाक से भारतीय संविधान में प्रदत्त सभी देशवासियों की समान मौलिक अधिकारों खासतौर पर मुस्लिम महिलाओं के मौलिक अधिकारों का हनन होता है।

दरअसल तीन तलाक पर सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्र सरकार द्वारा प्रस्तुत शपथ पत्र और विधि आयोग द्वारा समान नागरिक कानून पर माँगे गए सुझावों को लेकर मुस्लिम पर्सनल ला बोर्ड व अन्य मुस्लिम संगठनों ने जैसा तीखा विरोध किया है, उससे आने वाले समय की कुछ तस्वीरें झलक रही हैं। स्पष्ट है कि बोर्ड व अनेक मुस्लिम संगठन तीन तलाक को गैर कानून मानने और निकाह, तलाक आदि मामलों पर एक कानून बनाए जाने के किसी प्रयास को आसानी से स्वीकार नहीं करने वाले। हालांकि केंद्र सरकार ने समान नागरिक संहिता लागू करने की कोई बात नहीं की है। विधि आयोग ने केवल कुछ प्रश्न जारी कर उनका उत्तर माँगा है। ये प्रश्न भी केवल मुसलमानों से संबंधित नहीं है। लेकिन दूसरे किसी संप्रदाय की ओर से इसका विरोध नहीं हो रहा है। क्रेंद्र ने भी अपनी ओर से इन मामलों में पहल नहीं की है। यह पहल सर्वोच्च न्यायालय की ओर से हुई है।

शिया धर्मगुरुओं ने तीन तलाक की प्रथा को खत्म कर इससे संबंधित कानून बनाए जाने का समर्थन किया है। मुस्लिम समाज का इस मामले पर दो भागों में बँटना ही यह साबित करता है कि यह कोई कुरान या हदीस का मामला नहीं है। ऐसा होता, तो स्वयं को इस्लामिक मानने वाले दुनिया के 22 देशों ने इस अन्यायपूर्ण प्रथा-तीन तलाक का अंत नहीं किया होता। भारत तो ऐसे भी धर्मनिरपेक्ष या पंथ निरपेक्ष देश होने की वजह से संविधान के तहत चलता है। यहाँ किसी के धार्मिक रीति-रिवाज या उपासना पद्धतियों में सरकारें हस्तक्षेप नहीं कर सकतीं, पर जब भारतीय संविधान में लैंगिक समानता और मानवीय गरिमा का अधिकार दिया गया है तो उसका पालन करना भी सरकारों का दायित्व है।

ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने तीन तलाक पर जनमत संग्रह करवाने का सुझाव देकर अजीब स्थिति पैदा कर दी है जो आश्चर्यजनक है, क्योंकि जाति, छुआछूत, ऑनर किलिंग, सहजीवन शैली आदि जैसी सामाजिक कुरीतियों पर अगर जनमत संग्रह करवाया जाए, तो देश का आईना बदलना पड़ेगा।

मेरा मानना है कि तीन तलाक की व्यवस्था वर्तमान दौर के भारतीय समाज के साथ कदमताल नहीं कर सकती है, जैसे सैकड़ों शादियाँ करने वाला राजवंश आज के समाज में जी नहीं सकता। जागरूक मुस्लिम महिलाएँ भी तीन तलाक का मुखर विरोध करती हैं। क्या उनसे हम कहना चाहते हैं कि भारतीय लोकतंत्र के पास उनके लिए कोई जगह नहीं है? नागरिकता के

संदर्भ में सारे देश में सबको शरीक करने वाला एक ही संविधान चलेगा।

(१३)प्रश्न: भारत पर्व और राष्ट्रीय संस्कृति महोत्सव की कामयाबी के पीछे की कहानी क्या है?

उत्तर : भारतीय संस्कृति की अपनी एक महत्ता रही है और विविधता में एकता ही भारत की विशेषता है। यहाँ की गंगा-जमुनी संस्कृति ही भारत की असली पहचान है जिसमें हिंदू-मुस्लिम, सिख-ईसाई के अतिरिक्त बौद्ध एवं जैन धर्म के लोग एक साथ रहते हैं और भिन्न-भिन्न पर्व-त्योहारों को आपस में मिलजुल कर मनाते हैं। राष्ट्रीय संस्कृति महोत्सव की कामयाबी के पीछे की कहानी यह है कि यह महोत्सव देश भर के विविध लोककला, शिल्प, व्यंजन और परिधान को एक जगह पर देखने का सुअवसर मिलता है। देशभर के तकरीबन 2500 कलाकारों का यह कुंभ अद्‌भुत होता है। जम्मू-कश्मीर से लेकर कन्या कुमारी और गुजरात से अरुणाचल तक के सभी कलाकार एक साथ रहते हैं, एक-दूसरे को समझते हैं और एक-दूसरे से घुल-मिल जाते हैं। इसीलिए इस कार्यक्रम का ध्येय वाक्य है-'एक भारत-श्रेष्ठ भारत।' दिल्ली के बाद इस राष्ट्रीय संस्कृति महोत्सव का कार्यक्रम वाराणसी, बेंगलुरु, तवांग और जम्मू-कश्मीर में होगा।

(१४)प्रश्न : क्या आप इस बात से सहमत हैं कि फिल्म फेस्टिवल विभिन्न संस्कृतियों से परिचय कराता है? क्यों ?

उत्तर : हाँ, मैं आपकी इस बात से सहमत हूँ कि फिल्म महोत्सव विभिन्न संस्कृतियों से परिचय कराता है, वर्तमान दौर के भूमंडलीकरण के युग में आज जब लोग अपने राज्य को छोड़कर दूसरे राज्य जाते हैं, तब वो दूसरे राज्य के समाज और संस्कृति से अनभिज्ञ रहते हैं। यहाँ फिल्म ही ऐसा माध्यम है, जिसके जरिए दो राज्यों के बीच सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिचय मिलता है और उनकी संस्कृतियों को जानने-समझने का मौका मिलता है।

(१५)प्रश्न: भूमंडलीकरण और बाजारवाद के दौर में आज जब सामाजिक-सांस्कृतिक ताना-बाना नए सिरे से बुना जा रहा है तथा नैतिक जीवन-पद्धति ह्रासोन्मुखी दिख रही है तब सामयिक दृष्टि से क्या यह विचारणीय नहीं लगता कि संस्कार-संस्कृति और नैतिक शिक्षा के संदर्भो का पुनः आकलन किया जाए? आखिर क्यों?

उत्तर: हाँ, भूमंडलीकरण और बाजारवाद के दौर में आज जब सामाजिक सांस्कृतिक ताना-बाना नए सिरे से बुना जा रहा है तथा नैतिक

जीवन-पद्धति ह्रासोन्मुखी दिख रही है, तब सामयिक दृष्टि से यह विचारणीय हो उठा है कि संस्कार-संस्कृति और नैतिक शिक्षा के संदर्भो का पुन: आकलन किया जाए, क्योंकि हमारे यहाँ संस्कार शब्द का प्रयोग व्यक्ति की उन सामाजिक आचरण संबंधी विशेषताओं की समष्टि के लिए किया जाता है जो उसे सम्बद्ध समाज का शिष्ट अंग बना देते हैं। संस्कार इस प्रकार व्यक्ति निष्ठ होते हुए भी व्यक्ति विशेष को सामाजिक अस्मिता प्रदान करता है तथा इसी की वजह से हम उसे संस्कारवान या संस्कारहीन मानते हैं। ये ही संस्कार समाज या समुदाय विशेष से समष्टि रूप में जुड़कर संस्कृति नाम से अभिहित किए जाते हैं।

आधुनिक वर्तमान काल में राजनीतिक-सामाजिक संस्थागत सक्रियता द्वारा आर्थिक स्थिति में परिवर्तन दृष्टिगत होता है। ऐसे संस्थागत नियम या कानून बनाए जाते हैं जो व्यक्ति या समाज की आर्थिक-सांस्कृतिक जीवन में अंतर ला दे और उसे उन्नति की ओर ले जाए। कुछ इसी दृष्टिकोण से मौजूदा दौर में यह विचारणीय हो उठा है कि संस्कार-संस्कृति और नैतिक शिक्षा के सन्दर्भो का पुन: आकलन किए जाने की आवश्यकता है।

(१६)प्रश्न: भाषाओं, बोलियों, सम्प्रदायों, जातियों, धर्मों, खानपान, रहन-सहन और अनेक भौगोलिक विभिन्नताओं के बावजूद भारतवासी एकता स्थापित कर एक राष्ट्र बन गए और आजादी के सत्तर साल बीत जाने के बावजूद इसकी एकता और अखंडता अक्षुण्ण कैसे है?

उत्तर: हाँ, डॉ. अमलेश जी, आपने सही कहा और इसको लेकर तमाम देशों को हैरानी है कि आखिर भाषाओं, बोलियों, सम्प्रदायों, जातियों, धर्मों, खानपान, रहन-सहन और अनेक भौगोलिक विभिन्नताओं के बावजूद भारतवासी एकता स्थापित कर एक राष्ट्र बन गए और अपनी आजादी के सत्तर साल बीत जाने के बाद इसकी एकता और अखंडता अक्षुण्ण हैं जबकि पड़ोसी देश पाकिस्तान का एक बड़ा हिस्सा उससे अलग हो गया। बांग्लादेश निर्माण के बाद भी बलूचिस्तान, पख्तूनिस्तान और सिंध अपनी आजादी के लिए आवाज उठाते रहते हैं। इसी प्रकार प. एशिया अनेक छोटे-छोटे मुस्लिम राष्ट्रों में बंटा हैं और हमेशा उसके बीच मारकाट जारी रहती है। यही नहीं ईसाई बहुल यूरोप में भी तमाम समानताएँ हैं, लेकिन ईसाई मत भी उन्हें जोड़े रखने में नाकाम रही। फिनलैंड, आस्ट्रिया, चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया, पोलैंड, हंगरी, लाटविया, लिथुआनिया और एस्टोनिया जैसे नए राष्ट्रों ने जन्म लिया। रूस भी पन्द्रह राष्ट्रों में बंट गया।

भारत विभिन्न संस्कृतियों के बीच रहकर कैसे मेल-मिलाप के साथ रहा जा सकता है, यह कोई भारत से सीखे। बहुसंस्कृतिवाद के साथ भारत ने जो एकता वैदिक युग से बनाए रखी है, उसकी प्रमुख वजह यह है कि इस देश की संस्कृति की प्रमुख धारा ने सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया है। भारतीय जिस धर्म को मानते हैं उसका संबंध नैतिक मूल्यों और आचरण से है। इस देश के धर्म अलग करने में नहीं, बल्कि सबको जोड़ने में विश्वास करते हैं। यही कारण है कि प्रबुद्ध मुस्लिम भी यह मानने लगे हैं कि मुस्लिम समाज को भारत में चिंता करने की कोई बात नहीं, क्योंकि देश की बहुसंख्यक जनता हमेशा से सहिष्णु और उदार रही है।

इसके अतिरिक्त भारत में कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धांत, विशाल एवं श्रेष्ठ संस्कृत साहित्य, बदरीनाथ से लेकर रामेश्वरम् जैसे तीर्थस्थल और गंगा, यमुना से लेकर गोदावरी और कावेरी जैसी तमाम नदियों को पवित्र माना जाता है। ये सभी कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिसने भारत की एकता और परंपरा को अक्षुण्ण बनाए रखा है। आखिर तभी तो मेगस्थनीज और ह्वेनसांग जैसे विदेशी यात्रियों को कश्मीर से कन्याकुमारी तक एक ही भारत दिखाई पड़ा था। इस प्रकार भारत को जोड़ने में धर्म व संस्कृति की बड़ी भूमिका रही जिसका साहित्य संस्कृत भाषा के वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, चरक का चिकित्सा विज्ञान और सुश्रुत का गणित ने अहम योगदान दिया।

(१७)प्रश्न: सामंती और साम्राज्यवादी ताकतों के विरूद्ध एकजुट सांस्कृतिक अभियान के लिए क्या किया जा सकता है?

उत्तर: मेरा ख्याल है कि आज भारत जैसे पिछड़े एवं पूँजीवादी देशों में भी सामंतवाद मात्र एक अवशेष रह गया है जिसने अधिकांश सामंती मूल्यों और संस्कृति को सहयोजित (कोऑप्ट) कर लिया है। आज संस्कृति के मोर्चे पर भी लोगों को इन चीजों के विरूद्ध संगठित करना होगा। इसको एक व्यापक जनांदोलन का रूप देना होगा, विविध साहित्यिक गतिविधियों के साथ-साथ जाति विरोधी, धार्मिक कट्टरता विरोधी जनांदोलन करने होंगे तथा जनता के बीच वैकल्पिक मीडिया और सांस्कृतिक तंत्र की विविध संस्थाएँ खड़ी करनी होंगी।

(१८)प्रश्न: भारतीय सभ्यता-संस्कृति का भव्य महल संस्कारों, आदर्शों, जीवन मूल्यों की मजबूत नींव पर निर्मित हुआ था। संयुक्त परिवार व्यवस्था इन संस्कारों को पुष्ट करने के लिए वातावरण का निर्माण करती थी। मगर आज भारतीय समाज व्यवस्था के साथ-साथ समग्र

जीवन शैली एवं मानवीय मूल्य दम तोड़ते दिखाई दे रहे हैं, सब पर कुठाराघात हुआ है। इस पर आप हमें क्या-कुछ कहना चाहेंगे?

उत्तर: यह सही है कि 'सत्मेव जयते', 'अहिंसा परमोधर्मः', 'मातृ देवो भव', 'अतिथि देवो भव', 'परोपकाराय पुण्याय, पापाय परपीड़नम्', 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई', आदि वाक्य भारतीय जीवन मूल्य होने के नाते अनेकता में एकता के सूत्र थे। 'सादा जीवन उच्च विचार, 'जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान' जैसे कथन मनुष्य को सरल, सहज जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करते थे। इसी कारण भारत को 'विश्व गुरु' तथा 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था। किंतु समय के साथ स्थितियाँ बदलीं, भौतिक विकास की अँधी दौड़ ने सबको धराशायी कर दिया और अर्थ ही सबसे बड़ा जीवन-मूल्य बनकर उभरा। विद्वान के नित नए अविष्कार, बढ़ती महत्वाकांक्षाएँ, मशीनी जीवन की आपाधापी ने मनुष्य को आत्मकेंद्रित, स्वार्थी, भ्रष्ट, क्रोधी तथा अहंकारी बना दिया। ऐसी विषम परिस्थिति से हम विचार करें कि भौतिक विकास, प्रतियोगिता एवं आधुनिकता की इस अँधी दौड़ में हमने क्या खोया और क्या पाया। हम कहीं अपने खरे सोने को छोड़कर पीतल तो एकत्र नहीं करने लग गए हैं? घर-परिवार और बच्चों रूपी असली पूँजी को गंवाकर नकली नोट तो नहीं जुटा रहे? इन सभी प्रश्नों के उत्तर हमें ढूँढ़ने होंगे। आज आवश्यकता है संतुलित एवं समग्र दृष्टि के विकास की।

जब हमारी नजर गाँव पर जाती है तो हम पाते हैं कि गाँव को लेकर जो एक रोमानी (Romantic) अवधारणा हमारे मानस में पलती रही थी, उसे उत्तर आधुनिक युग ने ध्वस्त कर दिया है। आज गाँवों की न केवल संस्कृति और संस्कार बदल गए हैं, बल्कि वहाँ भी आँगन में दीवारें खड़ी होने लगी हैं। ऐसी स्थिति में खून के पवित्र रिश्ते भी स्वार्थो से तय होने लगे हैं। बाजारवादी प्रवृत्तियों ने मानवीय संबंधों को बेमतलब बना दिया है। यहाँ बाजार के हिसाब से क्रेता और विक्रेता केवल यही दो रिश्ते पनपते हैं। यह हमारे समय की घोर त्रासदी है।

(१९)प्रश्नः 'वसुधैव कुटुम्बकम' के भारतीय चिंतन को त्यागकर हम विश्वग्राम के बाजार में भटक रहे हैं। क्या इस पर आप अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करेंगे?

उत्तर: हमारी एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत रही है जिसके मूल में 'वसुधैव कुटुम्बकम' तथा 'अयं निजः परोवेति, गणना लघुचेतसाम' जैसे चिंतन और

आदर्श रहे हैं जो मानवीय जीवन के सरोकारों को निदेर्शित भी करते रहे हैं। मगर इन आदर्शो को त्यागकर हम आज विश्वग्राम (Global Village)के बाजार में भटक रहे हैं। नि:संदेह विश्वग्राम की अवधारणा ने हमारे घर, हमारे गाँव को कहीं का नहीं रहने दिया है। संयम, सादगी, सदाचार, संतोष, स्वाभिमान और अनुशासन को छोड़कर हमने तड़क-भड़कवाली ज़ीवन-शैली अपनाई है, उसने हमें स्वार्थपरता, उदंडता, उद्धतता और अनुशासनहीनता के रास्ते पर धकेल दिया है। यह फैलते जा रहे बाजारवाद का अभिशाप है। हम नहीं सोच पा रहे कि नई पीढ़ी को हम किस दिशा में ले जा रहे हैं। यह एक खतरनाक रास्ता है जो हमारे भविष्य को चौपट करके रख देगा। इस भागमभाग में हमारा क्या छूट रहा है, हमें पता ही नहीं चल पा रहा। ऐसे वक्त हमें अपनी दशा और दिशा बदलने का कोई उपाय तत्काल सोचना चाहिए।

(२०)प्रश्नः संस्कार, संस्कृत और संस्कृति- यह तीनों अस्मिता की त्रिवेणी है। इन तीनों के समन्वय से अस्मिता मूल्यों से ओत-प्रोत होती है आज के समाज के परिप्रेक्ष्य में इस पर आपके विचार से हम अवगत होना चाहेंगे।

उत्तर: डॉ. अमलेश वर्मा जी, आपने ठीक कहा है कि अस्मिता की त्रिवेणी संस्कार, संस्कृत और संस्कृति है। इन्हीं तीन पदों में अस्मिता, जीवन, समाज और मूल्यों का समाहार किया जा सकता है। संस्कार में वे सब मूल्य निहित हैं जो हमने इतिहास की विराट यात्रा में पाए हैं। इन्हें बौद्ध परिभाषा में 'आलय-विज्ञान' कहा जाता है। संस्कारों की वाहिनी वाणी संस्कृत भाषा है। संस्कृति चिंतन, मनन, ध्यान आदि की साकार अभिव्यक्ति है। इसमें साहित्य एवं संगीत का वाचिक तत्व, प्रतिमाशिल्प, स्थापत्य का दृश्य तत्व, नाटक, नृत्य अभिनय का क्रिया तत्व और अनेक अन्य कायिक रूप हैं। इन तीनों के समन्वय से अस्मिता मूल्यों से ओतप्रोत होती है। संस्कृति दिक्काल की पुत्री है। मूल्य उससे अभिप्रमाणित हैं।

मौजूदा दौर के समाज के परिप्रेक्ष्य में जब हम अस्मिता की त्रिवेणी को देखते हैं, तो पाते हैं कि समाज से आज संस्कार, संस्कृत और संस्कृति गायब होती जा रही हैं। दरअसल संस्कृत में ही संस्कार और संस्कृति निहित है। जब संस्कृत भाषा ही विलुप्त होती जा रही है, तो उसके साथ संस्कार और संस्कृति का तिरोहित होते जाना स्वाभाविक है। यही कारण है कि भारतीय समाज में आज विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ और कुप्रवृत्तियाँ बढ़ती जा

रही हैं। रिश्ते-नाते में दरारें पड़ती जा रहीं हैं। ऐसी परिस्थिति में हमें संस्कार, संस्कृत और संस्कृति जैसे विभिन्न मूल्य-सरिताएँ स्वीकार करनी होगी। विभिन्न समुदायों को अपनी संस्कृति के साथ अन्य संस्कृतियों का आदर करना होगा। बहुवाद भारत की धरोहर है और वह सबको स्वीकार करना होगा। विशिष्ट अधिकार की आड़ में, संख्या के छद्म भेष में किसी मूल्य-पद्धति का निरादर नहीं किया जा सकता। आधुनिकता के नाम पर पश्चिमी भोगवाद को मानवता के विरूद्ध विविध मूल्यों को रौंदने की इजाजत नहीं दी जा सकती।

(२१)प्रश्नः व्यावसायीकरण का शिकंजा बढ़ने से कला-संस्कृति कहाँ तक प्रभावित हुई है? ऐसे वक्त कला-संस्कृति से जुड़े बड़ों का क्या दायित्व हो जाता है?

उत्तरः व्यावसायीकरण का शिकंजा बढ़ने से कला-संस्कृति बाजारू होती जा रही है जिसके परिणामस्वरूप कला की बारीकियाँ, गहराई, नफासत, सौंदर्य और तजहीब तिरोहित होती जा रही है। यही कारण है कि आज की पीढ़ी के कलाकार घंटों गा-बजाकर भी श्रोताओं पर अपना प्रभाव नहीं छोड़ पाते। पुरानी पीढ़ी के संगीतकार चंद मिनटों में ही सुनने वाले को अपनी गिरफ्त में ले लेते थे।

दरअसल, इक्कीसवीं सदी का यह दौर भी उपभोक्तावादी संस्कृति का वीभत्स दौर है जो पिछली सदी के अपराह्न से विरासत में मिला है, जिसका शिकार कला-संस्कृति से जुड़ी नई पीढ़ी है। सब कुछ झटपट पा लेने की हवस ने उसे कला व संस्कृति के उस असली लावण्य से बहुत दूर कर रखा है जो हिंदुस्तानी संगीत अथवा भारतीय संस्कृति की उष्मा-शोभा है। सच कहा जाए, तो 'जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ' की कहावत पर से नई पीढ़ी का विश्वास उठ गया है। वक्त बड़ी तेजी से भाग रहा है। गहराई में डूबकी लगाना नई पीढ़ी को रास नहीं आ पा रहा है। अनिश्चितता से घिरा वह आशंकित है। इसलिए समय की माँग है कि कला व संस्कृति की दुनिया से जुड़े बड़े और नामी-गिरामी लोगों को नई पीढ़ी में आत्मविश्वास जगाने का दायित्व भाव से करना होगा, ताकि भटकाव की स्थिति से उबर कर वह अपनी मंजिल हासिल कर सके।

नई पीढ़ी शॉट-कट से ही मंजिल हासिल करना चाहती है। संघर्ष करने नहीं चाहती, पर सोना तो तपकर ही कुंदन बनता है। गुलाब की पंखुड़ियाँ एक लंबी प्रक्रिया से निकल कर ही रूह बनती हैं जिसकी खूशबू से माहौल

में ताजगी आती है। नई पीढ़ी के कलाकार तपना नहीं चाहते। इसलिए इनमें तेजस्विता और प्रखरता नहीं आ पाती जो पुरानी पीढ़ी के कलाकारों व संगीतकारों में परिलक्षित होती थी।

(२२)प्रश्नः आप प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक रहे हैं और इस विचारधारा का असर आपके साहित्य में भी देखने को मिलता है। इसके क्या कारण हैं?

उत्तरः हाँ, डॉ. ब्रह्मचारी जी, मैं प्रगतिशील विचारधारा का समर्थक रहा हूँ, क्योंकि प्रगतिशील विचारधारा के लोग कभी अपनी विचारधारा से समझौता नहीं करते। वैसे सच कहा जाए, तो मैं समाजवादी विचारधारा का पोषक हूँ और यही विचारधारा समतावादी समाज की पक्षधर है। आम आदमी को अगर समाज में समानता न मिले तो उसका जीवन दूभर हो जाता है। समाजवादी विचारधारा के पक्षधर होने की वजह से मेरे साहित्य में प्रगतिशील विचारधारा का समावेश स्वाभाविक है।

(२३)प्रश्नः किसी भी राष्ट्र की एकता और अखण्डता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए देश में एक भाषा, एक राज्य, एक संस्कृति और एक आर्थिक प्रणाली की जरूरत होती है। देश के मौजूदा परिदृश्य में राष्ट्र की एकता और अखण्डता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए क्या ये कारक उपस्थित हैं? यदि नहीं, तो क्यों?

उत्तरः स्वतंत्रता-संघर्ष के दौरान हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने देश के भविष्य के बारे में अनेक सपने संजोए थे। लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल ने भारत के सैकड़ों छोटे-बड़े टुकड़ों में बँटे भूखण्डों और देशी रियासतों को जोड़कर एक देश, एक राष्ट्र की मर्यादा में इसे बाँधा, मगर त्रासद स्थिति यह है कि आज हमारा समाज इतने टुकड़ों में बँट गया है कि एक संपूर्ण राष्ट्र की कल्पना करना भी व्यर्थ प्रतीत होने लगा है। हम शायद यह भूलते जा रहे हैं कि स्वस्थ समाज के बिना एक सबल, समृद्ध व अखण्ड राष्ट्र के निर्माण का सपना, जो सरदार पटेल का था कतई संभव नहीं दिखता।

दरअसल, देशभक्ति राष्ट्रीय भावना मुक्ति ही स्वातंत्र्योतर भारत की राष्ट्रीय भावना का आधार है। इसी को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान की प्रस्तावना में स्वतंत्रता और समता के साथ बंधुता का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि वह व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चत करने के लिए है।

राष्ट्र की एकता भी मजबूत हो सकती है और अखण्डता को भी

अक्षुण्ण बनाए रखा जा सकता है, जब देश में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उचित सम्मान मिले और साथ ही भाईचारें का विकास हो। मुश्किल यह है कि हमारे मन में आज राष्ट्रीयता की चेतना कोई निश्चेष्ट भावना नहीं है, बल्कि एक अत्यंत गतिमान, उत्तेजक तथा स्फुर्तिदायक चेतना है, जो मनुष्यों को अपने राष्ट्र के उत्थान एवं समृद्धि के लिए संगठित रूप से प्रयास करने हेतु प्रेरणा प्रदान करती है। मगर दुखद स्थिति यह है कि राष्ट्रीयता की भावना का देशवासियों में तेजी से ह्रास होता जा रहा है। आखिर तभी तो यह देश अंत:वाह्य समग्रत: एक विस्फोटक उथल-पुथल से व्याप्त हो रहा है। इसके अपकारक तत्व देश के बाहर ही नहीं, देश के भीतर ही विद्यमान एवं गर्जमान दीख रही रहे हैं। चाहे राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रश्न हो, चाहे भारतीय संस्कृति का प्रत्येक स्तर पर केवल विनाशक, विरोध एवं विद्रोह की ही आग लगी हुई है।

किसी भी राष्ट्र की एकता और अखण्डता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए वहाँ के नागरिकों की राष्ट्रीय चेतना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और इस राष्ट्रीय चेतना को बाँधे रखने के लिए वहाँ के लोगों में सांस्कृतिक और भावनात्मक एकता के सूत्र होने चाहिए। यह सब आज गायब दिखता है। राष्ट्रीय एकता इस वक्त एक अजीब स्थिति में है। वह जातियता, सांप्रदायिकता, भाषावाद और क्षेत्रीयता के कई सिरों की ओर खींची जा रही है। दरअसल व्यक्तिवादी स्वार्थी प्रवृत्ति की वजह से ही जातिवाद, संप्रदायवाद, भाषावाद और क्षेत्रवाद की प्रवृतियाँ निरंतर बढ़ रही हैं और राष्ट्रीय भावना, नैतिकता तथा आदर्श चरित्र के संकट के क्षण का पीड़ा भोग रही है। यही नहीं देश की एकता, समरसता भी चरमरा रही है, यही देश की एकता, समानता तथा मानवीय प्रेम और सौहार्द में विषैले बीज बो रहा है। राष्ट्रीय एकता के समक्ष खड़ी इन चुनौतियों का समाधान ढूँढ़ना होगा, क्योंकि इस देश की एकता और संस्कृति को उन लोगों के हाथों नष्ट नहीं देखा जा सकता, जो येन-केन-प्रकारेण राष्ट्र के योग्य विधाता बन बैठे हैं। यदि यह भूल हो गई, तो राष्ट्रभक्त राष्ट्र को संवारते रहेंगे और राजनीतिक माफिया और देशद्रोही ताकतें अपने हित में उसे नष्ट करते रहेंगे। ऐसे वक्त मुझे याद आती हैं कवि देवराज की ये पंक्तियाँ जिसे उन्होंने अपनी 'तेवर' शीर्षक कविता में कही हैं-

'मरेंगे और मारेंगे, मगर कटने नहीं देंगे,
कि विरवा देश का हमने बड़े मन से लगाया है।'

(२४)प्रश्नः क्या आप ऐसा मानते हैं कि लोक चेतना ही भारतीय संस्कृति का मूल उत्स रही है? लोक-चेतना को अभिव्यक्ति देने में लोक साहित्य की कितनी भूमिका होती है?

उत्तर: हाँ, मैं मांनता हूँ कि लोक चेतना ही भारतीय संस्कृति का मूलं उत्स रही है। सच तो यह है कि भारतीय अस्मिता का पर्याय भी लोक ही है। अपनी लोक संपृति की वजह से ही भारतीय जीवन की असफलता का नैरंतर्य अनेक सांस्कृतिक हमलों के बीच भी जीवित रह सका है। इसलिए लोक में निहित उर्जा को स्वीकार करना होगा। व्यावसायिकता की आँधी के लोक गीतों की स्थानांतरण चारिणीशक्ति की प्रक्रिया है। इसलिए जरूरत यह है कि आम आदमी अपने देशी यथार्थ लोकलय को समझे और इसे छिन्नमूल होने से बचा या बचाया जा सके।

(२५)प्रश्नः आपकी रचनाओं के पढ़ने से तथा आपसे बात-चीत करने से यह समझना सरल हो जाता है कि भारतीय भाषा एवं भारतीय संस्कृति के प्रति आपका गहरा लगाव है। भारत की भाषाओं और संस्कृति के संबंध में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर: भाई अखिलेश जी, इसके पूर्व कि मैं भारतीय भाषा और भारतीय संस्कृति के संबंध में अपने विचार से आपको अवगत कराऊँ, मैं आपको बताना चाहूँगा कि फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मन, जापान, रूस, अमेरिका के लोगों में अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति जो समर्पण-भाव है, वह भारतीय जनमानस में नहीं है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है फ्रांसीसी तथा अँग्रेजी भाषा का विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक फैलता जाना, जबकि भारतीय भाषा और संस्कृति का फैलाव दूसरे देशों तक तो दूर रहा, अपनी ही जमीन से उखड़ता-सा लग रहा है। भारत आज अपनी भाषा और संस्कृति के दिवालिएपन को भी छिपा सकने में असमर्थ है। आज फ्रांस अपने देश में अँग्रेजी शब्दों के व्यवहार में लाए जाने पर रोक लगा रहा है वहीं भारत अपने नित्यप्रति के व्यवहार में अँग्रेजी शब्दों के प्रयोग को अपनी उन्नति करने का प्रमाण समझता है। मैं अँग्रेजी भाषा को ज्ञान प्राप्त करने का विरोधी नहीं हूँ, लेकिन जबर्दस्ती अँग्रेजी के शब्दों को खींचकर लाने का अवश्य विरोधी हूँ।

भारतीय भाषा और संस्कृति के साथ यहाँ का साहित्य समृद्ध है, किंतु अच्छे अनुवाद नहीं मिलते। चाहे भाषा हो या साहित्य यहाँ के साहित्यकारों में गुटबाजी और खेमेवादी का जहर खत्म नहीं हो पा रहा है।

यह दुख की बात है। दिनोंदिन बढ़ता अँग्रेजी भाषा व संस्कृति का प्रसार आज हिंदी भाषा व भारतीय संस्कृति के लिए गंभीर खतरा बन चुका है। लज्जाजनक बात यह है कि जानते हुए भी इससे मुक्त होने का न कोई प्रयास है और न ही हमारे अंदर इच्छाशक्ति। प्रगतिवादी कहलाने के लिए हम उस दौड़ में शामिल हो गए हैं जो हमें जड़मूल से उखाड़ने के लिए ही आयोजित की गई है। वस्तुतः हमलोग दोहरेपन की जिंदगी जीने को मजबूर हैं। मजबूर भी अपने ही कारण हैं। कहावत है–देसी मुर्गी विदेशी चाल– अँग्रेजी आती हो या नहीं, परंतु अपनी बोलचाल में अँग्रेजी के कुछ शब्दों का प्रयोग करके हम अपने को प्रगतिवादी तथा आमलोगों से विशिष्ट दिखाने का प्रयत्न करते हैं। वर्ष में एक दिन हिंदी दिवस मनाने की औपचारिकता निवाहने तक ही सरकारी कार्यालयों ने अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान ली है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर हिंदी को अपंग और बौना करार देते– यह दिल माँगे मोर जैसे विज्ञापन सरकारी नीति के दिवालिएपन को ही प्रदर्शित करते हैं। आज की स्थिति में अपनी राष्ट्रभाषा को उसका सम्मानपूर्वक स्थान दिलाने के लिए एक क्रांति अथवा आंदोलन की आवश्यकता है जिसके लिए दृढ़ इच्छाशक्ति जरूरी है।

(२६)प्रश्नः आमतौर पर लोग समझते हैं कि संस्कृति, कला और साहित्य तक ही सीमित है। आप इससे कहाँ तक सहमत हैं? यदि नहीं तो क्यों?

उत्तर: मैं नहीं समझता कि संस्कृति, कला और साहित्य तक ही सीमित है, बल्कि सच तो यह है कि संस्कृति का विस्तारित जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनाए जा रहे तौर–तरीकों तक होता है। वह तो मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्रिया–कलापों में समाहित है। व्यक्तिगत तौर–तरीके संस्कृति की पहचान नहीं बनते। यह समुदाय के सामूहिक प्रयत्नों की अभिव्यक्ति है जो स्वयं निरंतर विकसित होती हुई संस्कृति को भी विकसित करती है।

संस्कृति वर्जनाओं में नहीं जी सकती। वर्जनाएँ उसकी मृत्यु का कारण बन सकती हैं। वह तो विभिन्न समुदायों की परस्पर ग्रहनशीलता की प्रक्रिया में ही निरंतर परिष्कृत होती हुई विकसित होती है। इस दृष्टि से वह प्रवृत्तियों की परिष्कारक तो है, इस प्रक्रिया में उत्पन्न होने वाली विशेषताओं की संरक्षक भी है। संस्कृति की जीवंतता अन्य संस्कृतियों के साथ उसके मेलजोल और आदान–प्रदान में ही निहित हो। अपने में सिमटकर तो वह

कूप-जल ही बन सकती है। याद रहे रूका हुआ पानी घातक पानी होता है। बहता जल ही निर्मल होता है।

(२७)प्रश्नः राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में कहा है "अनेक संस्कृतियों और जातियों के मिलने से भारतीय संस्कृति में जो एक प्रकार की विश्वसनीयता उत्पन्न हुई, वह संसार के लिए सचमुच, वरदान है और पिछले दो सौ वर्षों से सारा संसार उसका प्रशंसक रहा है। इस पर आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तरः भारत एक विकासशील देश है जिसका संविधान इस सच्चाई को मानता है कि यह राष्ट्र एक भौगोलिक प्रभुता-संपन्न लोकतांत्रिक देश है, जिसमें कई धर्मों के अनुयायी, कई भाषाओं के बोलने वाले, कई संस्कृतियों के मानने वाले, विभिन्न रीति-रीवाजों को निभाने वाले लोग समान अधिकार से रहते हैं और उन्हें इन अधिकारों से धर्म, जाति, क्षेत्र अथवा भाषा के आधार पर वंचित नहीं किया जा सकता। भारत की अपनी एक संस्कृति है। इस संस्कृति का अपना एक वैशिष्ट्य है। इस संस्कृति के पास अपने कुछ आधारभूत सिद्धांत हैं, मूल्य हैं और अपना एक दर्शन है जिसका आधार है, भारत की यह विशिष्ट संस्कृति, धर्मो, भाषाओं और संस्कृतियों में समन्वय और सामंजस्य पर आधारित है। इसने विभिन्न जातियों का एक महाजाति के साँचे में ढाँलने तथा अनेक वादों, विचारों और धर्मो के बीच एकता लाने का प्रयास पुनः सभी युगों में किया है और इसकी प्रशंसा विश्व स्तर पर हुई है और आज भी हो रही है।

(२८)प्रश्नः संस्कृति की भारतीय अवधारणा क्या है?

उत्तरः संस्कृति की भारतीय अवधारणा व्यक्ति से लेकर समाज, राष्ट्र विश्व व प्रकृति एक एकात्मभाव के दर्शन कराती है। परस्पर समन्वय की प्रेरणा देती है। इसमें टकराव, संघर्ष तथा स्पर्धा के लिए कहीं स्थान नहीं है। भारतीय संस्कृति की यह विशेषता वास्तव में अद्भुत है। आखिर तभी तो बीसवीं सदी के अद्भुत विचारक और विश्व-मानवता के अपूर्व उपासक रोम्यों रोलों ने लिखा है कि "अगर इस धरती पर कोई एक ऐसी जगह है, जहाँ सभ्यता के आरंभिक दिनों से ही मनुष्यों के सारे अपने आश्रय और पनाह पाते रहे हैं, तो वह जगत हिंदुस्तान है।"

(२९)प्रश्नः इधर पिछले कई वर्षो से इस देश में हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन तथा बौद्ध धर्मों में स्पर्धा का भाव बढ़ा है। लोकतांत्रिकता और स्वतंत्रता के पक्षधर होने के नाते क्या आप ऐसा नहीं समझते कि

प्रत्येक प्रकार की इस कट्टरता और संकीर्णता को बहस और समीक्षा के दायरे में लाया जाए?

उत्तर: धर्मांध समय में धर्मनिरपेक्ष समीक्षा का विकास और कट्टरता एवं संकीर्णता पर बहस करना चुनौती भरा काम हैं खासकर तब जब हिंदुत्ववादी तत्व पंथनिरपेक्ष विचार को ही सागर में फेंक देने पर आजाद हो, फिर भी सर्कुलर विमर्श तो बनाए रखना समय की जरूरत और इसे बनाए रखना बड़ी बात है।

(३०)प्रश्नः शिक्षा के अतीत की तुलना में शिक्षा का वर्तमान परिदृश्य कोई खास उत्साह जगाता नहीं प्रतीत होता है। क्या पश्चिम की संस्कृति का सारतत्त्व शिक्षा-पद्धति में पहले से ही गुँथा हुआ था?

उत्तर: हाँ, मैं आपकी बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि शिक्षा के मामले में हमारा अतीत भले ही स्वर्णिम रहा हो, कभी विश्वगुरु बनकर दुनिया में ज्ञान का दीप प्रज्ज्वलित करने का श्रेय यहाँ के नालंदा, विक्रमशिला तथा तक्षशीला विश्वविद्यालय को भले ही प्राप्त हो रहा हो, पर इन महान उपलब्धियों के बावजूद उस अतीत की तुलना में हमारे शिक्षातंत्र का वर्तमान कोई खास उत्साह जगाता नहीं लगता। देश की भावी पीढ़ी को प्रशिक्षण और संस्कार मिल तो रहे हैं, पर उनमें समरूपता नहीं है। नालंदा विश्वविद्यालय में दूसरे देशों के छात्र शिक्षा ग्रहण करने आते थे। अध्यात्म से लेकर विज्ञान तक की शिक्षा को इस देश में अत्यधिक महत्ता प्राप्त थी, किंतु विदेशी आक्रमणकारियों के अनवरत हमलों ने देश की शिक्षा के ढाँचे को भारी क्षति पहुँचाई। नालंदा और तक्षशिला में खड़े खंडहर आज भी इस बात के गवाह हैं।

दरअसल, स्वातंत्र्योत्तर भारत के प्रयोंगों की भूल-भुलैया से गुजरती हुई शिक्षा और शिक्षा-नीति कई विडंबनाओं की शिकार हुई है। अनके प्रयोगों के बावजूद भी शिक्षा के उद्येश्यों और स्वरूप को लेकर कोई स्पष्ट अवधारणा अभी तक नहीं बन पाई है। आज की यह शिक्षा बेहतर नागरिक गढ़ने की प्रयोगशाला न होकर बेहतर नौकरशाह-लिपिक के उत्पादन का कारखाना हो गई है। यह स्थिति बेहद निराशा और कुंठा को जन्म दे रही है। हमारे शिक्षा केंद्र जो आज राजनीतिज्ञों की कुत्सित नीति के केद्र हैं भ्रष्ट और पैरवीकारों का रंगमंच बन कर रह गए हैं और जहाँ शिक्षा की अर्चना न कर पद और पैसों को नमन किया जाता है। इसका आधारभूत ढंग से नवीनीकरण और सुधारीकरण अति अनिवार्य हो गया है।

आपने सही कहा, पश्चिम की संस्कृति का सारतत्व शिक्षा-पद्धति में पहले से ही गुँथा हुआ था, जिसने भोगवाद के दर्शन और आचरण को प्रोत्साहित किया। विपुल उत्पादन और अधिकाधिक उपयोग यही उद्योगवाद का जीवनदर्शन है जिनसे आधुनिक शिक्षा का सांस्कृतिक चरित्र गढ़ा गया है। इंसान एक नागरिक की जगह उपयोग करने वाले यंत्र में रूपांतरित हो गया है। अँग्रेजी माध्यम के पब्लिक स्कूलों की शिक्षा से एक सांस्कृतिक प्रदूषण महसूस होता है जो हमें मानसिक रूप से गुलाम बनाए रखने में मदद करते हैं।

अध्याय: तृतीय
धार्मिक व अध्यात्मिक

(१)प्रश्न: क्या आप इस बात से सहमत है कि धार्मिकता में जितनी विकृतियाँ आ गई हैं उसे देखते हुए आस्तिक से नास्तिक भला?

उत्तर: सच कहा जाय तो जहाँ धर्म सबसे अधिक है, वहाँ तर्क भी सबसे ज्यादा होना चाहिए। धर्म का मतलब अँध-आस्था नहीं है। यह तर्कपूर्वक अपने देवी-देवताओं या अपनी धार्मिक पद्धति को चुनना है, लेकिन दुर्भाग्य यह है कि जहाँ धर्म होता है या धार्मिक प्रवचन, वहाँ तर्क सबसे कम होता है। भक्ति धर्म का पर्याय नहीं है। धर्म के बिना भी भक्ति हो सकती है। सबसे बड़ी बात तो यह है हम धर्म का चयन नहीं करते, धर्म ही हमारा चयन करता है। या यों कहा जाए कि हम कोई धर्म धारण नहीं करते, बल्कि धर्म ही हमें धारण करता है जबकि धर्म के बारे में कहा गया है धारयेति धर्मः। कोई भी मनुष्य हिंदू, मुस्लिम अथवा सिख या ईसाई पैदा नहीं होता, उसे हिंदू, मुस्लिम, सिख या ईसाई बनाया जाता है। इस तरह आस्तिकता अर्जित नहीं की जाती, बल्कि विरासत में मिलती है।

इसी प्रकार अगर कोई यह समझता है कि आस्तिकता भगवान या अल्ला का भय पैदा करती है और इस तरह बुराई को रोकती है, तो मुझे लगता है कि उसे यह भ्रम है और उसे इस भ्रम से तत्काल मुक्त हो जाना चाहिए, क्योंकि अधिकांश चोर, डकैत, भ्रष्टाचारी, घोटालेबाज, बाहुबली, शोषक, रिश्वतखोर और शराबखोर आस्तिक ही होते हैं। इसके ठीक विपरीत नास्तिक आदमी अनिवार्य रूप से अच्छा भले न हो, पर वह बहुत सारे भ्रमों से मुक्त होता है। आस्तिक भ्रम फैलाता है, नास्तिक भ्रम तोड़ता है।

इसलिए इस बात का कोई महत्व नहीं है कि आप आस्तिक हैं या नास्तिक। महत्व इस बात का है कि आपकी आस्तिकता आपको अच्छा आदमी बनाने में मदद करती है, तो मैं उसका स्वागत करता हूँ, लेकिन जब लोगों को धार्मिक स्थलों की यात्रा करने वालों को देखता हूँ तो मुझे निराशा इसलिए होती है कि उनमें से अधिकांश लोग तीर्थ से लौटकर बुरे-से-बुरे कार्यों में लिप्त पाए जाते हैं। यह कौन-सी आस्तिकता है? इसलिए आपकी इस बात से मैं सहमत हूँ कि आस्तिक से नास्तिक भला, क्योंकि वह किसी का नुकसान तो नहीं करता है।

(२)प्रश्नः विजयादशमी के दिन हर वर्ष प्रतीकात्मक रूप में रावण-पुतला का दहन अन्याय पर न्याय के विजय की उद्घोषणा की जाती है, पर क्या रावण आज भी जिंदा नहीं है? आज के इस खौफनाक और आततायी समय में क्या रावण को रावण ही नहीं जला रहा है?

उत्तर: भारतवर्ष वीरता और शौर्य की उपासना करता आया है और संभवत: इसी को ध्यान में रखकर दशहरे का उत्सव रखा गया है, ताकि व्यक्ति और समाज में वीरता का प्राकट्य हो सके। भगवान राम द्वारा रावण के दस सिरों को काटने के पश्चात् रावण की मृत्यु के रूप में राक्षस राज के आतंक की समाप्ति से है। यही वजह है कि विजयदशमी का दिन अन्याय पर न्याय के विजय के रूप में मनाया जाता है।

शारदीय नवरात्र के बाद दशमी को विजयदशमी के रूप में वर्षो से हर वर्ष रावण-पुतला का दहन कर अन्याय पर न्याय के विजय की उद्घोषणा की जाती है। इस अवसर पर दुर्गा की अष्टभुजा बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ बनाई जाती हैं जिसका मतलब आठ प्रकार की शक्तियों से हैं-शरीर बल, विद्या बल, चातुर्य बल, धन-बल, शस्त्र-बल, शौर्य बल, मनोबल और धर्मबल। इन आठ प्रकार की शक्तियों का सामूहिक नाम ही दुर्गा है। उक्त आठ शक्तियों से संपन्न समाज ही दुष्टताओं का अंत कर सकता है, समाजद्रोहियों को विनष्ट कर सकता है और दुराचारी षड्यंत्रकारियों का मुकाबला कर सकता है। दशहरे पर भगवान राम द्वारा रावण दहन कर विजय से मतलब है व्यक्ति के अन्दर परिवार एवं समाज में असुर प्रवृत्तियों को खत्म करना, क्योंकि वही असुर प्रवृत्तियों की वृद्धि ही अनर्थ पैदा करती है।

क्या व्यक्तियों के अन्दर विद्यमान असुर प्रवृत्तियों का विनाश होते आप देख रहे हैं? क्या रावण आज भी जिंदा नहीं है? ये सारे प्रश्न आज आपके सामने खड़े हैं जिसके उतर हमें ढूँढने हैं।

राम और रावण मात्र दो पौराणिक पात्र नहीं है, बल्कि वे प्रतीक हैं-हमारे भीतर और समाज के मंगल-अमंगल के न्याय-अन्याय के, देवी-दानवी शक्तियों के, सद-असद के, भलाई-बुराई के, कर्म-भोग के, त्याग-स्वार्थ के, संयम-असंयम के, धर्म-अधर्म के, निर्माण-ध्वंस के, लेकिन आज इसके बिल्कुल विपरीत माहौल बन गया है, बनाया जा रहा है। रावण अधर्मरत है और राम अधर्म से डरते हैं। आज चीजें उल्टा दी गई हैं। आज अधर्मी लोग धर्म की बात कर रहे हैं, राष्ट्रद्रोही लोग राष्ट्रप्रेम पढ़ाने में लगे हुए हैं और

दुर्गुण में सने व्यक्ति ही उपदेश दे रहे हैं। क्या हर दशहरे पर रावण का पुतला जलाने के बावजूद रावण अट्टाहास नहीं कर रहा है?

इसके अतिरिक्त आप गौर करें कि इस खौफनाक, कुटिल-जटिल और आततायी समय में रावण को कौन जला रहा है? क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि रावण ही रावण को जला रहा है? मुझे तो लगता है कि दैवी और आसुरी शक्तियों का युद्ध समाप्त नहीं हुआ है, क्योंकि रावणों की संख्या और बढ़ती जा रही है। विपक्षी दल भ्रमित होने की वजह से रावण के सिर काटते-काटते थक जा रहा है मगर उसकी नाभि का रहस्य नहीं पता, इसलिए रावण का कुछ नहीं बिगाड़ पा रहा है। आप यह भी देखें कि दुर्गा की मूर्तियों के सामने कौन-से लोग बोल्ड डांस कर अपनी कमर हिला रहे हैं? मुझे तो लगता है कि दुर्गा पूजा अब बाजार के अधीन है और उस बाजार को अपने मातहत कर रखा है। समाज के वैसे लोग, जो उसे धंधा बना रखे हैं। रामलीला कम, बाजार लीला अधिक नजर आ रहा है। सब कुछ तमाशा बनाया जा रहा है। बाजार ने पर्व-त्योहार को गुमराह कर दिया है और उसकी प्राणवायु हर ली गई है। अब केवल चमक-दमक है, प्रदर्शन दिखावा है। करोड़ों-अरबों के पंडाल क्यों बनते हैं? इन पंडालों में प्रतिद्वंद्विता क्यों होती है? प्रतिद्वंद्विता होती है, मगर आस्था नहीं। रोज-रोज नई-नई धार्मिक संस्थाएँ बन रही हैं और सार्वजनिक स्थलों को कब्जा करने के लिए हनुमान जी की मूतियाँ बैठाई जा रही हैं। चंदा उगाही का अपना व्यापार चलाया जा रहा है। राम को राज्य नहीं चाहिए था मगर आज के नेताओं को तो किसी भी प्रकार से सत्ता चाहिए। मेरा मानना है कि जब तक सभी अपने-अपने मन के भीतर बैठे रावण को नहीं जलाएँगे तबतक समाज का उत्थान संभव नहीं है।

(३)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि धर्म के स्वार्थी ठेकेदारों ने जहाँ विभिन्न धर्मों के लोगों को आपसी झगड़ों में उलझाया है, वहीं गरीब लोगों के शोषण को समर्थन देने के लिए भी धर्म का इस्तेमाल करने का प्रयास किया?

उत्तरः यह तो कठोर सत्य है कि राष्ट्रीय एकता और अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए सभी धर्मों के मानने वालों की आपसी सद्भावना और एकता आवश्यक है। गाँधी जी भी सभी मजहबों को एक ही पेड़ की शाखाएँ मानते थे। वे भी इंसान-इंसान के बीच इस तरह का भाईचारा कायम करने की इच्छा रखते थे जिसमें हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी और यहूदी सब एक समान शामिल हों। उन्हें तो दुनिया के सब बड़े-बड़े मजहबों की

बुनियादी सच्चाई में विश्वास था।

मगर भारत-पाक की आजादी के वक्त मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान की माँग इस्लाम के विरूद्ध होते हुए भी पेश की गई। लौह पुरुष सरदार वंल्लभभाई पटेल भी धर्म के नाम पर इस देश का बँटवारा कतई नहीं चाहते थे। फिर भी धर्म के संकीर्ण स्वार्थी ठेकेदारों ने विभिन्न धर्मो के लोगों को आपसी झगड़ों में उलझाया और साथ ही गरीब लोगों के शोषण को समर्थन देने के लिए भी धर्म का इस्तेमाल करने का प्रयास किया जबकि देश की एकता और भलाई चाहने वाले प्राय: अधिकांश नेताओं ने विभिन्न धर्मो की आपसी एकता और सम्मान पर जोर दिया और साथ ही उन्होंने धर्म को गरीब लोगों की भलाई और उनके उत्थान से जोड़ने का विशेष प्रयास किया।

(४)प्रश्न: २१वीं शदाब्दी के आधुनिक समाज में भी आस्था के नाम पर क्या अँधभक्ति से ही मुक्ति संभव है? आस्था के नाम पर इस अँधविश्वास को क्या विडंबना नहीं कहा जाएगा? क्या विवेक की चेतना का कोई महत्व नहीं रह गया है?

उत्तर: पिछले दिनों हैदराबाद से एक अजब खबर आई जिसमें जैन समुदाय की एक 13 साल की लड़की की 68 दिन उपवास रखने के बाद मौत हो गई। यह लड़की जैन धर्म के 'चौमासा' व्रत पर थी। अँधविश्वास के चलते 13 साल की बच्ची आराधना जैन के परिवार ने ही उसे मौत के मुँह में ढकेल दिया।

दरअसल, जैन धर्मावलंबियों संथारा की परंपरा है, जिसे जैन धर्म में बहुत महत्व दिया जाता है। यह इच्छा मृत्यु का दूसरा रूप है जिसे अत्यंत पवित्र माना जाता है। इस समुदाय में मृत्यु को सुखद माना जाता है, हांलांकि इस युग में इसे सामाजिक बुराई के रूप में भी देखा जाता है।

आठवीं क्लास में पढ़ती इस 13 साल की बच्ची आराधना के पिता लक्ष्मीचंद समधारी की सिकन्दराबाद में गहनों की दुकान है। व्यापार अच्छा नहीं चल रहा था। परिवार एक जैन संत का अनुयायी है। बताया गया कि संत ने लक्ष्मीचंद से कहा था कि अगर उनकी बेटी चातुर्मास में लंबा उपवास रखे तो कारोबार ख़ूब चलेगा। अँधविश्वास में फँसे लक्ष्मीचंद ने बेटी अराधना को स्कूल छोड़कर 68 दिनों तक उपवास रखने का आंदेश दे दिया। 1 अक्टूबर, 2016 को उपवास पूरा हुआ। बालिका के माता-पिता का कहना है कि उसने निराहार उपवास किया और जल भी केवल शाम को ग्रहण करती थी। चिकित्सकों का कहना है कि यदि व्यस्क भी पैंतालिस दिनों तक

अन्न ग्रहण न करे तो उसके दिल पर गहरा असर पड़ता है। अड़सठ दिनों तक उपवास के कारण बालिका के दिल की प्रणाली ने कार्य करना बंद कर दिया और दिल के दौरे से उसकी मौत हो गई। मौत को महिमामंडित करते हुए शवयात्रा भी शोभायात्रा बना दी गई। आराधना को बाल तपस्वी बताते हुए 600 से ज्यादा लोग इसमें शामिल हुए। काचीगुड़ा स्थानक के महारासा रविन्द्र मुनि जी का कहना है कि यह व्रत ज्यादातर उन बुजुर्गों के लिए है जो अपनी पूरी जिंदगी जी चुके हैं और मुक्ति चाहते हैं। तो फिर इस 13 साल की बच्ची को मुक्ति के लिए क्यों उपवास पर बैठाया गया? इसे क्रूरतापूर्ण हत्या नहीं तो और क्या कहा जाएगा? बच्चों को ऐसी मान्यताओं में झोंकना शर्मनाक है। 21वीं सदी के आधुनिक समाज में भी आस्था के नाम पर अँधमुक्ति से ही मुक्ति को विडंबना कहा जाएगा। अँधविश्वास की इस पराकाष्ठा को विवेक की चेतना का मर जाना कहा जाएगा। वास्तव में विवेक की चेतना का अब कोई महत्व नहीं रह गया है।

(५)प्रश्नः कुरान में तलाक और हिजाब पर क्या आदेश है?

उत्तर: कुरान में कहीं भी तीन बार तलाक की बात नहीं कही गयी है। भारत और दुनिया भर में इस बात को लेकर बहस रही है कि तीन बार तलाक इस्लामिक धर्मग्रंथों की वजह से जायज है, लेकिन सच्चाई इसके ठीक विपरीत है। कुरान के सुरा 1-7 में कहा गया है कि तलाक देने का भी एक वक्त होना चाहिए और मर्द किसी भी हालत में औरत को बेदखल नहीं कर सकता, जबतक कि वाकया अश्लीलता की हद न पार कर जाए। कुरान में यह जिक्र है कि तलाक के तयशुदा वक्त के बाद मर्द औरत को पूरी इज्जत से या तो रखे या उतनी ही इज्जत से उसे विदा करे। यहाँ तक कि किसी भी हालात में औरत के साथ बदसलूकी नाजायज है।

जहाँ तक इस्लाम में हिजाब का सवाल है इसे लेकर भी इस्लाम में कई विवाद हैं। हिजाब से ताल्लुक है औरतों के पर्दे की बात। कुरान का जाहिर तौर पर हवाला देकर इसे अपने मनमुताबिक लागू करने का काम मर्द ने किया है। कुरान में कहीं भी हिजाब यानी पर्दे की बात सीधे तौर पर नहीं की गई है। हाँ यह पूरी तरह सच है कि हिजाब इस्लाम आने के पहले की परंपरा रही है। खासकर अरबी कबिलाओं की यहूदी औरतों में ये प्रचलन ज्यादा था। मगर यह सच है कि इस्लाम औरतों को सही तरीके से पेश होने की बात करता है, लेकिन इसका मतलब औरतों में पर्दे से कहीं भी सीधे तौर पर कोई संबंध नहीं है। मुस्लिम विद्वान तारिक रामदान इस बात के

हिमायती तो हैं कि यह हिजाब कुरान के अनुरूप पूरी तरह से तो नहीं है, लेकिन ये फैसला मुस्लिम औरतों को लेना चाहिए कि उन्हें यह पसंद है या नहीं।

(६)प्रश्नः क्या कुरान में औरतों को पत्थर से मारने का हुक्म हैं?

उत्तरः औरतों को पत्थर से मारने का जिक्र कुरान में कहीं नहीं है। हाँ, औरतों को पत्थर मारने का रिवाज अब भी सऊदी अरब और ईरान में कई जगह है, जिसे अंजाम देने वाले भी खुद को इस्लामिक कहते हैं। पश्चिम में इस्लाम को लेकर सबसे ज्यादा विवाद इस बात पर है कि इस्लाम में सुधार की जरूरत है, जैसा कि ईसाई मजहब में सैकड़ों बरस पहले हो चुका है, लेकिन ज्यादातर इस बात को गलत ठहराते हैं।

मोहम्मद अकाम नवादी का मानना है कि कुरान और हदीस दोनों में औरतों के लिए जितनी अच्छी बातें हैं शायद और किसी मजहब में नहीं कही गई हैं। वह हजरत आयशा का जिक्र करते हुए कहते हैं कि उनकी किताब 'अल महुदीथटः दी वुमन स्कॉलर ऑफ इस्लाम हदीसों' का हवाला देते हुए लिखते हैं कि इस्लाम ने हमेशा औरतों को खास जगह दी हैं, लेकिन यह इस बात पर निर्भर है कि कुरान और हदीस को कौन और कैसे पढ़ रहा है। यहाँ तक कि वह इस बात को सही मानते हैं कि औरतें मस्जिद में नमाज पढ़ा सकती हैं और यह पूरी तरह इस्लामिक है।

(७)प्रश्नः वातावरण में छायी धुँध सबके लिए गंभीर चिंता का कारण बन गयी, पर हम अपने मन पर छायी धुँध के लिए भी चिंतित क्यों नहीं होते?

उत्तरः वातावरण में छायी धुँध सारी दुनिया के लिए चिंता का कारण इसलिए बन गयी, क्योंकि लोगों को रास्ता नहीं दिखता कि बच्चों को कैसे स्कूल भेजा जाए, कार्यालय कैसे जाया जाए, गाड़ी कैसे चलाएँ। मगर यह धुँध तो प्रयास करने से कुछ दिनों के बाद छंट जाएगी, क्योंकि फिर रास्ते दिखने लगेंगे और सब कुछ सामान्य हो जाएगा, पर मन पर जो धुँध छायी है वह तो जीवन के मार्ग से ही भटका देती है और वैसी स्थिति में न हम अपने कर्तव्य-अकर्तव्य को समझ पाते हैं कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं। 'सब धन बाइस पसेरी' कहावत पर जिंदगी जीते हैं, क्योंकि इस गड़बड़ी का तत्काल कोई नतीजा सामने नहीं आता, अपने आमने-सामने हमें कोई गंभीर संकट की धुँध की तरह नहीं दिखता। इसलिए हम मन की धुँध से अनजान रहते हैं और वह दिनोंदिन और ज्यादा गाढ़ा होती चली जाती है। इतनी कि

फिर हमें उसी में जीने का अभ्यास पड़ जाता है, तब फिर वह धुँध छंट भी नहीं सकती। कभी-कभी तो इसी रौ में जीते हुए बरबादी के कगार पर आदमी पहुँच जाता है या सब कुछ पाकर भी उसे चैन नहीं मिलता या अकेला पड़ जाता। बिहार की राजधानी पटना में दो तथाकथित नामी-गिरामी महापुरुषों के मन पर तो ऐसी धुँध पड़ी कि सपत्निक उन्हें जेल की हवा खानी पड़ी। पता नहीं अब उन्हें यह समझ में आई या नहीं कि सब कुछ पाकर भी गलत रास्ते पर चलते रहे। मन की धुँध ने उन्हें जीवन का सही रास्ता देखने-समझने लायक छोड़ा ही नहीं ...., क्योंकि तब तक बहुत देर हो चुकी। जिंदगी की सुविधाओं की दौड़ में अहंकार, स्वार्थ और परस्पर द्वेष-ईर्ष्या के चलते दूसरों से आगे निकल जाने के लिए इस पागलपन रूपी धुँध को अपने मन पर न आने दें, तभी हमारी आपकी खैरियत है।

(८)प्रश्नः गुरुनानक देव जी को सभी जातियों एवं धर्मो के लोग अभी भी हिंदुओं के गुरु और मुसलमानों का पीर क्यों कहते हैं?

उत्तरः गुरुनानक देव जी को सभी जातियों एवं धर्मो के लोग अभी भी हिंदुओं के गुरु और मुसलमानों का पीर इसलिए कहते हैं, क्योंकि गुरुनानक ने अपनी वाणी के द्वारा डंके की चोट कहा है कि मैं अछूतों और पिछड़ी जातियों के साथ हूँ। देखें उनकी वाणी को-

नीचा अंदर नीच जात, नीची हूँ अतिनीच,
नानक तिनके संग साथ, बड़यों सो क्या रीस,
जित्थे नीच समालियन, तिहथे न दर तेरी बक्सीस।

इतना ही नहीं, खत्री, ब्राह्मण, शुद्र, वैश्य की जाति पूछि नहीं देवा दाता, धर्म की कटुता को दूर करने के लिए उन्होंने भाईवाला हिंदू और भाई मर्दाना मुसलमान को अपने साथ यात्रा में रखकर समानता का उदाहरण प्रस्तुत किया।

ना कोई हिंदू ना मुसलमान
पांच तंत का पुतला नानकमेरा नाम।

गुरुनानक ने पुँजीपति मलिक भागों के यहाँ के निमंत्रण को ठुकरा कर बढ़ई जाति के भाई लालों के यहाँ रूखी-सुखी रोटी खाकर मेहनत की कमाई को श्रेष्ठ बताया।

खट घाल किछु हाथो देई, नानक राह पछाने सोई।

गुरुनानक ने जनेऊ के बारे में कहा कि जो अपने गले में जनेऊ पहनते हैं जिसका सूत संतोष का बना हो, जिसकी गांठ संयम की हो, जिसके

ताग संतोगुण के हो। इसी तरह मुसलमान के बारे में दया को मस्जिद धर्म की कमाई को कुरान, लगन को सुनत एवं शील को राजा बनाने वाला व्यक्ति ही सच्चा मुसलमान है। कुछ इन्हीं धारणाओं की वजह से सभी जातियों एवं धर्मो के लोग गुरुनानक देव को अभी भी हिंदुओं के गुरु और मुसलमानों का पीर कहते हैं।

(९)प्रश्नः समान नागरिक संहिता के सिलसिले में तीन तलाक के मसले पर भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन के बीच उभरती नई चेतना को आप किस तौर पर देखते हैं?

उत्तर: आजादी के बाद की केंद्र सरकारें मुस्लिम महिलाओं का उत्पीड़न करने वाले तीन तलाक और हलाला जैसी कुप्रथाओं के खिलाफ कोई कार्रवाई करने का साहस इसलिए नहीं जुटा पाई, क्योंकि उन्हें भय था कि इससे उनका मुस्लिम वोट बैंक खिसक जाएगा। मगर केंद्र की मौजूदा सरकार जाति, वर्ग, संप्रदाय और संकुचित भेदभाव से परे समूचे देश के विकास के लिए कृतसकल्पित है। ऐसा प्रतीत होता है कि मोदी सरकार ने इस देश की आबादी को अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक के खाँचे में न बाँटकर समूचे 130 करोड़ देशवासियों के समेकित विकास का बीड़ा उठाया है, क्योंकि उनके लिए गौरवशाली विकसित भारत का स्वप्न किसी वोट-बैंक से अधिक महत्वपूर्ण है।

कुछ इसी ख्याल से समान नागरिक संहिता को लेकर विधि आयोग द्वारा सुझाव प्राप्त करने की मंशा से जारी प्रश्नावली के बाद उस पर व्याप्त राजनीतिक सन्नाटा सचमुच बेचैन करने वाला है। मगर मुस्लिम धार्मिक और सामाजिक संगठनों द्वारा राय जाहिर की जा रही है। तीन तलाक के मामले में भी खासतौर मुस्लिम समुदाय की प्रबुद्ध महिलाओं के द्वारा पत्र-पत्रिकाओं में लिखे आलेख के माध्यमों से और भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन के जरिए राय जाहिर की जा रही है।

आजादी के सत्तर सालों की गहरी खामोशी, किंतु आंतरिक खुदबदाहट के परिणास्वरूप मुस्लिम समाज में से एक ऐसा नया उदारवादी नेतृत्व उभरकर सामने आया है, जिसकी शायद इन धार्मिक और राजनीतिक नेताओं ने कल्पना भी नहीं की होगी। सर्वोच्च न्यायालय में तीन तलाक के खिलाफ जनहित याचिका किसी पुरुष संगठन ने नहीं, बल्कि मुस्लिम महिलाओं के संगठन ने दायर की है। हाजी अली दरगाह में महिलाओं के प्रवेश का आंदोलन भी मुस्लिम महिलाओं के संगठन का था। इस प्रकार हम देख रहे

हैं कि भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन का फैलाव पूरे देश में हो रहा है और यह आंदोलन अपनी बातों को पूरे समाजशास्त्रीय तर्कों एवं तथ्यों के आधार पर रखता है। मुस्लिम फॉर सेक्युलर डेमोक्रेसी के मुस्लिम महिला अधिकार नेटवर्क की शाखाएँ पूरे देश-विदेश में खुल चुकी हैं। इसने 2013 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा धारा 377(समलैंगिकता) के बारे में दिए गए निर्णय के प्रति भी असहमति जताई थी। ऐसे संगठनों में ही मुझे मुस्लिम समाज के नए चेहरे की झलक देखने को मिल रही है। आखिर तभी तो ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड जैसों को इस तरह के समूह फूटी आँखों नहीं सुहा रहे। होना तो यह चाहिए था कि शिक्षित मुस्लिम युवकों के साथ समस्त प्रगतिशील ताकतें मुस्लिम महिला समूहों को समर्थन करें, लेकिन विडंबना यह है कि ज्यादातर दल इस नए नेतृत्व का साथ देने में हिचक रहे हैं। वे चुप्पी साधकर एक तरह से यथास्थिति को ही अपनी स्वीकृति दे रहे हैं।

एक धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक देश के लिए यह शर्म की बात है कि वह तीन तलाक जैसी रीतियों के साथ इसलिए जी रहा है कि एक समूदाय नाराज हो जाएगा। हालांकि यह आगे आने वाले दिनों तक जारी इसलिए नहीं रह सकता, क्योंकि यह संविधान की मूल भावना के खिलाफ है। आश्चर्यजनक है कि नीति-निर्देशक सिद्धांतों में समान नागरिक संहिता बनाने की बात होने के बावजूद यह अभी तक बरकरार है, क्योंकि आजादी के बाद से ही सरकारें इस सवाल से बचती रही हैं और तुष्टीकरण की नीति अपनाती रही हैं। देर-सबेर तीन तलाक को जाना होगा खासकर तब जब मुस्लिम महिलाएँ तीन तलाक के खिलाफ तन कर खड़ी दिखाई दे रही हैं। वैसे भी जब सऊदी अरब को छोड़कर तकरीबन पूरे विश्व में तीन तलाक पर प्रतिबंध नहीं लग पा रहा है जबकि कुरान भी महिलाओं की आवाज को दबाने की इजाजत नहीं देती।

दरअसल, यह सब एक तरफ जहाँ सामाजिक मूल्यों में आई गिरावट की वजह से ऐसा हो रहा है, वहीं दूसरी तरफ संवेदनाओं के क्षरण के चलते भी यह सब बेहद उदास करने वाला है। आल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के सदस्य मुस्लिम औरतों की भावनाओं को इसलिए नहीं समझ पर रहे हैं कि वे मजहब की आड़ में शिकार करना चाहते हैं या वे मजहबी राजनीति कर रहे हैं। आखिर मजहब के नाम पर कोई समुदाय अपनी आधी आबादी को बराबरी का हक देने से कैसे मना कर सकता है?

(१०)प्रश्नः यह ठीक है कि हम इबादत के तरीके को एक नहीं कर सकते, लेकिन क्या हम एक-दूसरे की मजहब के प्रति अदब का भाव भी नहीं रख सकते?

उत्तरः हम एक-दूसरे की मजहब के प्रति अदब का भाव रख सकते हैं, पर ईरान, अफगानिस्तान, इराक या बांग्लादेश में तो एक ही मजहब के लोगों में इस कदर नफरत है कि कई बार ऐसा लगता है कि क्या वाकई उन्हें इंसान कहा जाना चाहिए? बुद्ध के नक्शेकदम पर चलने का दावा करने वाले वियतनाम, चीन जैसे मुल्कों में भी तकरीबन यही आलम है और हजरत ईसा को पूजने वाले देशों में लोग भी धड़ों में दिखते हैं। और तो और हमारे भारत और नेपाल जैसे हिंदू बहुल देशों में भी तो हम एक-दूसरे को मरने-मारने पर उतारू हैं जात-पात, भाषा और क्षेत्रीयता के नाम पर।

सवाल यह है कि ऐसा क्यों है और इन सबके लिए जिम्मेदार कौन है? मुझे लगता है हरेक देश के इलाके का इतिहास और उसकी भौगोलिक वजहें भी इसके लिए जिम्मेदार हैं। और जहाँ तक किसकी जवाबदेही का सवाल है इसकी सबसे बड़ी वजह हम खुद हैं। एक सरहद के भीतर रहने वाले लोगों को हम क्यों नहीं भारतीय समझते हैं ? हम क्यों उन्हें बंगाली, पंजाबी, राजस्थानी या गुजराती कहते हैं? हम रहते हैं एक इसी मिट्टी में, खाते हैं यहाँ का, तो हम एक-दूसरे की मजहब के प्रति अदब का भाव भी रख सकते हैं। हमें अपनी सोच बदलनी होगी, संकुचित दायरे की दीवार को तोड़ने के लिए अपना दिल बड़ा करना होगा।

(११)प्रश्नः क्या छठ लैंगिक एवं जातीय समानता का ऐसा सबसे बड़ा पर्व हे जो शुचिता छोड़कर किसी भी किस्म की बंदिश और तफरका का निषेध करता है?

उत्तरः हाँ, छठ लैंगिक एवं जातीय समानता का एक ऐसा सबसे बड़ा पर्व है, जो शुचिता को छोड़कर किसी भी किस्म की बंदिश और तफरका का निषेध करता है। लोक आस्था का महापर्व छठ का सामाजिक स्वरूप ही तो है, जो वर्गो, जातियों समुदायों व लैंगिक भेदभाव को एक झटके में मिटा देता है। चाहे घाटों की सफाई या सड़कों की, प्रसाद का वितरण हो या छठवर्तियों के स्पर्श के साथ नमन करने का, हर हाथ दूसरे की मदद के लिए बढ़ते हैं।

मुझे लगता है बड़ी से बड़ी क्रांति या आंदोलन आज तक सामाजिक समानता का वह स्तर नहीं बना सका, जो छठ ने तैयार किया है। छठ ने ही

इस बात को साबित किया है कि कोई वृहद समाज तमाम भेदभाव से बिल्कुल परे हो सकता है, क्योंकि भारतीय समाज में जहाँ जातिवाद गहराइयों तक अपनी पैठ जमाए बैठा है, छठ में अपना अस्तित्व तलाशते नजर आता है। छठव्रती चाहे जिस जातिं का हो किसी को इससे मतलब नहीं किसी भी व्रती को दंडवत करते वक्त तमाम लोग उसे स्पर्श के साथ नमन करते हैं। इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है कि जिस समाज में कभी अधिसंख्य आबादी को तालाब या कुँए का पानी पीने से भी रोका जाता था, छठ में एक घाट पर एक साथ सभी व्रत कर रहे होते हैं तथा एक-दूसरे व्रती की डाली पर दूध तथा पानी ढारते नजर आते हैं। यही नहीं, बिना जाति-धर्म पूछे एक-दूसरे से प्रसाद माँगकर खाते हैं। यहाँ तक कि गली-सड़कों की सफाई और बिजली बत्ती सजाने वाले समाजसेवी लड़के चौक-चौराहों पर चौकी पर चादर बिछा देते हैं, ताकि छठव्रती सुबहवाले अर्घ्य देकर लौटते वक्त उसपर प्रसाद दे सकें। खरना के दिन तो पूरे दिन तो मोहल्ले भर के लोग परस्पर प्रसाद वितरण करते हैं।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा यह पर्व विशेष तौर पर उत्तरी भारत के उत्तर प्रदेश तथा बिहार में अथवा बिहार और उ.प्र. के लोग देश-विदेश के जिस किसी शहर में जाकर बस गए हों, उन्हीं लोगों के द्वारा मनाया जाता है जिनके बीच और लोगों की अपेक्षा जात-पांत की भावना अधिक होती है। छठ केवल हिंदू ही नहीं करते जे.पी. के पैतृक गाँव सिताब दियारा के निवासी मंजूर मियां ने विगत 1980 से छठ व्रत लगातार करके यह जता दिया है कि मुस्लिम भी अपनी मुराद पूरी करने के लिए छठ में आस्था रखते हैं। बिहार में तो करीब एक करोड़ घर-परिवारों में यह पर्व मनाया जाता है। महाभारत के भीष्म से लेकर नीत्से, अरविंद घोष व इकबाल ने जिस परम मानव और उनके समाज की घोषणा की है, वह छठ में ही दिखता है। तमाम लोग एक-दूसरे की मदद और सेवा के लिए तत्पर रहते हैं। हर किसी के साथ अपनत्व। कोई पराया नहीं, मगर पर्व बीत जाने के बाद पता नहीं, वही लोग कैसे जाति, धर्म, संप्रदाय के बीच भेदभाव करने लगते हैं जिन्हें मैं इसीलिए पाखंडी कहता हूँ।

इस छठ व्रत के दौरान एक और विशेषता यह देखने को मिलती है कि न कोई पंडित, न कोई पुरोहित, न कोई याचक और न कोई जजमान। और तो और, कोई भगवान तक नहीं जबकि साल-दर-साल लगातार भगवानों की सूची मोटी होती जा रही है। हाँ, छठव्रती केवल सूर्यास्त और

सूर्योदय की पूजा जरूर करते हैं और प्रकृति से सघन रिश्ते का इजहार जरूर किया जाता है। ध्यान देने की बात यह भी है कि इस पर्व में न तो कोई मूर्तिपूजा और न कोई मंत्रपाठ एवं ऋचाएँ ही। यही नहीं पति-पत्नी दोनों मिलकर भी यह पर्व करते हैं जिसमें आपको लैंगिक समानता भी देखने को मिलती है। चार दिनों के इस पर्व में राजा-रंक और मंत्री से संतरी सब एक साथ।

छठ व्रत के चार दिनों के कार्यक्रमों पर जब हम एक नजर डालते हैं, तो मुझे ऐसा लगता है कि शास्त्रों से अलग यह जन सामान्य द्वारा अपने रीति-रिवाजों के रंगों में रची उपासना पद्धति है। इसके केंद्र में वेद, पुराण जैसे धर्मग्रंथ न होकर किसान, प्रकृति और ग्रामीण जीवन है जिसमें सामाजिक समरूपता, सौहार्द और सादगी की झलक दिखाई देती है। सामाजिक सहयोग इस पर्व की विशिष्टता है। कुल मिलाकर देखा जाए तो यह पर्व सामान्य और गरीब जनता के अपने दैनिक जीवन की कठिनाइयों को भुलाकर सेवा भाव और भक्ति भाव से किए गए सामूहिक कर्म का विराट और पवित्र भव्य प्रदर्शन है जिसके व्रत नियमों में पवित्रता और शुचिता बरती जाती है। प्रकृति के अटूट रिश्ता और लोक से जुड़ाव छठ पर्व को विशिष्ट बनाता है। इसकी पवित्रता और महिमा को बनाए रखने के लिए जरूरी है कि बाजार की शक्तियों एवं प्रवृत्तियों से इसे दूर और बचाकर रखा जाए।

एक और बात के लिए मुझे खुशी होती है और कुछ क्षण के लिए मैं राहत महसूस करता हूँ वह यह कि पटना के पुरन्दरपुर स्थित 'बसेरा' में रहने पर संध्या समय जब मैं सचिवालय के सामने स्थित शहीद स्मारक तक टहलने जाता था, तो मुझे खगौल रोड के यारपुर के उस फ्लाईओवर के नीचे से गुजरना पड़ता है जहाँ पटना नगर निगम के सफाई मजदूर अपनी पत्नी सहित बांस को चिर-चिर कर उसके सूप बनाते नजर आते रहे हैं और वही सूप पर कुछ फल-फूल के साथ ठेकुआ-लडुआ के प्रसाद को रखकर अस्तालगामी और उदीयमान सूर्य को अर्घ्य दिया जाता है। मैंने इसकी चर्चा इसलिए की, क्योंकि यहाँ भी मुझे सामाजिक समरूपता तथा जातीय समानता इसलिए नजर आती है कि अति निम्न वर्ग-जाति यानी डोम समाज से आने वाले उन सूप निर्माताओं को यह तनीक भी भान नहीं होता कि और दिनों में तथाकथित मध्य एवं उच्च वर्ग जाति से आने वाले यही छठव्रती कभी मेरे हाथ का पानी पीने से भी कतराते हैं। उनके हाथ के बने बाँस के सूप

ही सूर्य को अर्घ्य देने वास्ते खरीदी जाती हैं। कुछ दिन के लिए ही सही, सामाजिक विषमता तो छठ पर्व के अवसर पर अवश्य मिट जाती है और छठीहार भी छठ के साथ खुद परिष्कृत हो जाते हैं ठीक वैसे ही जैसे ही देवघर, कामाख्या, वैष्णों देवी जैसे तीर्थ स्थलों की यात्रा और शिवलिंग पर जल चढ़ाकर रिश्वतखोर, भ्रष्टाचारी, घोटालेबाज और आपराधिक प्रवृत्ति के लोग परिष्कृत होते हैं।

मैं बात कर रहा हूँ समाज के वैसे पाखंडी लोगों की, जो आजादी के सत्तर साल बीत जाने के बावजूद आज भी आस्था के इस महापर्व छठ के अवसर पर तो सारी जाति-पाति, संप्रदाय और छूआछूत जैसे विषमतामूलक मूल्यों को अपनाते हैं, लेकिन बाद में फिर वे उसी घृणित एवं पाखंडी राह में चलने लगते हैं। क्या वे सामान्य और गरीब जनता के अपने दैनिक जीवन की मुश्किलों को भुलाकर जिस प्रकार छठ पर्व मनाते हैं, छठ पर्व के अलावे और दिनों में भी ऐसा ही आचरण व्यवहार कर पाएँगे? तभी छठ पर्व के प्रति उनकी आस्था और सूर्योपासना भी सार्थक साबित हो सकेगी। इंसान के पास दिल है इसलिए उसे अपनी गलतियों पर अफसोस होगा ही।

(१२)प्रश्नः क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि हिंदुत्व न तो किसी एक दार्शनिक विचारधारा का नाम है और न किसी एक पूजा-पद्धति का?

उत्तरः हाँ, मैं इस विचार से सहमत हूँ कि हिंदुत्व न तो किसी एक दार्शनिक विचारधारा का नाम है और न किसी एक पूजा पद्धति का। सर्वोच्च न्यायालय काफी बहस के बाद इस नतीजे पर पहुँची कि हिंदुत्व कोई मजहब नहीं है, वह एक जीवन शैली है। मतलब यह कि हिन्दुत्व किसी मजहब की तरह या किसी मत-मतांतर की भाँति कुछ निश्चित रस्मों-रिवाज या नियम-कायदों की आचरण व्यवस्था नहीं है। भारत में उपजे अनेक मत और मार्ग इससे निकले हैं, लेकिन आपस में रस्मो-रिवाज और कभी-कभी दार्शनिक विचारों में भी भिन्न है। कुछ तो इस एक-दूसरे के विपरीत भी है। अद्वैतवादी, द्वैतवादी, शैव, वेदांती, सनातनी या आर्यसमाजी सभी अपने आप को हिंदू ही कहते हैं। इसलिए हिंदुत्व न तो किसी एक दार्शनिक विचारधारा का नाम है और न किसी एक पूजा पद्धति का।

(१३)प्रश्नः बाजार का प्रभाव हमारे पर्व-त्योहारों पर कितनी तेजी से पड़ रहा है?

उत्तरः आज हमारे देश में पर्व-त्योहार को जितने बड़े स्तर पर मनाया जाता

है, उसे देखकर तो ऐसा लगता है कि बाजार का प्रभाव हमारे पर्व-त्योहारों पर बड़ी तेजी से पड़ रहा है। व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं, बल्कि कॉरपोरेट और छोटी कंपनियाँ भी दीपावली और क्रिसमस पर अपने मिलने वालों या कामकाज संबंधित लोगों व सरकारी अधिकारियों को शुभकामना कार्ड के साथ कीमती उपहार देने का सबसे सटीक मौका मानते हैं। लाखों-करोड़ों के उपहार और कार्ड देने वाले और पाने वाले सभी जानते हैं कि यह शुभकामना महज कागजी है, इसमें त्योहार की संवेदना लेशमात्र भी नहीं है, लेकिन बाजार द्वारा तय किया गया रिवाज न केवल चल रहा है, बल्कि दौड़ रहा है इस अर्थ में कि जो व्यक्ति अपने पास आने वाले शुभकामना कार्डो को ढंग से देख भी नहीं रहा है, उसी के यहाँ से दूसरे लोगों को सैकड़ों हजारों कार्ड भेजे जा रहे हैं।

दरअसल, अब पर्व-त्योहार प्रेम और श्रद्धा के केंद्र नहीं रहे, वे बाजार का एक खास हिस्सा बन गए हैं। इसीलिए त्योहार आते ही बाजार तरह-तरह की चीजों से पट जाता है और शुरू हो जाती है लोगों की फिजुलखर्ची। इसके पीछे बहुत कुछ वैभव के उस भौड़े प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी होती है, जिसके चलते हम त्योहार की गरिमा से ज्यादा अपनी समृद्धि का दिखावा करने लगे हैं। त्योहारों पर बाजार की छाया का यही असर रहा तो ताज्जुब नहीं कि हैप्पी दीवाली होटलों में मनाए जाने का दौर आ जाए।

सच तो यह है कि यह समृद्धि इतनी ज्यादा है कि आदमी को यह चमत्कृत करती है। इस चमक का सबसे ज्यादा असर उस वर्ग पर हो रहा है, जो अधिक या कम साधन संपन्न नहीं हैं, लेकिन अपने आपको कमतर मानने को तैयार नहीं हैं। इसी मानसिकता के चलते वह वर्ग भी त्योहारों पर फिजुलखर्ची से अपने को रोक नहीं पाता। मुझे चिंता इस बात की है कि कई त्योहारों में इतने आडंबर आ गए हैं कि उनकी मूल भावना ही समाप्त होती जा रही है। मनुष्यता की चिर आस की उस प्रवृत्ति को क्या बच्चन जी की ये पंक्तियाँ चिन्हित करती हैं?

'ले अधूरी पंक्ति कोई गुनगुनाना कब मना है,
है अँधेरी रात पर दीया जलाना कब मना है।'

(१४)प्रश्न: क्या आपको ऐसा लगता है कि ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड समान नागरिक संहिता का विरोध अपनी घृणित राजनीतिक दुकानें बंद होने के खौफ में कर रहे हैं?

उत्तर: सबसे पहली बात तो यह कि समान नागरिक आचार संहिता अभी

तक बनी नहीं है। अभी तो केवल विधि आयोग ने लगभग नौ महत्वपूर्ण प्रश्न सभी सम्प्रदायों को भेजे हैं कि समान आचार संहिता के बारे में विभिन्न धर्मो की क्या राय है और यह कि क्या इसे अपनाकर धार्मिक त्रुटियों जैसे तीन तलाक, बालविवाह, एक से अधिक पत्नियों को कानून के दायरे में लाया जा सकता है? बस इतना ही पर मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने आव न देखा न ताव तुरंत एक प्रेस कांफ्रेस बुलाकर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी पर लांछन लगा दी कि वे धार्मिक मामलों में दखलअंदाजी कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि इस्लाम धर्म का पूरा ठिका बोर्ड ने ले रखा है। बोर्ड की यह धमकी कि अगर उन पर समान आचार संहिता को लादा गया, तो उसका उत्तर वे चप्पलों और लातों से देंगे। उन्होंने तो भारतीय न्याय प्रणाली को भी चुनौती दे डाली। भला धार्मिक संस्थाओं से ऐसी उटपटांग लफ्जों और बेबुनियाद बयानों की उपेक्षा क्या की जा सकती है? कतई नहीं। जबकि वास्तविकता यह है कि मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड जिसे तकरीबन 92 प्रतिशत मुस्लिम महिलाएँ मुस्लिम मर्द पर्सनल लॉ बोर्ड के नाम से पुकारती हैं, इसे मानती ही नहीं। बोर्ड में जितने भी मर्द हैं, उन्होंने महिलाओं पर अपना वर्चस्व बनाने के लिए इस्लाम, कुरान और हदीस को भी दरकिनार कर दिया है और इस्लाम यदि बदनाम हो रहा है, तो इसी बोर्ड के सदस्यों के कारण।

दरअसल, बोर्ड हर मुद्दे को धर्म की आड़ में हिंदू-मुस्लिम फायर बॉल बनाकर उछाल देते हैं। तीन तलाक की बात को ही ले लीजिए, कुरान में कहीं भी नहीं लिखा गया है कि एक बैठक में तीन बार 'तलाक' कहने से पति-पत्नी का रिश्ता टूट जाता है। सच तो यह है कि यह तो संकीर्णवादी एवं कट्टरपंथी उलेमा हजरात ने ही एक अल्लाह और एक इस्लाम को अपनी घृणित राजनीतिक दुकाने चमकाने के लिए न जाने कितने इस्लाम और फिरके बना रखे हैं। कोई कहता है 72 फिरके हैं तो कोई कहता है 73 फिरके हैं। यह सब बकवास है। इस्लाम मात्र एक मजहब है और कुरान के अनुसार चलता है। इस्लाम में पर्सनल लॉ बोर्ड या विभिन्न फिरकों जैसे शिया, सून्नी, बरेलवी, देवबंदी, अलह-ए-हदीस आदि को कोई स्थान नहीं।

समान आचार संहिता के आने से पूर्व ही पर्सनल लॉ बोर्ड के सदस्यों ने शोर मचाना शुरू कर दिया कि इस्लाम खतरे में है और उनके धार्मिक अधिकारों का हनन हो रहा है। मेरा मानना है कि समान आचार संहिता सभी धर्मो और फिरकों का आदर करते हुए बनाई जाएगी, इसलिए पहले उसे देख-समझ तो लिया जाए उसके बाद ही कोई निर्णय लिया जाए

तो यह सबके हक में होगा।

समान नागरिक संहिता पर तो कवायद अभी जारी ही है। विधि आयोग ने इस विवादास्पद मुद्दे पर विचार-विमर्श के दायरे का विस्तार करते हुए सभी राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजनीतिक दलों से अपनी राय साझा करने का आह्वान किया है और दलों को प्रश्नावली पर 21 नवंबर, 2016 तक अपनी राय भेजने को कहा है। यही नहीं विधि आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति डॉ. बी. एस. चौहान ने अल्पसंख्यक संगठनों, राजनीतिक दलों, गैर-सरकारी संगठनों, सिविल सोसाइटियों और सरकारी संगठनों एवं एजेंसियों को भी आयोग के साथ अपना विचार साझा करने का आग्रह किया है।

(१५)प्रश्न: क्या आप भी इस बात से सहमत हैं कि कबीर ने लोकजीवन को अपने दर्शन, विचार और जीवन में उतारा? यदि हाँ, तो क्यों?

उत्तर: हाँ, मैं भी आपकी इस बात से सहमत हूँ कि कबीर ने लोकजीवन को अपने दर्शन, विचार और जीवन में उतारा, क्योंकि उनका दृष्टिकोण व्यवहारिक था। इसीलिए तो कबीर ने अपने दर्शन और विचारों में कहीं से भी अपनी शास्त्रीय परंपरा का उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने कहा, पंडित मुल्ला जो लिख दीन्हा, छाड़ चले हमें कुछ नहीं लेना।' उन्होंने जब भी कहा, जहाँ से भी कहा और जो भी बातें की, वह लोकजीवन से जुड़ा है। यहाँ तक कि ईश्वर को भी उन्होंने लोकजीवन से ही प्रतिपादित करके गरीबों, पिछड़ों, वंचितों और दलितों को बताने का प्रयास किया। कबीर 'कर्मवादी दर्शन' के हिमायती थे इसीलिए ऊँचाइयों को पाकर भी उन्होंने अपने कर्म को एक पल के लिए भी नहीं भूले। चाहे कपड़ा बुनने की बात हो या उस कपड़े को बाजार में जाकर बेचने की बात हो।

कबीरदास ने गरीबी-अमीरी की असमानता की बात की जबकि काफी कठिन होता है सबकी बात करना और सभी लोगों को स्वीकार करना। उन्होंने कहा, 'साच कहो तो मारन भागे, झूठे जग पतियाना' यानी सच्ची बात कहो तो हर किसी को बुरा लगता है और लोग मारने को दौड़ती हैं जबकि झूठी बात करो तो उसे सच समझकर मान लेंते हैं। कबीर ने कहा, 'साई इतना दीजिए, जो मे कुटुम समाय।' यानी जरूरत से ज्यादा धन अर्जित करने में विश्वास नहीं करते वे।

(१६) प्रश्न: अयोध्या में रामायण सर्किट और उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा रामकथा संकुल निर्माण को लोग सांप्रदायिक नजरिए से क्यों देखते हैं?

उत्तर: वर्ष 2016 के विजयादशमी के दिन लखनऊ में आयोजित रामलीला में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 'जयश्रीराम' का नारा लगाने और तुरन्त बाद उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री अखिलेश यादव द्वारा रामकथा संकुल के निर्माण की घोषणा और इसी कड़ी में अयोध्या में रामायण सर्किट सहित रामायण संग्रहालय के निर्माण की बात होती है, तो इन्हें सकारात्मक विकास के रूप में देखा जाना चाहिए, क्योंकि इसके साथ स्वाभाविक तौर पर उस शहर में आधारभूत संरचना के विकास जैसे सौर लाइट, सड़कों का निर्माण, नालों का पुनर्निर्माण, घाटों के सौंदर्यीकरण हो तो इस तरह शहरों, तीर्थ स्थलों के विकास को अच्छा ही मानना चाहिए, मगर पता नहीं क्यों इन्हें सांप्रदायिक नजरियों से देखा जाता है।

हमारा नजरिया भी अजीब है, क्योंकि कम्बोडिया के अंगकोरवाट में निर्मित प्रमुख मंदिर के अंदर रामायण की घटनाओं के पूरे चित्रण को कोई सांप्रदायिक नहीं कहता। इंडोनेशिया में राम स्थानों को कोई सांप्रदायिक नहीं कहता। वेटिकन में बने क्राइस्ट म्यूजियम और शिरडी में साईबाबा के मंदिर तथा कुरूक्षेत्र में महाभारत का स्मारक बन सकता है तो उन सबको कोई सांप्रदायिक नहीं कहता तो पता नहीं अयोध्या में रामायण सर्किट और रामलीला पार्क या संकुल का निर्माण कैसे सांप्रदायिक हो जाएगा? दरअसल, राजनेता और राजनीतिक दल सभी का चश्मा अलग-अलग है और उसी हिसाब से सभी को वोट की राजनीति से देखते हैं। इस नजरिए को बदलने की आवश्यकता है।

(१७) प्रश्न: क्या आपको ऐसा लगता है कि कट्टरता की वहाबी विचारधारा को मात देने के लिए मुसलमानों में सुधारवादी सोच को बढ़ावा देने की आवश्यकता है?

उत्तर: हाँ, मैं भी यह महसूस करता हूँ कि कट्टरता की वहाबी विचारधारा को मात देने के लिए मुसलमानों में सुधारवादी सोच को बढ़ावा दिए जाने की आवश्यकता है, क्योंकि जबतक वहाबी विचारधारा के कट्टरपंथी तेवर को नहीं बदला जाएगा, भारत सहित दुनिया भर में इस्लाम को आतंकवाद से जोड़कर देखा जाएगा।

उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन के कट्टरपंथी इस्लामी उपदेशक शेख अंजुम चौधरी जो बहाबी-सलकी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते रहे हैं,

एक बार फिर सुर्खियों में इसलिए हैं कि उन्हें ब्रिटिश अदालत ने इस्लामिक स्टेट (आईएस) का समर्थन करने के जुर्म में दोषी करार दे दिया है और उन्हें एक विशेष अभियान के दौरान गिरफ्तार कर लिया गया है। शेख अंजुम चौधरी और उनके साथी मोहम्मद मिजानुर रहमान को 10 जुलाई, 2016 को आतंकवादी विरोधी एक्ट 2000 की धारा 12 के तहत साबित किया गया है कि उसने न सिर्फ आईएस का समर्थन करने के लिए दुनिया भर के मुसलमानों को गुमराह करने की कोशिश की, बल्कि खुद भी एक चरमपंथी इस्लामी संगठन कायम किया।

भारत में शरीयत कानून लागू करने का आह्वाहन करने वाली इस्लामी वेबसाइट के संस्थापक अंजुम चौधरी ही हैं। हाल ही में प्रतिबंधित होने वाली उनकी वेबसाइट का लक्ष्य हमारे लोकतांत्रिक और उदारवादी देश में शरीयत के नाम पर इस्लामिक साम्राज्य का गठन करना था। अंजुम चौधरी जो अपने आपको शरीयत की अदालत का प्रबंधक करार देते रहे, अपने फतवे में लिखते हैं कि इस्लाम सेक्युलरिज्म की आज्ञा नहीं देता और इसके अनुसार गैर-मुस्लिम शासक मुसलमानों पर हुकूमत नहीं कर सकते। भारतीय उपमहाद्वीप को उसके 'गौरवशाली इस्लामिक शासन' के दिनों तक लौटाने के लिए शरीयत लगाना जरूरी है। चौधरी का मानना है कि भारतीय मुसलमानों को चुनाव का बहिष्कार करना चाहिए और शरीयत का नारा लगाना चाहिए। चौधरी की धार्मिक अराजकता और कट्टरता का सबसे ज्यादा अपमानजनक पहलू यह है कि वह खुलकर कहते रहे हैं कि इस्लाम शांति का धर्म नहीं है। तथाकथित इस्लामी खलीफा अबू बकर अल-बगदादी ने भी यह कहा था कि इस्लाम कभी भी शांति का धर्म नहीं रहा है, बल्कि यह स्थायी रूप से जंग का मजहब रहा है। जिहादी संगठन तभी सफल होते हैं जब समाज में विचार के स्तर पर उनको समर्थन मिलता है।

यह सही है कि एक रिपोर्ट के मुताबिक तकरीबन 1050 भारतीय इस्लामी विद्वानों ने एक ऐसे फतवे पर हस्ताक्षर किया है जिसमें आईएस की गतिविधियों को इस्लाम के बुनियादी सिद्धांतों के खिलाफ करार दिया गया है, मगर विडंबना यह है कि भारत में प्रभावशाली इस्लामी विद्वानों अर्थात उलमा ने बगदादी के इस झूठ पर कोई खास प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की। हाँ, इतना जरूर है कि सूफीमत से जुड़े हुए मुस्लिम विद्वान भारत में इसके खिलाफ मजबूत कदम उठा रहे हैं। परंतु यह प्रश्न उठता है कि धार्मिक अराजकता और उग्रवाद के खिलाफ दिए गए फतवे पूरी तरह से नाकाम

और अप्रभावी क्यों साबित हो रहे हैं और बगदादी अबतक अपने खतरनाक संगठन में मुस्लिम युवाओं को भर्ती करने में क्यों सफल हो रहा है? जबकि 100 देशों से एक ही साल के भीतर 30,000 मुसलमान इराक और सीरिया में संगठित तथाकथित इस्लामी राज्य में कैसे पहुँच गए?

भारतीय इस्लामी विद्वानों को और खासकर वहाबी-सलफी मदरसों से पढ़े हुए उलमा को तकरीबन पूरे इस्लामी पाठ्यक्रम का निष्पक्ष रूप से जायजा लेना होगा और जबतक कट्टरता की इस वहाबी विचारधारा को मात देने के लिए मुसलमानों में एक सुधारवादी सोच को बढ़ावा नहीं दिया जाएगा और इसके लिए इस्लाम की आध्यात्मिक परंपराओं की समृद्ध विरासत को उजागर नहीं किया जाएगा, जबतक इस परिस्थिति में कोई बदलाव संभव नहीं होगा। मैं फिर कहता हूँ कि जबतक यह कट्टरपंथी तेवर नहीं बदलेगा, दुनिया भर में इस्लाम को आतंकवाद से जोड़कर देखा जाता रहेगा। सच तो यह है कि भारत में इस्लाम की इस धारा में उतनी कट्टरता नहीं है जितनी मुस्लिम देशों में है, परंतु यह इस्लाम की उदारवादी सोच को आगे बढ़ाने में बाधा है। जरूरत इस बात की है कि इस प्रक्रिया में मदद करने के लिए चिंतित मुसलमानों को इस्लामी आध्यात्मिकता, शांति और बहुलवाद पर आधारित एक व्याख्या तैयार करनी होगी और इसको लेकर भारतीय मुसलमानों तक पहुँच बनानी होगी।

मुस्लिम युवाओं में कट्टरता की बढ़ती प्रवृत्ति को रोकने के लिए भारत को वहाबी-सेलफी, जाकिर नाईक और ब्रदर इमरान जैसे मौलानाओं, टेलीविजन के जरिए धर्म का प्रचार करने वालों, आतंकवाद से हमदर्दी जताने वाले पत्रकारों और इस्लामी संगठनों पर कड़ी निगाह रखने की जरूरत है।

(१८)प्रश्नः वर्ष २०१६ के महीनों में गोरक्षा की आड़ में देश के कई इलाकों में हत्या, मारपीट, धमकाने तथा पैसे वसूलने की घटनाओं के बाद प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने खरी-खोटी बातें कहकर असामाजिक आपराधिक तत्वों पर कड़ी कार्रवाई करने को कहा है। क्या आप इसका स्वागत करते हैं? हाँ, तो क्यों?

उत्तरः देश के विभिन्न राज्यों में गोरक्षा के नाम पर कुछ असामाजिक एवं आपराधिक तत्वों द्वारा अल्पसंख्यक एवं दलित समुदाय की हत्या, मारपीट, धमकाने तथा पैसे वसूलने की घटनाओं के बाद प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने दो टूक शब्दों में गोरक्षा के बहाने की जा रही हिंसा की निंदा करते हुए उनपर कड़ी कार्रवाई करने की जो बात की है वह स्वागत योग्य है, क्योंकि गोरक्षा

की आड़ में वस्तुतः असामाजिक आपराधिक तत्वों के इस कारनामों से देश में साम्प्रदायिकता का वातावरण बनने की आशंका बढ़ जाएगी और सद्भाव एवं समरसता का जो माहौल है वह बिगड़ेगा। प्रधानमंत्री ने अपने संवाद में भागीदारी पर आधारित लोकतंत्र की आवश्यकता को जो रेखांकित किया है उससे लोकतांत्रिक व्यवस्था कारगर हो सकती है तथा देश के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है। बहुमत से चल रही सरकार के लिए सबको साथ लेकर चलना जरूरी हो जाता है और इसके लिए परस्पर विश्वास और पारदर्शिता का होना अहम हो जाता है। सकारात्मक सोच दिलो-दिमाग से उतरकर जब व्यवहार में परिलक्षित होगी, तभी बात बनेगी और देश बेहतरी की ओर अग्रसर होगा।

(१९)प्रश्नः दलित उत्पीड़न की घटनाओं का मुख्य कारण क्या है? दलित उत्पीड़न के मामले क्या सभ्य समाज की अवधारणा को भी नुकसान नहीं पहुँचाते हैं?

उत्तरः दलित उत्पीड़न की घटनाओं का मुख्य कारण है समाज की सोच। इस देश में दलितों की उपेक्षा एक लंबे अरसे से होती आ रही है, क्योंकि यह सोच आजादी के सत्तर साल बीत जाने के बाद अभी भी बरकरार है कि दलित उनके समकक्ष नहीं। यह सोच सामंती मानसिकता को द्योतक है और लोकतंत्र में ऐसी मानसिकता के लिए कोई जगह नहीं हो सकती, क्योंकि आजादी के बाद बना हमारा संविधान इस बात की इजाजत नहीं देता कि दलितों के साथ दुर्व्यवहार किया जाए और उसके मान-सम्मान को चोट पहुँचायी जाए।

दलित उत्पीड़न की घटनाओं के मामले में अक्सर यह कहा जाता है कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम को और कठोर बनाया जाए। निश्चित तौर पर इस अधिनियम की खामियाँ दूर की जानी चाहिए, लेकिन प्रयास यह होना चाहिए कि इस अधिनियम के उल्लंघन की नौबत ही न आए। इसके लिए राजनीतिक दलों को आगे आने की आवश्यकता है।

दलित उत्पीड़न के मामले सभ्य समाज की अवधारणा को भी नुकसान पहुँचाते हैं और भारतीय मूल्यों को भी हेठी करते हैं। जब तक दलितों के बारे में लोगों की सोच नहीं बदलती तब तक इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं कि दलित उत्पीड़न की घटनाओं के मामले में संबंधित शासन-प्रशासन की ओर से त्वरित कार्रवाई किया जाना सुनिश्चित हो। इससे

ही उन तत्वों को यह संदेश दिया जा सकता है जो दलितों के मान-सम्मान से खेलते रहते हैं।

(२०)प्रश्न: क्या बाबरी मस्जिद की दावेदारी के पैरोकार मोहम्मद हाशिम अंसारी के इंतकाल के साथ रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद ऐतिहासिक विवाद के एक युग का भी अवसान नहीं कहा जाएगा? आखिर क्यों?

उत्तर: हाँ, बाबरी मस्जिद की दावेदारी के पैरोकार मोहम्मद हाशिम अंसारी के इंतकाल के साथ रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद ऐतिहासिक विवाद के एक युग का भी अवसान कहा जाएगा, क्योंकि हाशिम अंसारी एक अलहदा शख्सियत के मालिक थे जिनमें गंगा-जमुनी संस्कृति का प्रयाग सहज निहित था, जिसकी धाराओं को अब अलग-अलग करने का प्रयास किया जा रहा है। जिन लोगों ने बाबरी मस्जिद पर मुसलमानों के दावे की अदालती लड़ाई में प्रतिपक्षी को उलझाकर मुस्कुराते देखा है, उन्होंने यह भी देखा है कि वह अदालत में उत्पन्न कटुता को अपने विश्वास की दहलीज तक नहीं फटकने देते थे। यहाँ तक कि बाबरी मस्जिद ढहाए जाने के पहले, ढहाए जाने के दौरान या बाद में हुई उन्मादी सांप्रदायिक हिंसा से इस भरोसे को साबुत बचा लाए थे कि हिंदू-मुस्लिम की नियति मिलजुल कर रहने में है।

सर्वधर्म समभाव के तो हाशिम अंसारी साहब पोर-पोर के पैरोकार थे, जिनका मन बाबरी मस्जिद के बाद टेंट में बसे रामलला को देख बरवस भींग उठता था। वह ताजिंदगी इस आस्था के कायल रहे कि विवाद का स्थायी हल आपसी रजामंदी से ही निकलना है। इसलिए वह चाहते थे कि उनकी जिंदगी में यह हो जाए और रामलला को भी एक छत मिल जाए। साझा विरासत की अर्जित हाशिम की यही पुख्ता जमीन थी, जिसने हिंदुओं के बड़े धर्मगुरुओं तक को उनकी मय्यत तक खींच लाई थी।

बाबरी मस्जिद के मुद्दई मो. हाशिम अंसारी का विगत 2 0 जुलाई, 2016 को 95 वर्ष की उम्र में इंतकाल हो गया और निधन के साथ मंदिर-मस्जिद विवाद के सौहार्दपूर्ण हल की मुहिम ने अपना पुरोधा खो दिया। उनका अंदाज ऐसा था कि वह कई दशक तक बाबरी मस्जिद की दावेदारी के पर्याय के तौर पर जाने-पहचाने गए। ईद के दिन शुभकामना देने आए हनुमानगढ़ी से जुड़े शीर्ष महंत ज्ञानदास को अपने बेटे मो. इकबाल का हाथ सौंपते हुए हाशिम अंसारी ने उनसे कहा था, आज से यह आपके हवाले, उस दिन मानों पूरी अयोध्या इकबाल के साथ थी। इंतकाल के बाद जनाजे

में जनसैलाब तो था ही महंत ज्ञानदास, महंत नरेन्द्र गिरि, राम जन्मभूमि के मुख्य अर्चक आचार्य सत्येन्द्र दास सहित अनेक संत पहुँचे अंसारी का विदाई देने।

(२१)प्रश्न: पेशेवर डॉक्टर जाकिर नाइक धर्म प्रचारक हैं या घृणा का व्यापारी?

उत्तर: यूँ तो जाकिर नाइक प्रशिक्षित डॉक्टर हैं और महाराष्ट्र के रत्नागिरी के अमीर परिवार से संबंध रखते हैं, मगर उनकी असली पहचान इस्लाम के दार्शनिक, ऐतिहासिक और अलग-अलग पंथों के बारे में उसकी व्याख्या से बनी है। यह महज संयोग हो सकता है कि जाकिर नाइक और पाकिस्तान में छिपे बैठे आतंकवादी दाउद इब्राहिम एक ही इलाके रत्नागिरी से आते हैं और मुंबई में भी जाकिर नाइक उसी डांगरी इलाके में अपनी संस्था चलाते हैं, जहाँ आज भी दाउद का घर-बार है। जाकिर नाइक 'फूड प्रॉसेस' का एक बड़ा व्यापारी है। मछली पालन, आम के बगीचे और कोल्ड स्टोरेज के मालिक जाकिर नाइक की कंपनी 'नाइक एंड कंपनी' बड़ा कारोबार करने वाली कंपनी के रूप में जानी जाती है।

मुंबई में 18 अक्टूबर, 1965 को जन्मे जाकिर नाइक जाने-माने इस्लामी धर्म प्रचारक हैं, सूट-बूट पहनकर और अँग्रेजी में भाषण देकर उन्होंने अपनी एक अलग छवि बनायी है, मगर दूसरे धर्मो से इस्लाम की तुलना कर इस्लाम धर्म को उन्होंने सबसे श्रेष्ठ बताया है जिसकी वजह से उन्होंने लगातार विवादों को भी आमंत्रित किया है।

जाकिर नाइक ने 1991 में इस्लामिक रिसर्च फाउंडेशन नामक संस्था बनायी तथा धर्म प्रचार का संगठित काम शुरू किया। वे आधुनिक शिक्षा के साथ धार्मिक शिक्षा देने के लिए इस्लामिक इंटरनेशनल स्कूल भी चलाते हैं, जिसे उनकी पत्नी फरहत नाइक संभालती है। यहीं नहीं वर्ष 2006 में जाकिर नाइक ने अपने विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए पीस टीवी नामक इंटरनेशनल सेटेलाइट चैनल शुरू किया है जो दुबई से संचालित होता है। इसकी फंडिंग ब्रिटेन की संस्था इस्लामिक रिसर्च फाउंडेशन इंटरनेशनल के माध्यम से जुटायी गयी है। 2008 और 2015 के बीच इस फाउंडेशन ने इस नेटवर्क में करीब नौ मिलियन पाउंड निवेशित किया।

पेशेवर इस डॉक्टर जाकिर नाइक की सबसे बड़ी ताकत है 'स्मृति'। उसे कुरान की आयतें और हदीस मुँहजबानी याद है और टीवी कार्यक्रम में उसकी सबसे बड़ी शक्ति है। प्रसिद्ध लेखक और धर्म प्रचारक

तथा भारतीय मूल के दक्षिण अफ्रीका निवासी अहमद हुसैन दीदात जाकिर नाइक के प्रेरक रहे हैं। इस्लामिक धर्म के प्रचारक जाकिर नाइक से बांग्लादेश में हुए हालिया आतंकी हमले में शामिल युवक के प्रेरित होने की बात सामंने आने के बाद इस विवादास्पद व्यक्तित्व के भाषणों की जाँच की जा रही है।

इस प्रकार कुल मिलाकर देखा जाए तो डॉ. जाकिर नाइक के बारे में खतरे की घंटी बांग्लादेश में जरूर बजी हो, पर उनके विचार और उनसे बनने वाला वातावरण पूरी दुनिया के लिए खतरनाक और हिंसक है, क्योंकि धर्म प्रचारक से ज्यादा वह घृणा का व्यापारी है।

जाकिर नाइक की वेशभुषा और भाषा अन्य किसी साधारण मुल्ला मौलवियों से अलग है, लेकिन उसके विचार कुख्यात आतंकी हाफिज सईद से कम जहरीले नहीं हैं। ओसामा बिन लादेन को आतंकवादी मानने से इनकार करने वाले नाइक इस्लाम को त्यागकर दूसरा मजहब स्वीकार करने वाले की सजा मौत बताते हैं। वह इस्लामी देशों में गैर-मुस्लिमों के लिए धार्मिक स्थल बनाने की स्वीकृति नहीं देने के पक्षधर हैं। वह मानते हैं कि इस्लाम में औरतों की पिटाई तर्कसंगत है। क्या यह विडंबना नहीं है कि सऊदी अरब आइएस के निशाने पर होने के बाद भी नाइक को इस्लाम की सेवा के लिए किंग फैसल अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित करता है?

जाकिर नाईक और उनका चैनल अपने जहरीले प्रचार-प्रसार के कारण ब्रिटेन, कनाडा, मलेशिया सहित कई देशों में प्रतिबंधित है। लोगों को इस्लाम का वास्ता देकर बरगलाने में आतंकियों का समर्थन व महिलाओं के प्रति संकीर्ण व निम्न विचारों का आरोप झेल रहे इस्लामी उपदेशक डॉ. जाकिर नाइक को देख हमें हैरानी होती है कि आधुनिक समाज में पैदा हुए व उच्च शिक्षा ग्रहण किए व्यक्ति ऐसी निम्नस्तरीय विचारधारा के समर्थक हैं।

(२२)प्रश्न: क्या योग को धर्म से जोड़कर देखना सही है?

उत्तर: योग को धर्म से जोड़कर देखना कतई सही नहीं है, क्योंकि योग किसी धर्म का नहीं, बल्कि हम सभी भारतीयों की संस्कृति का अटूट हिस्सा है। यह हमारी ऐसी साझी धरोहर है, जिसपर हर भारतीय को गर्व होना चाहिए। योग का उद्भव प्राचीन भारत में वैदिक काल में हुआ और अनगिनत ऋषियों, मुनियों, संतों और मनीषियों ने इसे परिष्कृत किया। इसको कभी भी धर्म या कर्मकांड से नहीं जोड़ा गया। वृहद योगसूक्त के रचयिता महर्षि पतंजलि ने योग को परिभाषित करते हुए कहा कि योग मन को वश

में करने का साधन है और अपने 'स्व' को परिष्कृत करने का माध्यम है। योग. ध्यान क्रिया और मनन के माध्यम से आपसी प्रेम, समदर्शिता, सद्‌भाव, अहिंसा, सत्यवादिता और संयम आदि गुणों के उन्नयन का प्रयास करता है। सार यह है कि योग एक क्रिया है, कोई धार्मिक कर्मकांड नहीं। हर कोई स्वतंत्र है योग को अपने अनुसार ढालने के लिए। योग को अनुशासन से जोड़ा जाता है, जिसमें सारी प्रक्रिया यम व नियम पर आधारित है।

अपने शरीर और मन का ध्यान करना तो सभी धर्म सिखाते हैं और उसमें कुछ गलत नहीं है। आखिर प्रकृति के नियम तो सबके लिए एक जैसे ही होते हैं। प्रकृति तो धर्म के आधार पर सांसें नहीं बाँटती और ऐसा भी नहीं है कि अलग-अलग धर्म में शरीर की बनावट अलग-अलग होती है या की जा सकती है। सब प्रकृति और उसके नियमों से बँधे हैं। ऐसे में जीवन को परिष्कृत करने का उपाय कहीं से भी आए, हर्ज क्या है। आखिर फायदा भी तो अपने शरीर को ही हो रहा है न?

आज दुनिया भर में योग को स्वीकार्यता मिल रही है। संयुक्त राष्ट्र में जिन 177 देशों ने विगत 21 जून, 2015 को योग को समर्थन देकर प्रत्येक वर्ष 21 जून को विश्व योग दिवस मनाने की स्वीकृति प्रदान की उनमें 40 मुस्लिम राष्ट्र हैं। कुछ राजनीतिक दल और उसके राजनेता अपने स्वार्थ के लिए योग को वोट बैंक से जोड़ रहे हैं और योग को सांप्रदायिक बता रहे हैं। ऐसे नेता देश के लोगों का भला नहीं, बल्कि उनका नुकसान और अपनी खिल्ली उड़ा रहे हैं। योग स्वस्थ जीवन जीने का एक तरीका है। यह हमारे अस्तित्व के विभिन्न आयामों को संतुलित करने और हमें शारीरिक एवं गहरी मानसिक शांति व सुकून की ओर ले जाने की विधा है जो हमें जिस्म और दिमाग की अनेक बीमारियों को जोखिम से दूर रखता है। हर इनसान को इसे अपनाना चाहिए।

रोग-प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि कर शरीर को स्वस्थ एवं सात्विक विचारों की प्रेरणा प्रदान करने में योग का अपना एक अलग महत्व है। योग जीवन की सीढ़ी है, यह ऊपर उठने का उत्तम और सरल मार्ग है। योग एक व्यायाम है, शरीर को स्वस्थ रखने का तरीका है। योग का कोइ धर्म नहीं है। योग आस्तिक के लिए भी है और नास्तिक के लिए भी। योग कोई धार्मिक गतिविधि नहीं है। इसे लेकर विवाद का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि इससे समाज को किसी प्रकार की हानि नहीं है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आज की तिथि में योग विश्व के

लिए भारत की एक ऐसी देन है जिसे व्यक्तिगत साधना और अनुभवों से निकल कर सामूहिक व वैश्विक पहचान मिल रही है।

(२३)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि २१वीं सदी में भारत में धर्म की आढ़त सबसे लाभकारी उद्यम है? यदि हाँ, तो क्यों?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि 21वीं सदी में भारत में धर्म की आढ़त सबसे लाभकारी उद्यम है, क्योंकि धर्म के थोक और खुदरा व्यापारियों के प्रति भारतीयों की अंतहीन सहिष्णुता पूरी दुनिया में सबसे अनूठी और अनोखी है। धर्म के थोक व्यापारियों की पुरानी परिपाटी में महंत, पीठासीन आचार्य, परमहंस, जगदगुरु आदि आते हैं, तो नयी व्यवस्था में इलेक्ट्रॉनिक प्रचार माध्यमों से प्रवचन और परचून के वितरक अब स्थापित प्रमाणित धर्मगुरु भी हैं। इन थोक व्यापारियों में कई लोगों के अधम, अपराधी और दुष्चरित्र होने की पुख्ता सबूत मिलने के बाद भी इन धर्माचार्यो के प्रति इनके उपासकों की अँधश्रद्धा और उनकी सहनशीलता आश्चर्यजनक है। धर्म के खुदरा व्यापारी, हर छोटे-बड़े शहर के व्यस्ततम इलाकों में सार्वजनिक स्थान पर भजन, सत्संग, पत्थर-पूजन या आस्था भी पंडाल से बेजा कब्जा करते हैं, यथाशीघ्र अवैध पूजन स्थल सह व्यावसायिक परिसर में बदल जाता है। जिन भारतीयों को अपनी निजी भूमि पर तिनके का अतिक्रमण भी असहनीय है, उन्हें पीढ़ियों से चली आ रही अपनी सामूहिक भूमि की विरासत पर अवैध कब्जे से पूरी सहानुभूति है।

मुझे तो आश्चर्य इस बात पर होता है कि भावी पीढ़ियों की इस सामुदायिक भूमि पर हरित पट्टी, बाग, खेलकूद का मैदान, भूजल संरक्षण, पुस्तकालय, वाहन पड़ाव, शौचालय जैसे जनोपयोगी सुविधाओं के स्थान पर जबरन प्रार्थनाघर-देवालय, हनुमान मंदिर आदि की स्थापना हो जाती है और कुछ आपराधिक प्रवृत्ति के लोगों का उस पर कब्जा ही नहीं, बल्कि उससे दान-अक्षत आदि से नियमित आमद का जरिया भी हो जाता है। नागरिक सुविधाओं के अभाव, निकृष्ट शिक्षा-स्वास्थ्य सेवाएँ, आवागमन के जर्जर ढाँचे, बिजली-पानी की कुव्यवस्था जैसी विकृतियों के प्रति इस देश के लोगों का वीतरागी दृष्टिकोण आखिर किस बात का परिचायक है? चारों ओर व्याप्त इन कुरीतियों-कूटिलताओं को क्या सचमुच धार्मिकता कहेंगे?

दरअसल, भारतवासी, वर्ष के लगभग हर दिन सर्वधर्म सद्भाव और धार्मिक सहिष्णुता के प्रतिमान होते हैं, लेकिन शक्ति प्रदर्शन के किसी धार्मिक उत्सव के दिन वे अपने ध्वज, पताका, जुलूस के मार्ग और शौर्य

प्रदर्शन पर किसी भी अनुशासन के प्रति बेहद असहनशील हो जाते हैं। अनेक अवसरों पर धार्मिक उन्माद के इन सार्वजनिक प्रदर्शनों के दौरान भारतीयों की असहनशीलता की परिणति व्यापक हिंसा के रूप में होती रही है।

(२४)प्रश्न: धर्म और राजनीति का विभाजन दिनों-दिन क्यों झीना होता जा रहा है?

उत्तर: धर्म और राजनीति का विभाजन दिनों-दिन इसलिए झीना होता जा रहा है, क्योंकि धर्म को अपने विस्तार के लिए राजनीति का सहारा चाहिए, तो राजनीति को भी अपने अस्तित्व के लिए धर्म का। इस प्रकार समाज में इन दोनों के मिश्रण से एक नया वर्ग जन्म ले चुका है–धर्मनेता का वर्ग। इस वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे है आसाराम बापू जैसे संत-सन्यासी और डपोड़शंखी एवं पाखंडी लोग। यह वर्ग सभी धर्मो में और सभी राजनीतिक दलों में उभर रहा है। धर्म इन्हें आस्था और अनुयायी के जरिए वोट और नोट दिलाता है तथा राजनीति इन्हें शक्ति उपलब्ध कराती है। धर्म और राजनीतिक दलों का अपना-अपना स्वार्थ है जिसकी वजह से इन दोनों का विभाजन दिनों-दिन झीना होता जा रहा है।

राजनीतिक पार्टियाँ अपने को सत्ता पर काबिज करने के लिए धर्म का इस्तेमाल कर रही हैं। इसी प्रकार नेता या असामाजिक तत्वों ने अपना चेहरा दागदार होने से बचाने के लिए धर्म को ढाल की तरह आगे रखा और सामने खड़ी भीड़ को उत्तेजित कर दिया तथा कहीं साम्राज्य बनाते बाबा और तथाकथित सन्यासी कहीं नौलखा मंदिर बनाकर चढ़ावा खाता व्यापारी मालामाल बन गया।

धर्मांधता की वजह से अँधविश्वास, रूढ़ियाँ, परम्पराएँ और प्रथाओं की गिरफ्त से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। साथ ही पूजा-पाठ, देवी-देवताओं, तीर्थ स्थानों, मन्नतों की प्रक्रिया से अपने-आपको बाहर कहाँ कर पा रहे हैं? धर्म के ठेकेदार और राजनेता दोनों पंथों, विचारों, जातियों, उपजातियों के दलदल में आज भी फंसे हैं। हमारा समाज आज अलग-अलग गिरोहों में बट चुका है। एक गुट के लोगों को दूसरे गुट के लोगों से कोई सरोकार नहीं रहा। इंसानियत के सारे रिश्ते टूटते चले जा रहे हैं। जनता यह समझने के लिए तैयार नहीं कि हमलोगों को बाँट दिया गया है। दादरी में होने वाली हत्या पर समाज का एक वर्ग चिल्लाता है तो दूसरा वर्ग या तो मौन धारण कर लेता है या फिर उसको ही सही ठहराने लगता है।

(२५)प्रश्नः क्या भारतीय समाज आज आस्था की विवेकहीन अतिशबाजी में नहीं झुलसता जा रहा है?

उत्तरः हाँ, भारतीय समाज आज आस्था की विवेकहीन अतिशबाजी में झुलसता जा रहा है। पिछले दिनों 11 अप्रैल, 2016 को केरल के कोल्लम जिले के पारावुर स्थित पुत्तिंगल मंदिर में आतिशबाजी से हुई त्रासदी से ज्यादा इसका ज्वलंत उदाहरण और क्या हो सकता है जिसमें सौ से अधिक लोगों की मौत और चार सौ से अधिक लोगों का घायल होना हृदय विदारक था। इस हादसे की तह तक जाने के बाद सबसे बड़ी अस्वाभाविक बात यह कही जाएगी कि इस त्रासदी में स्थानीय विवेक को तिलांजलि देकर पहले मंदिर के पदाधिकारियों की भावनाओं को भड़काने का सिलसिला चल निकला। दरअसल, भारतीय समाज की त्रासदी है कि और हादसों की तरह इस त्रासदी में भी स्थानीय नेताओं का संरक्षण पाने वाले मंदिर के पुजारियों पर कार्रवाई करने की बजाय 'अँधेरनगरी चौपट राजा' वाले नाटक की तरह अतिशबाजी बनाने वालों को ढूँढ़ने का प्रयास किया गया। सच तो यह है कि सही अर्थो में कानून का पालन करने वाला और वैज्ञानिक सोच पर आधारित समाज नहीं बनने देने के पीछे यही कारण है। आस्था के नाम पर कभी सरकारें अल्पसंख्यक समाज को छूट देती थीं और अब उसकी होड़ में बहुसंख्यक समाज भी आस्था के आगे कानून और प्रशासन को ठेंगा दिखाने पर आमादा हो गया है। ऐसा लगता है कि धर्म ने राजनीति और विज्ञान पर विजय की घोषणा कर दी है। उसने आस्था से बँधे वोटों के माध्यम से तमाम आधुनिक संस्थाओं को अपनी मुट्ठी में कर लिया है। आखिर तभी तो कोल्लम के पुत्तिंगल देवी मंदिर के हादसे में स्थानीय प्रशासन की अनुमति के बिना और सर्वोच्च न्यायालय के दस बजे के बाद आतिशबाजी न करने के आदेश तथा काली मंदिर के पास रहने वाली एक बुढ़िया की चार साल से दी जा रही चेतावनी के बावजूद वहाँ मंदिर महंतों और पुजारियों ने आतिशबाजी की प्रतियोगिता का आयोजन किया और मानव निर्मित एवं हृदय विदारक यह हादसा हुआ।

जबकि सच्चाई यह है कि केरल का समाज उत्तर भारतीय समाजों की तुलना में ज्यादा साक्षर, कॉम्युनिस्ट आंदोलन प्रभावित और वैज्ञानिक चेतना से लैस माना जाता है। फिर भी वहाँ विगत तीन वर्षो में इस तरह की आतिशबाजी में 451 लोगों की जानें जा चुकी हैं। यह केवल केरल ही नहीं पूरे भारतीय समाज के लिए चेतावनी है कि आस्था पर विवेक का अंकुश

नहीं रहेगा तो न हम स्थानीय स्तर पर सुरक्षित रहेंगे और न ही राष्ट्रीय स्तर पर। आखिर केरल के पुत्तिंगल देवी मंदिर हादसे के दूसरे दिन मंदिर के समीप स्थित अत्तिंगल में एक गोदाम से 100 किलो विस्फोटक और तीन कारों में भरा आतिशबाजी का सामान का बरामद होना किस बात का सूचक है और बताया गया कि आतिशबाजी के दौरान भी सभी नियम-कायदों को ताक पर रख दिया गया था तथा पटाखे बनाने में प्रतिबंधित रसायनों का इस्तेमाल किया गया था।

हमारे देश में आस्था के नाम पर कहीं हाथियों की दौड़ तो कहीं बैल दौड़ की प्रतियोगिता होती है। इसमें थोड़ी सी लापरवाही लोगों की जान ले सकती है। केरल के पुत्तिंगल देवी मंदिर में अतिशबाजी के दौरान पिछले दिनों सौ से ज्यादा लोगों की जानें गई। इस संदर्भ में मेरा कहना है कि धार्मिक आयोजन करते वक्त अब आयोजकों को भी यह सोचना चाहिए कि समय के साथ क्या बदलाव होना चाहिए। अगर अतिशबाजी जानलेवा है तो यह बंद होनी चाहिए। हाँ, अगर आस्था-परंपरा आड़े आती है, तो एक छोटा पटाखा फोड़कर इसकी भरपाई की जा सकती है। लोगों को अपनी मानसिकता में बदलाव लाना होगा। बदलाव वक्त का तकाजा है।

(२६)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि धर्मगुरु चाहे जो हों, वे जब तक अपने को संविधान प्रदत्त मूल्यों के अनुकूल नहीं बनाते, तब तक उनके बोल-वचन मनुष्य-विरोधी ही माने जाएँगे?

उत्तरः भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष देश में संस्थागत धर्म अपने विस्तार और ताकत में असीम होना चाहता है और उसकी गद्दी पर बैठे धर्मगुरु, पंडे-पादरी, मौलवी-महंथ सर्वव्यापी-सर्वज्ञानी और सर्वशक्तिमान बताना चाहते हैं। वे कहते हैं कि उनके पास संसार की हर समस्या की व्याख्या और समाधान है और इसलिए उन्हें सर्वनियंता होने का स्वघोषित हक है। लेकिन मेरा मानना है कि जो स्वयं को परम स्वतंत्र माने, उसके स्वेच्छाचारिता होने का खतरा होता है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में इसी बात की तस्दीक करते हुए ताने-उलाहने के स्वर में लिखा 'परम स्वतंत्र सिर पर ना कोऊ।' मानवता का अबतक का इतिहास भी तो यही सिखाता है कि स्वेच्छाचारिता किसी कीमत पर भी बर्दाश्त नहीं की जा सकती। वैसे धर्मगुरु भी तो देश के बाकी नागरिकों की तरह देश के नियम-कानून तथा संविधान के प्रावधानों से बँधे हैं। यह नियम यदि उन्हें अभिव्यक्ति की आजादी देता है, तो उनसे यह उम्मीद भी रखता है कि इस आजादी का इस्तेमाल वे

बाकियों की अभिव्यक्ति को कुचलने के लिए नहीं करेंगे। लेकिन धर्मगुरु तो आज वैसा ही कर रहे हैं।

आपने सुना नहीं एक धर्मगुरु ने कह डाला कि महिलाओं द्वारा शनिमंदिर में पूजा किए जाने के कारण ही बलात्कार के मामलों में वृद्धि होती है। ठीक इसी प्रकार उन्होंने यह भी कहा कि साईं बाबा की पूजा के प्रचलन की वजह से ही महाराष्ट्र के मराठवाड़ा क्षेत्र में लोग पानी के लिए तरस रहे हैं। कोई धर्मगुरु फैसला सुनाते हैं कि 'भारत माता की जय' न कहने पर मातृभूमि में रहने का उन्हें अधिकार नहीं है।

दरअसल, ऐसे धर्मगुरु यह नहीं जानते कि देश के संविधान ने व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता, बंधुता और गरिमा को किसी धर्म का आधार लेकर देश-जीवन की कसौटी नहीं बनाया है। इसलिए धर्मगुरु चाहे जो हों, वे जब तक अपने को संविधान प्रदत्त मूल्यों के अनुकूल नहीं बनाते, उनके बोल-वचन मनुष्य-विरोधी ही माने जाएँगे।

(२७)प्रश्नः सिख धर्म के अंतिम गुरु और महान संत गुरु गोविंद सिंह क्या तलवार के साथ कलम के भी धनी थे? उनकी साहित्य साधना और कृतियों पर आप क्या कुछ कहना चाहेंगे?

उत्तरः हाँ, सिख धर्म के महान संत गुरु गोविंद सिंह तलवार के साथ-साथ कलम के भी धनी थे। विगत 22 से 24 सितंबर, 2016 को उनकी जन्म स्थली पटना में उनके 350वें प्रकाश पर्व पर आयोजित इंटरनेशनल सिख कॉन्क्लेव में गुरु गोविंद सिंह की साहित्य साधना और कृतियों पर विस्तार से हुई चर्चा से मुझे भी जानकारी मिली कि गुरु गोविंद सिंह तलवार के साथ-साथ कलम के भी धनी थे। 2418 पृष्ठों के उनके कालजयी ग्रन्थ में स्त्री विमर्श प्रभावी निष्कर्ष तक पहुँचा है। मानवता के तकदीर लिखने वाले गुरु गोविंद सिंह की कलम से लोगों के मन पर न केवल साहित्य के माध्यम से सकारात्मक असर पड़ा, बल्कि अज्ञानता भी दूर हुई। उनकी रचनाओं का उद्येश्य केवल युद्ध नहीं, नारी का वास्तविक उत्थान भी है। इसीलिए वे पहले देवी चरित लिखते हैं, क्योंकि उनकी नजर में पुरुषों से अधिक प्रभावी भूमिका नारियों की होती है। बड़े कठिन दौर से अपने कालखंड के समय में उन्होंने लोगों के मन से खौफ खत्म किया।

सिख धर्म के अंतिम गुरु गुरुगोविंद सिंह की रचनाओं में हिंदुस्तान की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक वैभव पूरी शिद्दत से प्रतिबिंबित होती है। मानवीय मूल्यों के अप्रतिम रचनाकार गुरु गोविंद सिंह केवल हिंदी-पंजाबी

के ही नहीं, बल्कि फारसी के भी विद्वान थे। उन्होंने ब्रजभाषा और अवधि में भी लिखी तथा उनकी रचनाएँ भक्ति और वीर रस की अमूल्य धरोहर है। उन्होंने हिंदी साहित्य की पहली आत्मकथा लिखी। महाभारत और उपनिषदों का उन्होंने हिंदी में अनुवाद किया। उनके दरबार में 52 कवि थे। वीर रस और भक्ति रस के कवि गुरु गोविंद सिंह ने सभी नौ रसो में रचनाएँ कीं जो आज भी सामयिक और प्रासंगिक हैं। उनकी रचनाओं में सांप्रदायिक सौहार्द के अद्‌भुत संदेश हैं। सामाजिक सद्‌भाव पर उनसे बेहतर लिखने वाला दूसरा नहीं। जफरनामा फारसी में लिखी गुरुगोविंद सिंह की अद्‌भुत रचना है।

साहित्य साधना के साथ-साथ शस्त्र के धनी गुरु गोविंद सिंह को इसलिए कहा जाता है, क्योंकि मानव जाति पर आई चुनौतियों का सामना करने के लिए उन्होंने शस्त्र उठाया था। राष्ट्रीयता की भावना उनमें कूट-कूटकर भरी थी। आजादी के इस प्रतीक पुरुष की रचनाओं से धर्म के नाम पर दंगा-फसाद करने वालों को सीख लेनी चाहिए, क्योंकि गुरु गोविंद सिंह ने कहा था- 'जिन प्रेम कियो तिन ही प्रभु पायो।'

(२८)प्रश्नः आप बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहकर अपने दायित्व के निर्वहण के दौरान संस्कृत वाङ्‌मय पर काफी कुछ चर्चा आपने की है क्या आप मुझे बताएँगे कि भारत के राष्ट्रीय चिंतन का मूल आधार क्या है?

उत्तरः हाँ, आपने ठीक कहा अखिलेश जी, बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के अध्यक्ष पद पर रहकर अपने तीन साल के कार्यकाल में पटना में राष्ट्रीय स्तर पर संस्कृत के उन्नयन के लिए अनेक विषयों पर चर्चा हेतु संस्कृत सम्मेलन का आयोजन बोर्ड के तत्वावधान में कराया है और इस दौरान मुझे संस्कृत के ख्याति प्राप्त विद्वतजनों से जो रोशनी मिली है उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि भारत अनेकानेक दर्शनों और आध्यात्मिक चिंतनों का संगम-स्थल रहा है और ज्ञान एवं भक्ति की विभिन्न शाखाएँ-प्रशाखाएँ यहाँ रही हैं, किंतु सबका लक्ष्य आत्मिक उन्नयन ही रहा है। अपने समान सबको समझने की वैश्विक और सर्वसहिष्णु जीवन-दृष्टि ही भारत के राष्ट्रीय चिंतन का मूलाधार है।

दरअसल, मूलतः आस्थावादी राष्ट्र होने के कारण भारतवासी देशप्रेम में विश्वास करते हैं, भक्ति में विश्वास करते हैं और समता एवं समरसता में विश्वास करते हैं। इसके साथ ही सह अस्तित्व में भारतवर्ष का

विश्वास रहा है। इसलिए पूरी दुनिया को ही यह एक परिवार मानता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा सिर्फ इस देश का सैद्धान्तिक विचार ही नहीं, बल्कि इसके रग-रग में घुली अमोघ जीवनी-शक्ति है। मगर भौतिकवादी व्यवस्था के कुचक्र में फँसकर मनुष्य का आध्यात्मिक पतन हुआ है। सदियों से हमारी विरासत रही संस्कृत को संभाल कर हम नहीं रख सके जिसके दुष्परिणामस्वरूप भी हमारी भारतीय संस्कृति पर प्रश्नचिह्न लग रहे हैं, क्योंकि संस्कृत में ही हमारे संस्कार और संस्कृति निहित रही हैं। संस्कृत को जन-जन तक ले जाने से ही हमारी संस्कृति बची रहेगी।

हमारे देश के प्रत्येक ग्रामीण-शहरी अंचल की परंपराओं से तीज-त्योहार, विवाह-संस्कार, देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना भारतीय संस्कृति की अनमोल निधि है। लिहाजा, इन्हें बड़े जतन से सहेज कर भावी पीढ़ी को सौंपना है, ताकि वे अपने अतीत के सुनहरे पलों को गर्व से आत्मसात कर सदियों-सदियों तक आगे बढ़ाते रहें। हमारे देश में कई भाषाएँ, उपभाषाएँ व बोलियाँ बोली जाती हैं। इन भाषाओं में असंख्य लोक गीत हैं, जो अपने रीति-रिवाजों, परंपराओं, उत्सव, महोत्सव, प्रेम, विरह या फसल काटने पर खुशहाली को प्रतिबिंबित करता है। लोकगीतों के माध्यम से समाज और जाति की प्राचीन और वर्तमान संवेदनाओं को एक स्वर मिलता है, मगर अफसोस है कि सब कुछ भौतिकवाद और पश्चिमी संस्कृति की सूली पर टंग चुका है जिसके परिणामस्वरूप समाज और जनजीवन में बदलाव आया है और हम विज्ञान एवं तकनीकी उन्नति के जरिए सुविधाभोगी हो गए हैं। फलतः संस्कृति से कदमताल छूटता जा रहा है जिसका हमें मलाल है, क्योंकि वही हमारे राष्ट्र का मूलाधार था।

(२९)प्रश्नः क्या आप भी इस बात से सहमत हैं कि दशलक्षणमय धर्म-पर्यूषण महापर्व पापों से मुक्ति और छल-कपट पर विजय पाना सिखाता है? दशलक्षण धर्मो में कौन-कौन से दशधर्म हैं और कब दशलक्षण पर्व मनाया जाता है?

उत्तरः इसके पूर्व कि पर्यूषण महापर्व से पापों से मुक्ति और छल-कपट पर विजय पाने को लेकर जो किबदंती है उससे मैं सहमत हूँ या नहीं, इसके उत्तर देने के पहले मैं बता दूँ कि प्राचीनकाल से जैनागम के अनुसार दशलक्षण महापर्व-पर्यूषण प्रत्येक वर्ष भाद्रपद शुक्ल पंचमी से लेकर चतुर्दशी यानी दस दिनों तक मनाया जाता है। दशधर्मो की उपासना के पर्व को दशलक्षण पर्व यानी पर्यूषण कहा जाता है, क्योंकि इनमें उपवास आदि

के द्वारा आत्मा को पवित्र बनाया जाता है। भव्य जीवों को सिद्धिमहल पर चढ़ने के लिए सीढ़ियों की पंक्ति के समान यह दशलक्षणमय धर्म नित्य ही खासतौर पर जैनधर्मावलंबियों के चित्त को पवित्र करता है। भादो माह के शुक्ल पंचमी से पर्यूषण पर्व में दस दिनों तक प्रत्येक व्यक्ति व्रत, उपवास, पूजन के माध्यम से अपनी आत्मा में विशुद्धि के भावों को बनाकर पूण्यार्जन करते हैं। जैन समाज के लोग दस दिनों तक अधिक से अधिक धार्मिक क्रियाओं को करके पूण्यार्जन करते हैं।

दशधर्मो के नाम क्रम से इस प्रकार हैं-क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचण्य और ब्रह्मचर्य। दशलक्षण धर्म की पूजा में पढ़ा जाता है- उत्तमछिमा मारदव भाव है। सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग उपाव है। आकिंचन, ब्रह्मचर्य धरम दश सार है। चहुंगति दुखतैं का ढिमुकत करता है।

पर्यूषण पर्व जैन धर्मावलंबियों का आध्यात्मिक त्योहार है। मैत्री और शांति के इस त्योहार में लोगों को 'जीओ और जीने दो' के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी जाती है।

दशलक्षणमय धर्म का यह पर्यूषण महापर्व पापों से मुक्ति और छल-कपट पर विजय पर जहाँ तक मेरी सहमति और असहमति के सवाल हैं मैं कहना चाहूँगा कि मैं धर्म में नहीं कर्म में विश्वास करता हूँ और अपनी उम्र के पचहत्तर वर्ष पार करने के बाद भी कर्म करने का यह विश्वास अभी तक कायम है। इस संदर्भ में मैं यह भी कहना चाहूँगा कि जैन धर्म के बारे में प्रत्यक्ष तो नहीं, पर अप्रत्यक्ष तौर पर मुझे यह जानने का मौका तब मिला जब आचार्यश्री तुलसी द्वारा स्थापित अणुव्रत और आचार्यश्री महायज्ञ के सौजन्य से मैं तकरीबन दो दशक पूर्व से उससे जुड़ा रहा हूँ, क्योंकि अणुव्रत प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी ने राष्ट्र के नैतिक उत्थान के साथ-साथ नयी पीढ़ी में संस्कार-निर्माण के लिए ही अणुव्रत की स्थापना की थी और इन्हीं दो उद्येश्यों के प्रति आकर्षित होकर अणुव्रत से मैं जुड़ा और आचार्यश्री महाप्रज्ञ के सान्निध्य में रहकर बहुत कुछ सीखा।

जैन संस्कृति में जितने भी पर्व-त्योहार मनाए जाते हैं, लगभग सभी में तप एवं साधना का विशेष महत्व है। पर्यूषण सभी पर्वो का राजा है जिसे आत्मशोधन का पर्व भी कहा जाता है। संपूर्ण संसार में यही एक ऐसा पर्व है जिसमें आत्मरत होकर व्यक्ति आत्मार्थी बनता है व अलौकिक, आध्यात्मिक आनंद के शिखर पर आरोहण करता हुआ मोक्षगामी होने का

सद्प्रयास करता है। संपूर्ण जैन समाज इस पर्व के अवसर पर जागृत एवं साधनारत हो जाता है।

यूषण पर्व का शाब्दिक अर्थ है- आत्मा में अवस्थित होना। पर्यूषण यानी 'परिसमन्तात-समग्रतया उषणं वसनं निवासं करणं।' पर्यूषण का एक अर्थ यह भी है-कर्मरूपी शत्रुओं का नाश करना तभी आत्मा अपने स्वरूप में अवस्थित होगी। अत: यह पर्यूषण पर्व आत्मा का आत्मा में निवास करने की प्रेरणा देता है। यह मन की खिड़कियों, रोशनदानों और दरवाजों को खोलने का पर्व है। दरअसल, पीछे मुड़कर स्वयं को देखने का ईमानदार प्रयत्न है। वर्तमान की आँख से अतीत और भविष्य को देखते हुए कल क्या थे और कल क्या होना है, इसका विवेकी निर्णय लेकर एक नए सफर की शुरुआत की जाती है।

अणुव्रत से जुड़ने के पीछे प्रमुख वजह यह भी रही कि अणुव्रत के उद्येश्यों के अनुरूप सबके साथ सद्भावपूर्ण व्यवहार, यथासंभव ईमानदारी का पालन और नशामुक्त जीवन जीने की राह पर मैं चलता रहा हूँ और अणुव्रत आचार संहिता के प्रति मेरी आस्था और निष्ठा रही है। इस दृष्टि से मुझे लगा कि दिल्ली में आचार्यश्री महाप्रज्ञ की उपस्थिति में हुए चतुर्मास के अवसर पर मुझे अणुव्रत से जुड़कर इसके कार्यक्रमों में मुझे सहयोग करना चाहिए, क्योंकि समानधर्मा संगठनों को सहयोग करना भी मेरा कर्तव्य बनता है, यह मेरी मान्यता भी रही है। कुछ इसी ख्याल से मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठा तथा नैतिकता की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी के आदेशानुसार जीवन-विज्ञान, प्रेक्षाध्यान और विशेष रूप से अहिंसा समवाय जिसका कभी राष्ट्रीय संयोजक के पद पर रहकर भी अहिंसा, मैत्री, करुणा, भाईचारा, मानवीय एकता, संयम, अनुशासन और जीवन-मूल्यों की शीतल छाया देने का मैंने प्रयास किया और आज भी मैं उसी राह पर अग्रसर हूँ। हाँ, इतना जरूर है कि आज जिस प्रकार प्राय: सभी धर्मो में वाह्याडंबर, छल-कपट, दिखावा, दुर्व्यवहार, संकल्पहीनता, मूल्यहीनता और कथनी-करनी में सामंजस्य का जैसा अभाव दिखता है उससे यह भी नहीं बच पाया है। फिर भी चूँकि जैन धर्म से मैं प्रत्यक्ष रूप से तो कभी जुड़ा नहीं इसलिए जैन धर्मावलंबियों को पर्यूषण महापर्व करने से मुक्ति मिलेगी या नहीं अथवा छल-कपट पर वे विजय पा सकेंगे या नहीं, इस बात से सहमत होना इस पर निर्भर करेगा कि उनके आचार-विचार, व्यवहार और कर्म कैसे हैं। जहाँ सेवा, वहीं धर्म, जो सेवक, वही धार्मिक। केवल पूजा कर लेने भर से लोगों

का कल्याण हो जाएगा, ऐसा मैं नहीं मानता, क्योंकि उनके आचरण और व्यवहार व्यावसायिक और सामाजिक जीवन में दिखना भी चाहिए। अणुव्रत से जुड़े रहने के दौरान मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ है या आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी के सान्निध्य में रहकर मैंने जो उन्हें देखा-सुना है उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि वे अपने श्रद्धालु-श्रोताओं को खरी-खोटी और बिना लाग-लपेट के अपने पर्वचन में कह देते थे, यह उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की बहुत बड़ी विशेषता थी जिसका असर मुझ पर भी पड़े बिना कैसे रहता? इसके लिए हृदय सें उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए आर्जव धर्म की इस पंक्ति से अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ-

'श्उत्तम आर्जव कपट मिटावे, दुर्गति त्यागि सुगति उपजावे।'

(३०)प्रश्न: मदर टेरेसा को संत घोषित करने का क्या आधार है? मदर टेरेसा के संत बनने का यह सफर कहाँ से शुरू हुआ था? संत घोषित करने की क्या प्रक्रिया है?

उत्तर: मदर टेरेसा को संत घोषित करने का यह आधार बताया जा रहा है कि उनके निधन के बाद उनके आशीर्वाद से एक बंगाली युवती को अल्सर और ब्राजील के एक शख्स को असाध्य बीमारी से निजात मिली। किसी धर्म के नियमों के अनुसार किसी का संत हो जाना मानवता के दुख की दवा नहीं बनता। बस उस धर्म के अपने एकांतिक, विशिष्ट तौर-तरीकों को एक नई ऊर्जा प्राप्त होती है और धार्मिक संगठन के लिए तो उनकी परंपराएँ ही जीवन का श्रोत होती हैं।

4 सितंबर, 2016 को रोम में एक बड़े भव्य समारोह में आधिकारिक तौर पर विश्व शांति व सेवा की दूत मदर टेरेसा को संत मदर टेरेसा का दर्जा दिया गया। 1928 में नन बनीं मदर टेरेसा 1929 में कोलकाता में शिक्षक बनीं और 1946 में उनकी आत्मा से मिशनरीज ऑफ चैरिटी खोलने की आवाज आयी तथा 1948 में वह भारतीय नागरिक बनीं। 1950 में कोलकाता में मिशनरीज ऑफ चैरिटी की स्थापना की गयी तथा 1965 में पोप ने उन्हें डिक्री ऑफ प्रेज की उपाधि दी। 1979 में उन्हें शांति के लिए नोबल पुरस्कार से नवाजा गया तथा 1980 में भारतरत्न सम्मानित मदर टेरेसा 2003 में धन्य घोषित हुई।

जैसा कि मैंने पूर्व में कहा एक भारतीय महिला जब पेट के कैंसर से पीड़ित थी तो उसने मदर टेरेसा से प्रार्थना की और वह उनके

आशीर्वाद से ठीक हो गई। 2002 में इस घटना को चमत्कार के तौर पर मान्यता दी गयी।

इसी प्रकार ब्राजील के मारसिलियों एंड्रिनो के ब्रेन में गंभीर इन्फेक्शन था। बचने की उम्मीद नहीं दिख रही थी। एंड्रिनो ने मदर टेरेसा की प्रार्थना की और वह ठीक हो गए। इस घटना को चमत्कार के तौर पर पोप ने 2015 में मान्यता दी।

पटना के पादरी हवेली से मदर टेरेसा के संत बनने का यह सफर शुरू हुआ था और यहीं उन्होंने पहली बार औपचारिक रूप से प्रशिक्षण लेना शुरू किया था। शानदार स्थापत्य कलावाली लगभग 245 वर्ष पुरानी रोमन कैथोलिक चर्च पादरी की हवेली में ममतामयी मां मदर टेरेसा की स्मृति आज भी जीवंत है। मानव सेवा व त्याग के लिए प्रसिद्धि पाने वाली मदर टेरेसा को पॉप जॉन पाल द्वितीय ने मदर का दर्जा दिया था। उन्होंने वर्ष 1948 में पटना सिटी के गुरहट्टा स्थित पादरी की हवेली में वक्त गुजारा है। 17 अगस्त, 1948 से तीन माह तक यहीं रहकर स्वास्थ्य सेवा का प्रशिक्षण उन्होंने प्राप्त की थी। पादरी की हवेली में होली फेमिली अस्पताल को हटाकर बाद में पटना के कुर्जी में स्थानांतरित कर दिया गया। एक समाजसेवी के तौर पर मदर टेरेसा बड़े से बड़े मान-सम्मान और उपाधि की हकदार हैं, लेकिन निदा फाजली की 'माँ की निगाहों सी' नाम्नी कविता की इन पंक्तियों से मैं उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ-

'हर धूप में छाँव-सी हर सर पे दुआ-सी
वह प्यासे के मंदिर में-बरसात की मूरत थी
वह भूख की मस्जिद में-रोटी की इबादत थी
वह दर्द के गिरजा में-इंसान की खिदमत थी
रोशनी थी अँधेरों में, वह माँ की निगाहों सी।'

संत घोषित करने की प्रक्रिया तीन चरणों में होती है। यूँ तो 1232 से संत घोषित करते आ रहे हैं, पर रोमन कैथेलिक संत घोषित करने की प्रक्रिया के साक्ष्य 1600 से मिलते हैं। संत घोषित करने की प्रक्रिया तीन चरणों में होती है। चर्च सबसे पहले समिति बनाती है, जो संबंधित व्यक्ति के जीवन और कार्यो की समीक्षा करती है। व्यक्ति के बारे में दस्तावेज जमा किए जाते हैं। यह प्रक्रिया देहत्याग के 5 साल बाद ही शुरू की जा सकती है। निधन के पाँच साल के बाद स्थानीय बिशप संबंधित व्यक्ति को 'धन्य'

घोषित करने की प्रक्रिया शुरू करने का आग्रह करते हैं। व्यक्ति के पवित्र होने के पर्याप्त सबूत होने के पहले 'धन्य' घोषित किया जाता है। इसके बाद संबंधित व्यक्ति द्वारा किए गए दो चमत्कारों के सबूत खोजे जाते हैं। अगर मिल जाते हैं तो पोप उन्हें 'संत' घोषित करते हैं। 'धन्य' से 'संत' घोषित करने के बीच कम से कम 50 साल का अंतर रखते हैं।

विगत आठ साल में भारत से चौथी और तीसरी महिला संत हैं मदर टेरेसा। सन् 2008 में सिस्टर अल्फोसा कैथेलिक चर्च से संत घोषित की गई। फिर 2008 में ही सिस्टर यूफ्रेशिया और 2014 में केरल के सायरो मलाबार चर्च से जुड़ी फादर कुरियाकोस संत घोषित किए गए। इसी प्रकार चार सितंबर, 2016 को मदर टेरेसा भारत की चौथी, मगर तीसरी महिला संत घोषित की गई।

(३१)प्रश्न: सुप्रसिद्ध लेखिका और मानवाधिकारवादी तसलीमा नसरीन की इस बात से क्या आप सहमत हैं कि कट्टरपंथियों की तुष्टीकरण की राजनीति लोकतंत्र के लिए दुर्गंध के समान है?

उत्तर: हाँ, लेखिका एवं मानवाधिकारवादी तसलीमा नसरीन की इस बात से मैं सहमत हूँ कि कट्टरपंथियों की तुष्टीकरण की राजनीति लोकतंत्र के लिए दुर्गंध के समान है, क्योंकि धार्मिक कट्टरपंथी समाज को अँधकार में धकेलना चाहते हैं। वे न तो नारी के अधिकार में विश्वास रखते हैं और न ही मानवाधिकार में। आपने देखा या सुना नहीं उत्तर प्रदेश के एक बड़बोले मंत्री आजम खान ने बुलंदशहर में एक माँ-बेटी के साथ हुई दुष्कर्म की घटना को किस बेशर्मी से राजनीति की साजिश बताते हुए अनर्गल बयान दिया जिसके लिए सर्वोच्च न्यायालय ने इस धार्मिक कट्टरपंथी नेता के साथ-साथ उ.प्र. सरकार को फटकार लगाते हुए उनके बयान को अभिव्यक्ति की आजादी को संविधान के खिलाफ बताया है। दरअसल, ऐसे नेता अपने विचार और मत के साथ सहमत नहीं होने वालों को वाक अभिव्यक्ति की आजादी देने में भी विश्वास नहीं रखते। सच तो यह है कि वाक अभिव्यक्ति की आजादी का महत्व अधिकांश लोकतांत्रिक सरकारें भी नहीं समझना चाहतीं। वाक अभिव्यक्ति की भी एक सीमा है और वाक अभिव्यक्ति की आजादी का मतलब किसी की भावनाओं पर आघात करना नहीं होता, लेकिन अक्सर दूसरों की बातों और कार्यो से आघात लगता है और यदि किसी को किसी के विचार पसंद नहीं हैं तो वह शांतिपूर्वक ढंग से इसका विरोध कर सकता है, न कि उसकी हत्या या उसपर प्रहार करने की कोशिश की जाए।

मौजूदा दौर के समाज और राजनीति में अपने-अपने धर्म को मानने वाले कुछ कट्टर लोग हैं जो अपनी भावना पर हुए आघात को नहीं सहते और चारों ओर अशांति फैलाते हैं तथा हर दल के नेता उस आग में घी का काम करते हैं। यदि लोगों को अपना विचार व्यक्त करने की आजादी नहीं हो, तो ऐसा लोकतंत्र अर्थहीन हो जाता है और किसी की भावना को आघात पहुँचाए बिना समाज नहीं बदला जा सकता। सिर्फ स्वस्थ सोच और विचारवाले लोग ही समाज को बदलेंगे। कुछ ही लोग होते हैं जो समाज में बदलाव लाते हैं। आदिकाल से यही चला आ रहा है। धर्मगुरु, उलमा, मौलवी, पादरी या अन्य पंथिक आचार्य हजारों लोगों को संबोधित करते हैं और प्रवचन देते हैं, मगर वे आमजन को प्रेमपूर्ण बनाने की प्रेरणा नहीं देते। उनके प्रवचनों में आदर्श और प्रामाणिक मनुष्य बनाने की प्रेरणा नहीं होती। वे अदृश्य ईश्वर व अपने पंथ संप्रदाय की आस्था मजबूत करते हैं। आमजन के प्रति आत्मीय आदर बढ़ाने का काम न दलतंत्र करता है और न प्रवचनकर्ता।

(३२)प्रश्न: क्या धार्मिक स्थलों पर महिलाओं के प्रवेश के बारे में उन स्थलों के प्रबंधकों को जिद छोड़कर ज्यादा उदार नजरिया अपनाना चाहिए?

उत्तर: हाँ, धार्मिक स्थलों पर महिलाओं के प्रवेश के बारे में उन स्थलों के प्रबंधकों को जिद छोड़कर ज्यादा उदार नजरिया अपनाना चाहिए। भारत में सभी धर्मों के अनुयायियों को अपने धर्म के पालन की छूट है, लेकिन देश को चलाने में तो भारतीय संविधान ही सर्वोपरि होना चाहिए। मुंबई की प्रख्यात हाजी अली दरगाह में महिलाओं के प्रवेश को बॉम्बे उच्च न्यायालय ने उचित ठरहाते हुए कहा है कि महिलाओं को दरगाह में जाने से रोकना संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 25 का उल्लंघन है। महिलाओं को पुरुषों की तरह ही प्रवेश की इजाजत होनी चाहिए और ट्रस्ट को किसी व्यक्ति या समूह के धार्मिक आचरण के तरीके में बदलाव या संशोधन करने का अधिकार नहीं है। वैसे भी 2012 तक महिलाओं को मजार तक जाने दिया जाता था। हाजी अली दरगाह के प्रबंधकों का कहना है कि किसी पुरुष संत की दरगाह में महिलाओं की मौजूदगी महापाप है, लेकिन अगर ऐसा है तो सन 2012 के पहले भी यह महापाप रहा होगा, तब उन्हें यह ख्याल क्यों नहीं आया? जाहिर है कुछ शुद्धतावादी धार्मिक नेताओं का प्रभाव जब प्रबंधकों पर बढ़ा होगा, तब यह फैसला किया गया होगा।

उल्लेखनीय है कि भारतीय उपमहाद्वीप और इसके बाहर भी सर्वाधिक सम्मानित दरगाहों में शामिल अजमेर की ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह तथा उसी परंपरा के सलीम चिश्ती के फतेहपुर सीकरी स्थित दरगाह में तों ऐसी पाबंदी नहीं है और महिलाएँ बेरोकटोक जा सकती हैं। दरअसल, इसके पीछे धार्मिक कम, सांस्कृतिक-सामाजिक कारण ज्यादा जिम्मेदार है। संविधान में नागरिकों को जो अधिकार दिए गए हैं, उनके बीच और धार्मिक नियमों के बीच विरोध नहीं होना चाहिए। स्त्रियों-पुरुषों के बीच समानता का धर्म से अनिवार्य विरोध भी नहीं है। इसी प्रकार आपको याद होगा भारत में एक बूढ़ी महिला शाहबानो और केरल की सीरिया ईसाई समाज की मैरी राय को उच्चत्तम न्यायालय की तरफ से गुजारा भत्ता दिए जाने पर विरोध करने के लिए पूरा मुस्लिम समाज के साथ-साथ ईसाई समाज भी खड़ा हो गया था, लेकिन कट्टरता और उदारता की इस लड़ाई में शाहबानो और मैरी राय की जीत हुई थी। इसलिए मेरा मानना है कि धार्मिक स्थलों पर महिलाओं के प्रवेश के बारे में उन स्थलों के प्रबंधकों को जिद छोड़कर ज्यादा उदार नजरिया अपनाना चाहिए। ऐसी जिद खत्म होने में ही सबका भला है। मुंबई के वारली तट के पास टापू पर स्थित मस्जिद जिसमें दरगाह भी है, हाजी अली की 585 साल पुरानी इस दरगाह में भीतर तक महिलाओं के प्रवेश पर 2012 में लगी रोक हटाने के लिए मुबई उच्च न्यायालय में याचिका दायर करने वाली भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन की जाकिया सीमेन को मिली जीत की खुशी उन सभी को है, जो भारतीय समाज को उदार, लोकतांत्रिक और सर्वधर्म समभाव का रूप देना चाहते हैं।

(३३)प्रश्नः महिलाओं की पोशाक-पहनावे को धर्म से जोड़ना कितना उचित है और क्यों?

उत्तरः महिलाओं की पोशाक-पहनावे को लेकर अक्सरहा देशवासियों के बीच चर्चा होती रहती है और लोगों के द्वारा महिलाओं के परिधान पर जितनी विपरीत टिप्पणियाँ की जा रही हैं उसी गति से उनके परिधान भी सिकुड़ते जा रहे हैं। सच कहा जाए तो मैं भी महिलाओं खासतौर पर लड़कियों के सिकुड़ते परिधान के पक्ष में नहीं हूँ, क्योंकि सेक्स भी तो कोई चीज है जिसकी तरफ लोगों का ध्यान जाना चाहिए। आखिर आप जरा सोचे दुश्कर्म की घटनाएँ क्यों दिनानुदिन बढ़ती जा रही है? लड़कियों के कंधे पर रखी ओढ़नियाँ तो कब की गायब हो गई और उनके शरीर पर लड़कों के सारे परिधान देखे जा रहे हैं। सिक्स पैक दिखाने वाले अभिनेता की हम सराहना

ही नहीं करते, अनुसरण भी करते हैं। मगर क्रिकेटियर मोहम्मद शमी के फेसबुक पर पत्नी के साथ जब पोस्ट किया जाता है, तो हड़कंप मच जाता है। यह बात शमी की पत्नी को भी संविधान के तहत मनपसंद पोशाक पहनने की स्वतंत्रता है, मगर मुस्लिम समुदाय में ही नहीं, खाफ पंचायतों के क्रूर फैसले भी देखने को मिलते हैं। मुस्लिम समुदाय में महिला के परिधान को धर्म से जोड़कर उसका चरित्र हनन किया जाता रहा है।

मैं यह नहीं कहता कि अपनी काबिलियत व पुरुषार्थ से देश के लिए उपलब्धियाँ हासिल करने वाली महिलाओं को धर्म के दायरे में सीमित करना ठीक है, पर मध्ययुग को छोड़ दें, तो भारतीय संस्कृति में महिला को जो सर्वोच्च स्थान दिया गया है, वह आखिर क्यों? देश में महिलाएँ प्रधानमंत्री, लोकसभाध्यक्ष, मुख्यमंत्री, सुप्रीम कोर्ट एवं हाइकोर्ट की न्यायाधीश जैसे उच्च पदों तक पहुँची हैं तो क्या कभी आपने उन्हें आधुनिक पोशाक में कभी देखा है? मदर टेरेसा को दुनिया के सामने सेवा का सर्वोच्च स्थान दिया गया, मगर आपने उन्हें कभी आधुनिक पोशाक में कभी देखा? बड़े पैमाने पर सांस्कृतिक क्रांति तथा अनेक समाज सुधारकों के बलिदान के बाद हमारी संस्कृति बची रही है, मगर अब ऐसी घटनाएँ घट रही हैं जो हमें शर्मशार ही नहीं करतीं हमारी संस्कृति को दागदार भी करती हैं।

निर्देशक जी. सूरज ने अपनी तमिल फिल्म 'काठति सांदाई' की अभिनेत्री तमन्ना भाटिया की पोशाक पर की अपमानजनक टिप्पणी। बाहुबली फेम तमन्ना और नयनतारा ने जताई नाराजगी और जब विवाद बढ़ा तो जी. सूरज ने अपने बयान पर माफी माँगी, आखिर क्यों? मगर फिल्म निर्देशक का कहना है कि 'बी' और 'सी' वर्ग के दर्शकों के लिए फिल्म में काम करते वक्त उन्हें मनोरंजन करने की खातिर अभिनेत्रियों को छोटे कपड़े पहनने ही चाहिए। अभिनेत्री वह पोशाक पहनने के लिए न तैयार हो, तब भी। जी. सूरज ने तो यहाँ तक कहा कि 'हम हिरोइन को इसलिए पैसा देते हैं, ताकि वे छोटे कपड़े पहनें और ग्लैमरस दिखें।' यह विडंबनापूर्ण नहीं तो और क्या है?

इसी प्रकार इस्लाम में ईमान का होना आवश्यक है। शमी और उसकी पत्नी हसीन जहां के पीछे पड़े लोग न तो मजहब समझते हैं और न ही मजहब मानने वालों को दुनिया भर के मुसलमान एक जैसा सोचते हैं, न ही एक जैसा पहनते हैं और खाते-पीते हैं। इसलिए मजहब के नाम पर

तहजीब को एक जैसा करने की कोशिश एक बड़ा सोचा-समझा खतरनाक विचार है।

(३४)प्रश्नः जुमे की नमाज के लिए मुस्लिम कर्मचारियों को ९० मिनट का अवकाश देकर उत्तराखंड सरकार ने क्या यह सिद्ध नहीं कर दिया है कि काँग्रेस ने धर्मनिरपेक्षता का मात्र लबादा भर ओढ़ रखा है? आखिर कैसे?

उत्तरः हाँ, जुमे की नमाज के लिए मुस्लिम कर्मचारियों को 90 मिनट का अवकाश देकर उत्तराखंड सरकार ने यह सिद्ध कर दिया है कि काँग्रेस ने धर्मनिरपेक्षता का मात्र लबादा भर ओढ़ रखा है, क्योंकि काँग्रेस ने उत्तराखंड और उत्तरप्रदेश सहित अन्य तीन और राज्यों के आसन्न विधान सभा चुनावों को ध्यान में रखकर आजमाया हुआ कार्ड खेला है। जुमे की नमाज के लिए 90 मिनट का अवकाश देकर काँग्रेस की नजर मुसलमानों के 14 प्रतिशत वोट बैंक पर है।

दरअसल, काँग्रेस वर्षो से इसी प्रकार मुसलमानों को लुभाकर अपनी राजनीतिक हित साधती रही है, लेकिन अब मुसलमानों को भी सोचना चाहिए कि वह इस प्रकार की लॉलीपॉप से कबतक अपना दिल बहलाते रहेंगे? सरकार के इस निर्णय से उनकी भी कम बदनामी नहीं हो रही है। उन्हें भी संदेह की दृष्टि से देखा जा रहा है कि गैर जरूरी सुविधाओं के लालच में मुसलमान एकमुश्त वोट करता है। वैसे भी उत्तराखंड सरकार हो या इस देश का कोई भी क्षेत्र जुमे की नमाज अदा करने पर मुसलमान कर्मचारियों को कब रोका गया है या उन्हें उच्चाधिकारी से अनुमति लेनी पड़ रही है, मगर उत्तराखंड सरकार ने खासतौर पर एक निर्णय लेकर जुमे की नमाज के लिए 90 मिनट के अवकाश की जो घोषणा की, वह तो महज मुसलमानों को लुभाने के लिए ही किया गया लगता है।

इसे विडंबना नहीं तो और क्या कहा जाएगा कि वर्षो से इस देश में वोटबैंक की राजनीति की वजह से समाज को बाँटने का काम काँग्रेस और उसके तथाकथित प्रगतिशील गठबंधन के लोगों ने किया है, लेकिन सांप्रदायिक दल होने की बदनामी समान नागरिक संहिता की माँग करने वाली भारतीय जनता पार्टी के खाते में जबरन डाल दी जाती है। यहीं नहीं, काँग्रेस के साथ-साथ उन तमाम बुद्धिजीवियों और सामाजिक संगठनों के सेक्युलरिज्म की पोल पट्टी भी खुल गई है, जो भाजपा या किसी अन्य हिंदू संगठन के किसी नेता की कोरी बयानबाजी से आहत होकर भारत में 'सेक्युलरिज्म के

खतरे' या 'सांप्रदायिकता का जहर' फैलाने का ढोल पीटने लगते हैं, लेकिन उत्तराखंड सरकार के इस निर्णय पर वैसे तथाकथित बुद्धिजीवी खामोश हैं तथा काँग्रेस सरकार के इस घोर सांप्रदायिक निर्णय के खिलाफ तथाकथित प्रगतिशील लोगों को कोई आपत्ति नहीं आई।

यह भारतीय समाज के लिए बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है कि काँग्रेस और उसके प्रगतिशील साथी प्रारंभ से ही सेक्युलरिज्म और सांप्रदायिकता की मनमाफिक परिभाषाएँ गढ़कर बड़ी चालाकी से अपनी राजनीतिक दुकान चलाने के लिए समाज को धार्मिक आधार पर बाँटते रहे हैं। काँग्रेस की इसी तुष्टीकरण की नीति से समाज और देश की एकता-अखंडता को गहरी चोट पहुँचती रही है। धर्म को लेकर समाज में आज जिस प्रकार का माहौल बन गया है, उसके लिए सीधे तौर पर काँग्रेस और तथाकथित प्रगतिशील साथी जिम्मेदार हैं। एक वर्ग के तुष्टीकरण और बहुसंख्यक समाज की उपेक्षा की नीति से सामाजिक ताने-बाने को गहरी क्षति पहुँचती है। सरकारी कर्मचारियों को धार्मिक मान्यताओं के निर्वह्ण हेतु इस प्रकार की सुविधा देना निहायत सांप्रदायिक और गैर-जरूरी निर्णय है जिसे वापस लिया जाना चाहिए।

(३५)प्रश्न: विज्ञान का हर नया सोपान चढ़ने के बाद वहाँ विश्राम नहीं किया जाता, तो फिर आध्यात्मिक यात्रा में ठहराव क्यों?

उत्तर: हाँ, यह कहना बिल्कुल सही है कि विज्ञान का हर नया सोपान चढ़ने के बाद वहाँ विश्राम नहीं किया जाता है। आपने देखा कि आधुनिक अंतरिक्ष विज्ञान की दिशा में अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा का यान 'जूनो' पिछले दिनों बृहस्पति ग्रह के निकट पहुँच गया और इस प्रकार विज्ञान, तत्व ज्ञान की खोज में एक कदम और आगे बढ गया। आधुनिक युग में जिस तरह वैज्ञानिकों का काम अनुसंधान करना और अभियंताओं का काम उन अनुसंधानों का उपयोग कर सृजन करना है उसी प्रकार प्राचीनकाल में ऋषियों के भी दो वर्ग थे। एक वर्ग में अगस्त्य, चरक, विश्वामित्र जैसे अनेक चिंतक एवं साधक ऋषि थे, जो निरंतर तत्व मीमांसा या अनुसंधान में लगे रहते थे। आखिर तभी तो महर्षि चरक ने औषधियों की खोज की तो महर्षि विश्वामित्र ने उस युग में ऐसे हथियारों का आविष्कार किया जो आधुनिक हथियारों पर भी भारी हैं। दूसरा वर्ग राजर्षि वशिष्ठ, गुरु द्रोणाचार्य जैसे ऋषियों का था, जो उन अनुसंधानों, उपलब्धियों और चिंतन को सम्राटों की राजसभा तक लाते थे और उनकी अनुशंसा पर सम्राट नीतियाँ बनाते थे और प्रजा उनका परिपालन करती थी। इसी प्रकार प्रवचनकारों और कथाकारों

ने अपने प्रवचन और कथा के माध्यम से अद्यतन आचार संहिता एवं अर्जित ज्ञान को जन सामान्य तक पहुँचाते थे। फिर सामान्य जन उपासक मंदिर के प्रवेश द्वार पर केवल शीश नवाकर लौट जाते थे। इससे आध्यात्मिक यात्रा रुक जाती है। आध्यात्मिक यात्रा तो तभी आगे बढ़ेगी जब उनमें नए अध्याय जोड़ने का काम होगा जो आज कहाँ हो पा रहा हैं? तप और साधना, पूजा-पाठ का अर्थ सिर्फ जप या ध्यान लगाकर बैठना नहीं है।

विज्ञान के अनुसंधानों में लगे हमारे वैज्ञानिक किसी ऋषि से कम नहीं, सृजन में लगे हमारे अभियंता किसी योगी से कम नहीं और न ही अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि विषयों में शोध करने वाले विद्वान, मनीषी किसी मुनि से कम नहीं। तप एवं साधना में तल्लीन इन वैज्ञानिकों, अभियंताओं और विद्वान-मनीषियों का नमन जिनका समाज में योगदान कथाकारों या प्रवचनकारों से कहीं अधिक हैं, क्योंकि बिना नवचिंतन, बिना अनुसंधान एवं बिना शोध के समाज का उत्कर्ष संभव नहीं।

इसी प्रकार जैसे-जैसे धर्मग्रंथ पुराने होते जाएँगे तब उनकी प्रासंगिकता को बनाए रखना धर्मगुरुओं के लिए चुनौतीपूर्ण हो जाएगा। अतएव बेहतर तो यही होगा कि धर्मगुरु फिर वे चाहे किसी भी धर्म के हों, चिंतन की धारा को अवरूद्ध न करें। लेकिन आज तो चिंतन की धारा अवरूद्ध हो रही है। धार्मिक ग्रंथ मनुष्य को आचार संहिता में तो बाँधते हैं, किंतु वह चिंतन के स्वातंर्त्य को नहीं बाँधते, क्योंकि यह मानव स्वभाव के विपरीत है, समाज के आगे बढ़ने से इनके व्यक्तिगत हितों पर चोट पहुँचती है। समाज इन लोगों से जितनी शीघ्रता से छुटकारा प्राप्त करेगा, उतनी ही तीव्रता से नयी उपलब्धियाँ प्राप्त करेगा।

आप भी यह महसूस करते होंगे कि विज्ञान के क्षेत्र में चिंतन, अनुसंधान, अविष्कार, शोध और उपलब्धियाँ जितनी तेजी से आगे बढ़ी हैं, अध्यात्म का वैज्ञानिक पक्ष उसके हमकदम नहीं हो पाया है अथवा समानांतर नहीं चल पाया है जिसकी जीवन के उदात्त मूल्यों के लिए आवश्यकता है। आखिर तभी तो मानव जीवन में दया, क्षमा, सदाशयता, सद्भाव, समरसता, धैर्य, सहिष्णुता और उदारता जैसे मानवीय मूल्यों का लोप होता जा रहा है और समाज, राजनीति के साथ-साथ प्राय: सभी क्षेत्रों में लोग पतन के रास्ते पर चल पड़े हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि इस दिशा में नवऋषियों, संतों और सन्यासियों को आध्यात्मिक चिंतन-मनन की ओर अग्रसर होना चाहिए, ताकि आध्यात्मिक यात्रा में ठहराव न आ सके।

(३६)प्रश्नः धार्मिक यात्रा के लिए सरकारी सब्सिडी देने का क्या औचित्य आप समझते हैं?

उत्तर: धार्मिक यात्रा के लिए सरकारी सब्सिडी देने का मेरी समझ से कोई औचित्य नहीं है। इस लिहाज से देखा जाए तो सुप्रीम कोर्ट द्वारा अपने फैसले में हज यात्रा के लिए दी जानी वाली हज सब्सिडी को 2022 तक चरणबद्ध ढंग से खत्म करने के आदेश बिल्कुल सही हैं, दुनिया भर के मुस्लिम समुदाय के लिए यह न केवल कुरान की मान्यता के विरूद्ध है, बल्कि पंथनिरपेक्ष शासन की अवधारणा के भी खिलाफ है। एक अन्य महत्वपूर्ण बिंदु यह भी है कि जब इस्लामी देश अपने लोगों को हज के लिए सब्सिडी नहीं देते, तो भारत में क्यों दी जाए? इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि हज अपने दायित्वों का सही तरह से निर्वह्‌ण करने के काद खुद के पैसे से किया जाता है। इससे मुस्लिम समाज भी अवगत है और इसलिए उसने उच्चतम न्यायालय के फैसले का समर्थन किया, लेकिन वह इससे अवगत नहीं दिख रहा कि उसे अपने पिछड़ेपन को दूर करने के लिए खुद सक्रिय होने की जरूरत है।

नि:संदेह सरकारों को इसकी चिंता करनी चाहिए और वे करती भी हैं कि सभी समुदाय आर्थिक-सामाजिक रूप से देश की मुख्यधारा का हिस्सा बने, लेकिन दुखद स्थिति यह है कि इस क्रम में राजनीतिक दलों के द्वारा वोट बैंक की राजनीति शुरू हो जाती है। हालांकि पिछले कुछ समय से मुस्लिम समुदाय यह महसूस कर रहा है कि विभिन्न राजनीतिक दलों ने उसका इस्तेमाल अपने राजनीतिक स्वार्थो को पूरा करने के लिए किया है फिर भी कुल मिलाकर देखा जाए, तो मुस्लिम समाज ऐसे राजनीतिक दलों का वोट बैंक ही बना हुआ है इसलिए इसका कोई औचित्य नहीं कि धार्मिक यात्रा सरकारी सहायता से हो।

मुझे सबसे अधिक आश्चर्य इस बात को लेकर है कि खुद मुस्लिम समाज और यहाँ तक कि उसके बुद्धिजीवी वर्ग भी यह महसूस नहीं कर पा रहे हैं कि उनके समुदाय को किस तरह बरगलाया जा रहा है। यह मुस्लिम समाज के बुद्धिजीवियों का दायित्व है कि अपने लोगों में स्वतंत्र वैचारिक चिंतन को बढ़ावा दें और उन्हें यह अनुभूति कराएँ कि एक समाज तभी आगे बढ़ता है जब वह अपनी प्रगति के लिए खुद सजग-सचेत होता है। फिलहाल यह उम्मीद करना कठिन है कि मुस्लिम धर्मगुरु उच्चतम न्यायालय के फैसले के बाद अपने समाज को नए सिरे से सोचने के लिए प्रेरित करेंगे।

(३७)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि अमेरिकी सेना ने अब अपने कर्मियों की धार्मिक चिह्नों के साथ कार्य करने की सुविधा देने का जो फैसला किया है वह स्वागत योग्य है?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि अमेरिकी सेना ने अभी हाल में अपने कर्मियों की धार्मिक चिह्नों के साथ कार्य करने की सुविधा देने का जो फैसला किया है वह स्वागतयोग्य है, क्योंकि बदले नियमों के अनुसार अब दाढ़ी, पगड़ी और हिजाब (परदा) पहनकर सेना में काम किया जा सकेगा। इसमें कहा गया है कि ब्रिगेड स्तर पर धार्मिक स्वतंत्रता संबंधी नियम का पालन सुनिश्चित कराया जाएगा।

दरअसल, अमेरिकी सेना में कार्यरत सिखों की दाढ़ी और पगड़ी की काफी माँग तथा उनके द्वारा अदालत में जाने से नियमों में बदलाव की जमीन तैयार हुई। कई मामलों में अदालत ने सिखवादी के पक्ष में फैसला दिया था। लेकिन असमान्य स्थितियों में इस स्वतंत्रता को रद्द भी किया जा सकता है। देश की सुरक्षा के लिए आवश्यक होने पर धार्मिक चिह्नों की स्वतंत्रतावाले नियमों को अस्थाई तौर पर निरस्त भी किया जा सकता है। यह अमेरिकी सिख समुदाय के लिए ही नहीं, बल्कि सेना के लिए भी अच्छा हुआ है इसलिए सेना के इस फैसले का स्वागत है।

(३८)प्रश्नः क्या आपने ऐसा महसूस किया कि श्री गुरु गोविंद सिंह के ३५०वें प्रकाशोत्सव पर उनकी जन्मस्थली बिहार में धार्मिक के साथ-साथ राजनीतिक सौहार्द का संगम दिखा? क्या इस प्रकाश पर्व के आयोजन ने बिहार राज्य को देश-दुनिया में चर्चा में ला दिया? आखिर इसकी क्या खूबियाँ रहीं?

उत्तरः हाँ, मैंने भी ऐसा महसूस किया कि श्री गुरुगोविंद सिंह जी की जन्मस्थली बिहार में विगत 3 जनवरी से 5 जनवरी 2017 को पटना के गाँधी मैदान तथा पटना सिटी स्थित गुरुद्वारा में आयोजित गुरुगोविंद सिंह के 350वें प्रकाशोत्सव पर धार्मिक के साथ-साथ राजनीतिक सौहार्द का भी संगम दिखा, क्योंकि एक ओर जहाँ पाँच राज्यों में विधानसभा चुनाव की रणभेरी बज रही थी, वहीं दूसरी ओर धार्मिक सौहार्द के बीच राजनीतिक गलियारे चकाचौंध हो रहे थे। सबसे अहम बात तो यह कि इन गतिविधियों के बीच जिसने सबको सकारात्मक सोच से जोड़ रखा था, वह था बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार का आतिथ्य संस्कार और मौके पर पाँच जनवरी, 2017 को पहुँचे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा बिहार में शराबबंदी के जरिए

सामाजिक सुधार से आबद्ध राजनीतिक संकल्प की खुलेदिल से सराहना जिसके राजनीतिक मायने भले निकाले जा सकते हैं, मगर राजनीति की यह स्वस्थ परंपरा भी मानी जाएगी।

नि:संदेह देश-विदेश के विभिन्न हिस्सों से अपने गुरु की जंन्मस्थली पर पधारे सिख श्रद्धालुओं के स्वागत के लिए सत्तारूढ़ और विपक्ष के राजनीतिक दलों और उसके नेताओं में होड़ मची रही। इन दलों व नेताओं ने शहर के चप्पे-चस्पे पर होर्डिंग के जरिए शुभकामनाओं के साथ-साथ सिख समुदाय में सियासी पैठ बनाने की कोशिश की। पंजाब काँग्रेस के अध्यक्ष कैप्टन अमरिन्दर सिंह को तो बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार को पंजाब विधानसभा चुनाव में प्रचार के लिए आमंत्रित करते भी देखा गया। इस प्रकाशपर्व ने यह साबित कर दिया कि सहयोग की भावना बिहार को न केवल ऊँचाई दे गई, बल्कि आतिथ्य सत्कार में इस राज्य का कोई जवाब नहीं तो मुख्यमंत्री से लेकर उपमुख्यमंत्री, सांसद, विधायक के साथ-साथ विपक्ष के नेता तथा पार्षद और छोटे-बड़े सभी राजनीतिक कार्यकर्ता लंगर में अपनी सेवा अर्पित करते देखे गए। बेशक ऐसे आयोजनों को आगे भी मौका बनाने की कोशिश होनी चाहिए, ताकि बिहार के प्रति सकारात्मक सोच को मजबूती मिल सके।

इसमें तनीक संदेह नहीं कि बिहार में आयोजित यह 350वें प्रकाशोत्सव से जहाँ विश्व में एकता, अखंडता, भाईचारा, सामाजिक समरसता और सर्वधर्म समभाव का संदेश गया है, वहीं केंद्र और राज्य के ऐसे ही तालमेल से बिहार की प्रगति का मार्ग अवश्य प्रशस्त होगा। इस प्रकाशोत्सव ने बिहार में नयी परंपरा की नींव डाली है और बिहार में एक 'स्वर्ण' इतिहास रचा गया है। तकरीबन डेढ़ लाख श्रद्धालुओं को 35 स्थानों पर नि:शुल्क ठहराने की व्यवस्था, पाँच करोड़ लोगों को खाने की व्यवस्था, 62 ट्रेनों की व्यवस्था, 400 विशेष बसों की व्यवस्था, दो सौ करोड़ रुपए खर्च कर गाँधी मैदान से पटना साहिब तक रंग-बिरंगे लिबास में रंगे सिख श्रद्धालुओं को देखकर वस्तुत: पटना मिनी पंजाब जैसा दिख रहा था।

(३९)प्रश्न: क्या आपको ऐसा लगता है कि भौतिकता आज दुनिया की ऐसी प्रचंड शक्ति है जो मानवीय अस्तित्व और चेतना को भी भौतिक रूप देने के लिए तीव्र वेग से गतिमान है? क्यों?

उत्तर: हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि भौतिकता आज दुनिया की ऐसी प्रचंड शक्ति है, जो मानवीय अस्तित्व और चेतना को भी भौतिक रूप देने के लिए

तीव्र वेग से गतिमान है, क्योंकि आज जब इस देश की युवा पीढ़ी पर हमारी नजर जाती है, तो पाते हैं कि दुनिया के सबसे युवा राष्ट्र भारत के युवा पथ भ्रष्ट होते जा रहे हैं और जब देश के सारे निर्माण वर्तमान पर ही निर्भर होते हैं तो हमें स्वामी विवेकानंद के संदेश को अपनाना होगा जिसमें उन्होंने कहा है कि तेज मस्तिष्क, सिंघ सी कार्यक्षमता, उज्ज्वल चरित्र एवं आध्यात्मिक मन के बल पर ही युवा समुदाय का निर्माण कर सकते हैं। स्वामी विवेकानंद मानवीय सभ्यताओं को वह ऊँचाई प्रदान करना चाहते थे जहाँ भौतिक बल की अपेक्षा आत्मीय बल की प्रतिष्ठा हो और वह प्रतिष्ठा एक ऐसे समाज में ही संभव है जिसमें नर की अपेक्षा नारी की श्रेष्ठता हो। मगर आज के दौर में तो नारी की उपेक्षा हो रही है।

आज जिस नारीवाद, उत्तर आधुनिकतावाद की जोर- शोर से चर्चा होती है उसके निमित्त सभी पश्चिमी विचार ग्राह्य नहीं हैं, क्योंकि वह भौतिकवाद की चाशनी में लिपटा हुआ रहता है, क्योंकि भौतिकता आज दुनिया की ऐसी प्रचंड शक्ति है जो मानवीय अस्तित्व और चेतना को भी भौतिक रूप देने के लिए तीव्र वेग से गतिमान है। इसलिए आज के दौर में विवेकानंद के विचार को अपनाना होगा जिन्होंने समत्व बोध से भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही जीवन को जिया था और आध्यात्मिकता को श्रेष्ठ पाया था। इस दृष्टि से हमें अपने आध्यात्मिक मार्ग के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अपनी प्राथमिकताओं का निरीक्षण करना होगा, ताकि हमारी इच्छाएँ हमें इस भौतिक संसार की चीजों और गतिविधियों के साथ न जोड़ती चली जाएँ। जब हम किसी चीज से मोह नहीं रखेंगे, तो हमारा ध्यान अपने आप ही भौतिकता से हटकर आध्यात्मिकता की ओर जाएगा।

(४०)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि आध्यात्मिक परंपराओं में लोग अपने जीवन और इससे जुड़ी चीजों को त्याग कर सिर्फ आध्यात्मिक यात्रा की ओर ध्यान देते हैं? क्या हमें संपूर्ण इंसान बनने का प्रयास नहीं करना चाहिए ?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि आध्यात्मिक परंपराओं में लोग अपने जीवन और उससे जुड़ी चीजों को त्याग कर सिर्फ आध्यात्मिक यात्रा की ओर ध्यान देते हैं जबकि हमें एक संपूर्ण इंसान बनने का प्रयास करना चाहिए, ताकि हम शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक रूप से विकसित हो सकें। आध्यात्मिक रूप से विकसित होने के लिए हम किसी भी संस्कृति, स्थान या धर्म में रहते हुए भी तथा किसी भी प्रकार की

गतिविधियों में भाग लेते हुए भी आध्यात्म को पा सकते हैं। आध्यात्मिक प्रगति की कुंजी तो हमारे मन के पास है। मन को शांत करके ही आध्यात्मिक प्रगति हो सकती है। सच्चाई, अहिंसा, नम्रता, पवित्रता और निष्काम सेवा जैसे सदगुणों को आत्मसात् कर हम आध्यात्मिक मार्ग पर तेजी से तरक्की कर सकते हैं। मन को शांत करना इसलिए जरूरी है, क्योंकि मन ही समस्त इच्छाओं का स्रोत है। मन को शांत कर लेने के बाद हम एक ऐसी अवस्था में पहुँच सकते हैं जहाँ हमारे अंदर इच्छा के लिए कोई जगह नहीं रहती।

(४१)प्रश्न: सर्वोच्च न्यायालय ने अयोध्या विवाद बातचीत से सुलझाने की बात क्यों कही है?

उत्तर: भले ही सर्वोच्च न्यायालय ने कोई फैसला नहीं दिया हो, लेकिन 2010 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 61 साल से चल रहे मुकदमें का फैसला दे दिया था। मुकदमें के तीनों पक्ष-सुन्नी वक्फ बोर्ड, निर्मोही अखाड़ा और रामलला को अदालत ने विवादास्पद जमीन बाँट दी थी, बावजूद इसके न हिंदू संतुष्ट हुए और न ही बाबरी मस्जिद एक्शन कमिटी। ऐसी स्थिति में आप ही बताइए कि सर्वोच्च न्यायालय क्या करता ? यदि सर्वोच्च न्यायालय इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले को सही ठहराता तो उसे लागू कौन करता? संभव है उसे तीनों दावेदार रद्द कर देते। ऐसे में सर्वोच्च न्यायालय की इज्जत भी जाती और देश में तनाव भी बढ़ जाता।

यदि सर्वोच्च न्यायालय वाकई कानूनी अधिकार पर कोई फैसला करना चाहे तो क्या वह कर सकता है? इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने भी अपने फैसले में साफ-साफ कहा है कि जहाँ तक रामजन्म भूमि का प्रश्न है, यह तो मात्र 'आस्था की उड़ान' है। जहाँ बाबरी मस्जिद बनी थी, उसके नीचे मंदिर होने के प्रमाण तो आप जुटा सकते हैं। यह ज्यादा से ज्यादा 1100-1200 साल पुराना मामला है। इसलिए दुनिया की कोई भी अदालत यह कैसे सिद्ध करेगी कि राम का या कृष्ण का या बुद्ध का या महावीर का जन्म ठीक-ठीक किस स्थल पर हुआ था। यह बाबरी मस्जिद की जगह ही राम का जन्म स्थल है। ऐसी हिंदुओं की आस्था बन गई है। अदालत को पता है कि आस्था तो तथ्य से भी ज्यादा ताकतवर होती है। इसीलिए सर्वोच्च न्यायालय ने बातचीत का मार्ग सुझाया है।

जहाँ तक मैं समझता हूँ बातचीत के फैसले के लिए किसी दस्तावेज की जरूरत नहीं है। उसके लिए जरूरत है प्रेम, सद्भावना, दरियादिली और भारत को मजबूत बनाने की इच्छा की। जो सवाल 70 साल

से लटका हुआ है, उसे आप चाहें, तो बातचीत के जरिए 70 घंटे में ही हल कर सकते हैं। मेरा ख्याल है कि बातचीत से ऐसा फैसला निकल सकता है, जो इस्लाम की इज्जत-आफजाई भी करेगा और मुसलमानों का आत्मविश्वास भी बढ़ाएगा। बातचीत अपने मुकाम तक पहुँचे, इसके लिए आवश्यक यह भी है कि पहले से ही बातचीत के कुछ आधार, कुछ सिद्धांत, कुछ मर्यादाएँ तय हों। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि गड़े मुर्दे न उखाड़े जाएँ। भविष्य की सोंची जाए। अयोध्या विवाद का समाधान कुछ ऐसा हो जो दोनों संप्रदायों में प्रेम और सद्भाव बढ़ाए। करोड़ों हिंदू और मुसलमानों को ऐसा लगे कि हमारी भावनाओं का सम्मान हुआ है। ऐसा हल हो जो सारे जगत के लिए आदर्श बन जाए।

अब जबकि रामजन्मभूमि व बाबरी मस्जिद विवाद की जटिलता को समझते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने जो राह सुझाई है, उससे उम्मीद की एक किरण जगी है। अब तक की प्रक्रिया से तो यही लगा है कि इस संवेदनशील व भावनात्मक मसले का हल महज कानूनी प्रक्रिया से संभव नहीं है, इसके हल के लिए संवाद भी एक अहम पहलू है जिसके लिए सर्वोच्च न्यायालय ने पहल की है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अयोध्या के विवादित ढाँचे के मामले को कोर्ट के बाहर ही निपटाने का सुझाव भी संभवत: इसीलिए दिया गया है, ताकि कोई भी पक्ष खुद को पराजित अथवा विजेता महसूस न कर सके।

दरअसल, यह धर्म और आस्था से जुड़ा मामला है, इसलिए दोनों पक्ष इसे कोर्ट से बाहर सुलझा लें तो अच्छा रहेगा। हालांकि यह भी सच है कि अयोध्या मामले में अगर समझौते के लिए बातचीत होती है तो यह इस मुद्दे को सुलझााने की ग्यारहवीं कोशिश होगी। 1986 से अबतक समझौते की दस कोशिशें नाकाम रही हैं। बातचीत के जरिए हल निकालने का फायदा यह होता है कि भविष्य में दोबारा विवाद होने की संभावना नहीं रहती, जबकि कोर्ट के फैसले में जो भी पक्ष जीतता है वह तो खुश होगा ही, पर हारनेवाला अपने भीतर बँधी गांठों को खोल नहीं पाता। अत: विवाद की संभावना आगे भी बनी रहती है। देश के इस सबसे संवेदनशील मसले का यदि कोई हल दोनों पक्षों और देशहित में निकलेगा तो वह बातचीत और आपसी सद्भाव से ही निकलेगा।

(४२)प्रश्नः क्या आप ऐसा मानते हैं कि अनजाने में धर्म का अपमान अपराध नहीं होता? ऐसा क्यों?

उत्तरः हाँ, मैं भी मानता हूँ कि अनजाने में या गलती से धर्म का अपमान अपराध नहीं होता। देश की सर्वोच्च अदालत उच्चतम न्यायालय ने भी हाल ही में इस मामले में कानूनी दायरे को स्पष्ट करते हुए कहा है कि अनजाने में या गलती से किसी धर्म का अपमान करने वाले शख्स पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। कोर्ट की राय में अगर ऐसा होता है, तो ये कानून का बेजा इस्तेमाल होगा।

भारतीय दंड संहिता की धारा 295ए के हो रहे गलत इस्तेमाल पर चिंता जाहिर करते हुए सुप्रीम कोर्ट के माननीय न्यायाधीश दीपक मिश्रा, ए. ए. एम. खानविलकर, एम.एम. शांतनगुदार की खंडपीठ ने कहा कि बिना किसी दुर्भाग्यपूर्ण इरादे से अनजाने में या लापरवाही में या अनिच्छा से धर्म के अपमान, जिससे उस धर्म के लोग रोष में आ जाएँ, इस धारा के दायरे में नहीं आएगा। दरअसल, इस खंडपीठ ने क्रिकेट खिलाड़ी एम एस धोनी की याचिका पर सुनवाई करते हुए यह बात कही। वर्ष 2013 में एक व्यवसायिक पत्रिका के आवरण पृष्ठ पर 'भगवान विष्णु' के रूप में धोनी को चित्रित किया गया था। उनके हाथों में जूतों सहित कई चीजें रखी गई थीं।

ऐसे वक्त जब कुछ लोगों को लग रहा है कि देश में धार्मिक असहिष्णुता बढ़ रही है, सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला बहुत अहम है, क्योंकि इस मामले में कानूनी दायरे को स्पष्ट किया गया है। इसी के आधार पर मेरा भी मानना है कि अनजाने में या गलती से किया गया धर्म का अपमान अपराध नहीं होता। वैसे भी आसमान से नाजिल की गयी पाक किताब से लेकर वेदों और उपनिषद में भी इसका जिक्र है कि अनजाने में हुई चूक को ईश्वर के घर में पाप नहीं माना जाता, लेकिन इसे कोई समझने को तैयार कहाँ होता है? इस संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट के ताजे फैसले के दौरान उसका यह कहना दिलचस्प रहा कि कम से कम समझदारों को तो ऐसे मामलों को तूल नहीं देना चाहिए। सच तो यह है कि चूक होना कोई बड़ी चीज नहीं है पर चूक होने के बाद ऐसे मामलों को लेकर राजनीति करने वालों का शिकार हो जाना समस्या उत्पन्न करता है। उम्मीद है लोग अब ऐसी चूक करेंगे नहीं और अगर हो गयी, तो दूसरे लोग अपने लाभ के लिए इसे अपना हथियार नहीं बनाएँगे।

(४३)प्रश्नः दो साध्वियों के साथ यौन शोषण के आरोप में खुद को धर्मगुरु कहने वाले डेरा सच्चा सौदा के प्रमुख गुरमीत राम रहीम को सीबीआई कोर्ट द्वारा दोषी ठहराए जाने के बाद उनके समर्थकों ने हरियाणा और पंजाब में जैसा उत्पात मचाया और व्यापक हिंसा में ढाई दर्जन से अधिक लोगों की जो मौत हुई तथा राष्ट्रीय संपत्ति का जो नुकसान हुआ उसके लिए आखिर कौन जिम्मेदार है और कैसे?

उत्तरः हरियाणा के पंचकुला में सीबीआई कोर्ट द्वारा दो साध्वियों के साथ यौन शोषण के आरोप में खुद को धर्मगुरु कहने वाले डेरा सच्चा सौदा के प्रमुख गुरमीत राम रहीम को दोषी ठहराए जाने के बाद उनके समर्थकों ने हरियाणा और पंजाब सहित कई अन्य राज्यों में जैसा उत्पात मचाया और व्यापक हिंसा में ढाई दर्जन से अधिक लोगों की जो मौत हुई और राष्ट्रीय संपत्ति का नुकसान हुआ उसके लिए हरियाणा सरकार पूरी तरह से जिम्मेदार है, जिसने न सिर्फ हजारों डेरा समर्थकों को पंचकुला व अन्य स्थानों पर इकट्ठा होने दिया, बल्कि यह जानने के बाद भी हाथ पर हाथ धरे बैठी रही कि ये समर्थक हिंसा पर उतारू हो सकते हैं। फैसला आते ही हरियाणा के पंचकुला में हजारों डेरा समर्थक आगजनी व पथराव करने लगे। देखते ही देखते चारों ओर हिंसा और आगजनी फैल गई। उल्लेख्य है कि एक दिन पहले से ही तैनात सेना और अर्द्धसैनिक बलों के साथ राम रहीम समर्थकों के टकराव में पंचकुला में 28 और सिरसा में चार लोगों की मौत हो गई थी। हरियाणा का हर व्यक्ति जानता था कि डेरा सच्चा सौदा के प्रमुख गुरमीत राम रहीम इंसां के कोर्ट में पेश होने पर क्या-क्या घट सकता है, किंतु हरियाणा के मुख्यमंत्री और प्रशासन के अधिकारी तो राम रहीम पर मानो विश्वास किए बैठे थे। यहाँ तक कि पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय ने फटकार लगाई कि जमा हो चुके लाखों डेरा समर्थकों को खदेड़ने में विफल डीजीपी को बर्खास्त कर देना चाहिए, किंतु डीजीपी को तो दूर, रात साढ़े तीन बजे तक एक डेरा प्रेमी तक को हटाया नहीं गया। उच्च न्यायालय की ऐसी अवहेलना और ऐसी अवमानना पहले नहीं देखी गई। विशेषकर, जब यौन शोषण का दोष सिद्ध होने की स्थिति में ये लाखों समर्थक क्या कर सकते हैं- सरकार खूब समझती थी। दरअसल, वोटों के लिए कोई सरकार किसी यौन अपराधी से इस तरह जुड़ सकती है, विश्वास नहीं होता। वोट बैंक को ऐसा आपराधिक मांद हमारी राजनीति को कहाँ ले जाएगा, कहा नहीं जा सकता।

हरियाणा के हालात यह बता रहे हैं कि राजनीति के साथ-साथ प्रशासन का भी क्षरण हो रहा है। हरियाणा की खट्टर सरकार और पुलिस ने अतीत की भूलों से कोई सबक नहीं लिया। पहले बाबा रामपाल की गिरफ्तारी में उसके पसीने छूटे थे फिर जाट आंदोलन के दौरान उसकी नाकामी सबने देखी थी। यह राजनीतिक इच्छाशक्ति के घोर अभाव और वोट प्रेम के आगे अपनी भूल जिम्मेदारियों को ताक पर रखने का ही नतीजा है कि अराजकता के आगे कानून का शासन ध्वस्त-सा हो गया।

जहाँ तक जिम्मेदारी ठहराने का प्रश्न है इस संदर्भ में यह कहना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि इस घटना के पहले भी देश में सैकड़ों ऐसी घटनाएँ हुई हैं जहाँ धारा 144 लगाने के बावजूद भीड़ अपने आप आ गयी है। छह दिसंबर, 1992 की अयोध्या घटना इसका बेहतर उदाहरण है। इस लिहाज से देखा जाए तो कोई भी मुख्यमंत्री लोगों को शांतिपूर्वक कहीं इकट्ठा होने से नहीं रोक सकता है। और यदि उसे ऐसा करना ही पड़े तो इसके लिए वह बहुत ज्यादा बल प्रयोग नहीं कर सकता है, लेकिन एक बार जब भीड़ हिंसक हो जाती है तो प्रशासन को कार्रवाई करने का आधार मिल जाता है। डेरा सच्चा सौदा के कार्यकर्ताओं के साथ भी यही हुआ। गुरमीत राम रहीम के दोषी साबित होने के बाद जैसे ही भीड़ उग्र हुई पुलिस को कार्रवाई करने की वजह मिल गई जिसकी वजह से तीन दर्जन से अधिक लोग मारे गए जिनके लिए आज कोई रोनेवाला नहीं है। अगर पहले पुलिस सख्त कार्रवाई करती तो संभव है इससे भी ज्यादा लोग मरते ओर मीडिया तथा मेरे जैसे लेखक लासेग भी पुलिस को ही आड़े हाथों लेते। इस तर्क को आप यदि ठंडे दिमाग से सोचे तो मेरे विचार से बहुत हद तक गुरमीत मामले में हरियाणा पुलिस प्रशासन ने सूझबूझ का परिचय दिया है। अगर वह पहले कार्रवाई करती तो लोगों की भीड़ बेकाबू हो गई होती और नुकसान इससे भी ज्यादा हो जाता।

सच तो यह है कि राम रहीम इसलिए इतना शक्तिशाली, प्रभावशाली और वैभवशाली बाबा बन गया, क्योंकि हर राजनीतिक पार्टी उसके चरणों में पड़ी देखी गई है। जाहिर है इतने अंध समर्थकों वाले किसी भी व्यक्ति को हर पार्टी आकर्षित करना चाहेगी ही। अंधभक्ति का यही आधार है। इतना पैसा कहाँ से आता होगा? डेरा सच्चा सौदा प्रमुख गुरमीत राम रहीम अपनी जीवन शैली को लेकर खासे चर्चित रहे हैं। करीब दो अरब रुपए की संपत्ति के स्वामी डेरा प्रमुख सुख-सुविधाओं वाला जीवन जीते हैं।

महंगे कपड़े और चमकदार जूतियाँ पहनना और अत्यंत ऐशोआरामवाली कारों के काफिले में सफर उन्हें दूसरे से अलग बनाता है। आखिर तभी तो गुरमीत राम रहीम उन 36 भारतीयों में शामिल है जिन्हें वीवीआईपी का दर्जा और जेड प्लस सुरक्षा मिली है। डेरे की एक राजनीतिक इकाई है जो चुनाव के दौरान किसी भी राजनीतिक पार्टी को समर्थन देने का फैसला लेती है। पिछले विधान सभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को समर्थन दिया था, मगर खट्टर सरकार की इस नाकामी से भाजपा की छवि पर बहुत बुरा असर डाला है। भाजपा को अब चेत जाना चाहिए अन्यथा परिणाम भुगतना होगा।

दरअसल, भारत में धर्म के नाम पर कोई किसी को भी बेवकूफ बना सकता है। भक्त उस व्यक्ति पर भरोसा कर बैठता है जिसपर उसे पूर्ण श्रद्धा हो गई। डेरा सच्चा सौदा के प्रमुख गुरमीत राम रहीम के यौन शोषण घोटाले के आरोप में सीबीआई कोर्ट में पेशी के पूर्व भक्त उनके दर्शन के लिए देशभर से पंचकुला पहुँच गए। भारत जैसे धार्मिक देश में बाबा-साधु-संत और तांत्रिकों की कमी नहीं है। हरियाणा में कनीय अभियंता पद पर काम करने वाले रामपाल संत बन गए थे। उन्होंने भी बड़ी फौज खड़ी की थी, लेकिन कानून के सामने उनकी एक नहीं चली। भारत में बने तमाम गॉडमैन की कहानी अब जनता खूब जान चुकी है। आशाराम बापू यौन शोषण के आरोप में ही तो आज जेल में हैं। इन साधुओं के चरणों में नतमस्तक होने वाले फिल्म उद्योग से लेकर कॉरपोरेट घराने और राजनीति के बड़े-बड़े राजनेताओं तक लोग इसमें शामिल हैं। कुछ इसी वजह से आज देश में धर्म फैलाकर उसकी आड़ में अनैतिक काम किया जा रहा है। दरअसल, धर्म की बीमारी यह है कि उसका लक्ष्य तो व्यक्ति के जीवन को पवित्र और दोषहीन बनाना है, परंतु धर्माधिकारी, गुरु, चर्च, मुल्ला-मौलवी, पादरी, मंदिर-मस्जिद, मठ आदि के रूप में धर्म की सत्ता आध्यात्मिक न रहकर उसकी एक भौतिक सत्ता भी विकसित हो जाती है। इस प्रकार सचमुच धर्म एक अफीम की तरह हो गया है जिसका जहर समाज के हर तबके में फैल चुका है। आपने देखा नहीं कुछ इसी वजह से बयानों से सुर्खियों में रहने वाले सांसद साक्षी महाराज ने डेरा सच्चा सौदा के प्रमुख राम रहीम के पक्ष में बयान देकर केंद्र और हरियाणा सरकार के लिए मुश्किल तो खड़ी की ही, कोर्ट के फैसले पर भी सवाल खड़े कर दिए। उन्होंने फैसले को भारतीय संस्कृति के खात्मे की साजिश करार दिया। उन्होंने यह भी कहा कि एक व्यक्ति के आरोप लगाने पर करोड़ों लोगों की भावनाओं को कुचल दिया

गया। ऐसे धर्मांध साधु-संतों और बाबाओं की आखें भले ही बंद हों, पर हरियाणा और देशवासियों की आँखें खुल चुकी हैं। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि न्यायिक फैसले भी अब उम्मीद जताते नजर आ रहे हैं। आखिर तभी तो पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने खुद को इंसां कहलाने वाले राम रहीम के उत्पाती समर्थकों के कारण हुई क्षति डेरा सच्चा सौदा से वसूलने के आदेश दिए, लेकिन इसी के साथ यह भी आवश्यक है कि पंजाब और हरियाणा की सरकारें किस्म-किस्म के डेरों का नियमन और साथ ही उनकी निगरानी करें, न कि उनके समक्ष शरणागत होकर वोट बैंक बनाने की कोशिश करें। यह देखा जाना भी समय का तकाजा है कि तथाकथित धर्मगुरु धर्म का पाठ पढ़ाते हैं या फिर अपने समर्थकों की फौज को धर्मांध बनाते हैं? आखिर तभी तो कवि डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम' कहते हैं-

'अमन चैन के आज परिन्दे,
सभ्य लोक के ये वाशिन्दे
हैं खामोश न जाने क्यों ये
हावी क्यों हो रहे दरिन्दे !
रक्तपात कबतक रुकेगा
कबतक यह आतंक चलेगा
कब तक इंसां के कदमों में
हिंसा का हैवान झुकेगा?'

इसलिए वक्त का तकाजा है कि पाखंडी बाबाओं पर कानून की नकेल कसी जाए। यह तो अच्छा हुआ कि सीबीआई के जज ने गुरमीत राम रहीम को विगत 28 अगस्त 2017 को दो साध्वियों के यौन शोषण के दोषी गुरमीत राम रहीम को दोनों मामलों में दस-दस साल के सश्रम कारावास की सजा सुनाई। रोहतक के सुनारिया जेल परिसर में अदालत लगाकर सीबीआई जज जगदीप सिंह ने जेल की लाइब्रेरी में बनाई गई विशेष कोर्ट में फैसला सुनाया जिसमें दोनों सजाएँ अलग-अलग चलेंगी। इस तरह राम रहीम को 20 साल सलाखों के पीछे काटने होंगे। दोनों मामलों में दोषी पर 15-15 लाख रुपए का जुर्माना भी लगाया गया है। इस राशि में से 14-14 लाख रुपए दोनों पीड़िताओं को मिलेंगे।

(४४) प्रश्न: अध्यात्म और धर्म के नाम पर इस देश में लड़कियों के यौन शोषण के साथ आज कई प्रकार के जो अपराध हो रहे हैं क्या

देशवासियों को यह झकझोरता नहीं कि वे कैसे लोगों को संत और गुरु मान लेते हैं?

उत्तर: सचमुच अध्यात्म और धर्म के नाम पर इस देश में लड़कियों के यौन शोषण सहित आज कई प्रकार के जो अपराध हो रहे हैं उससे देशवासियों को झकझोरना चाहिए कि वे कैसे लोगों को संत और गुरु मान लेते हैं। हम इस सच्चाई से भी मुँह नहीं मोड़ सकते कि इस देश में धार्मिक आस्था को अफीम की तरह प्रयोग करने वाले ढोंगी संतों और बाबाओं की एक लंबी श्रृंखला है। इसके अनुयायियों की संख्या हजारों और लाखों में नहीं अपितु करोड़ों में होती है जो इन बाबाओं के नाम पर हर शहर में आश्रम बनाकर उसे बाबा की संपत्ति घोषित कर देते हैं। इस प्रकार इन बाबाओं का भौतिक साम्राज्य अरबों-खरबों का हो जाता है। अपने इस विशाल साम्राज्य की अपरमित शक्ति के बल पर ये बाबा अपनी दमित भौतिक वासनाओं की प्रतिपूर्ति करने लगते हैं और जब कभी इनके कुकृत्यों का भंडाफोड़ होता है, तो उनके करोड़ो अँधभक्त उग्र होकर अनावश्यक ही अराजकता फैलाने से नहीं चूकते। अभी आपने देखा नहीं हरियाणा में डेरा सच्चा सौदा के मुखिया गुरमीत राम रहीम को दो साध्वी के साथ दुष्कर्म की घटना में दोषी पाए जाने और 10-10 साल की अलग-अलग सजा दिए जाने के बाद राम रहीम के समर्थकों ने जो हिंसा का सहारा लेकर उत्पात मचाया और राष्ट्रीय संपत्ति का जो नुकसान पहुँचाया उससे सबको सीख लेने की जरूरत है। इसके लिए जितनी राज्य सरकार दोषी है उससे कहीं अधिक इन भौतिवादी बाबाओं के वे अंधभक्त दोषी हैं जो अपनी धार्मिक आस्था और अंध आस्था में अंतर नहीं कर पाते और ऐसे बाबाओं को साक्षात भगवान मानने की भूल कर बैठते हैं।

(४५)प्रश्न: डेरा सच्चा सौदा प्रमुख गुरमीत राम रहीम आस्था को धन्धा बनाकर उसका मजाक बनाया। आखिर कबतक ऐसे ढोंगियों की वजह से आस्था और ईश्वर का मजाक बनता रहेगा?

उत्तर: भारत विश्व का वह देश है, जहाँ सबसे ज्यादा देवी-देवताओं का वास माना जाता है। लेकिन मुझे आश्चर्य तब होता है जब अपने जैसे किसी मानव को लोग ईश्वर मान बैठते हैं। डेरा सच्चा सौदा के प्रमुख गुरमीत राम रहीम ही नहीं, बल्कि इनके जैसे आसाराम, नारायण साई, नित्यानंद, रामनाईक सब राम के नाम पर ठगी का साम्राज्य एवं आतंक फैलाए हुए हैं और महिलाएँ इनके शारीरिक एवं मानसिक शोषण का शिकार होकर तिल-तिल मर रही हैं। दरअसल, मुझे लगता है कि देश में अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी,

अँधविश्वास, निराशा एवं असुरक्षा की भावना की वजह से लोग मानसिक रूप से पीड़ित होते जा रहे हैं और इन तमाम दुखों से मुक्ति के मकसद से इन ढोंगी बाबाओं की शरण में आ पहुँचते हैं। यहीं से तथाकथित ढोंगी बाबा स्वघोषित 'मैसेंजर ऑफ गॉड' बन जाते हैं और फिर बाबा उन्हें कोरा उपदेश देकर या फिर चमत्कारी होने की ढोंग करके उनके दिलों-दिमाग पर सम्मोहन कर लेते हैं। इस तरह कोई भी बाबा इन पीड़ित लोगों के हालात का फायदा उठाकर अपनी ऐशोआराम की दुकान चला लेता है। इसके अलावा मामूली तंत्र-मंत्र, झाड़-फूँक से शुरू होने वाला अँधविश्वास लोगों के उत्पीड़न, हत्याओं एवं शारीरिक शोषण का कारण बनता जा रहा है। ऐसे ही ढोंगी बाबाओं ने आस्था को धंधा बनाकर उसका मजाक बनाया है।

मुझे लगता है कि ईश्वर से मिलने की चाह ने लोगों को इतनी बुरी तरह से अँधा बना दिया है कि इस देश के लोगों में विशेष तौर पर महिलाएँ सही और गलत का फर्क करना भूलती जा रही हैं। ऐसे में अगर हम यह कहें कि वे स्वयं अपने शोषण के लिए जिम्मेदार हैं तो गलत नहीं होगा। अब सवाल उठता है कि आखिर कब तक ऐसे ढोंगियों की वजह से आस्था और ईश्वर का मजाक बनता रहेगा? इस प्रश्न का एक उत्तर तो यही है कि सबसे पहले इस देश में अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी, अँधविश्वास, निराशा एवं असुरक्षा की भावना से मानसिक रूप से पीड़ित होते जा रहे लोगों को बचाने के लिए पहल की जाए। दूसरा यह कि लोगों को यह समझना होगा कि ईश्वर और शैतान, दोनों उनके अन्दर ही बसते हैं इसलिए इसे दूसरों में तलाशना बन्द करना होगा। तीसरी बात यह न्यायपालिका में न्यायाधीश जगदीप सिंह जैसे लोगों के साहस को तरजीह दिए जाने की जरूरत है। इसके साथ ही ऐसे मामलों में न्याय में तेजी लाने की आवश्यकता है।

पाखंड का एक बहुत बड़ा जाल है। यह एक चेन है, जिसमें महिलाओं को एक-एक कर फँसाया जाता है। यदि दो साध्वी महिलाएँ हिम्मत नहीं करतीं, तो सिरसा का पाखंडी राम रहीम जेल नहीं जाता। महिलाएँ कृपया इस जाल को समझें और अपनी-अपनी समस्याओं को पति के साथ मिलकर, थोड़ा संयम बरतकर सुलझाएँ। हमारा अहंकार हमें इन पाखंडियों के पास इस उम्मीद से ले जाता है कि शायद हमारी समस्या सुलझ जाए, परंतु समस्या सुलझने की बजाय उलझती चली जाती है। हम सब का कर्तव्य है कि डेरों की घटनाएँ और ढोंगी बाबा गुरमीत राम रहीम जैसे बाबाओं की सत्यता को समझाते हुए उन्हें इस दलदल में जाने से रोकें।

डेरा सच्चा सौदा के प्रमुख गुरमीत के राम रहीम बनने से लेकर उसका साम्राज्य खड़ा होने तक और फिर प्रियंका तनेजा से हनीप्रीत बनी इस मुँहबोली बेटी का अचानक गायब होना और अबतक लुकआउट नोटिस के साथ ही उसकी तलाश किसी तयशुदा फिल्मी कहानी जैसी ही है जिसके गुरमीत और हनीप्रीत खिलाड़ी हैं और डेरा में रची गई तमाम साजिशों की स्क्रिप्ट इन्हीं की लिखी थी। अब उसी हनीप्रीत को सबसे बड़ा दोषी करार दिया जा रहा है जिसे चंद दिनों पहले तक पुलिस ने वीआईपी की तरह सुविधा दे रखी थी। इन सभी घटनाओं को देखकर कम से कम अब तो यहाँ के देशवासियों में खासतौर पर महिलाओं को सचेत हो जाना चाहिए। हम भारतवासी आदिकाल से चमत्कारों एवं अफवाहों में विश्वास करते आए हैं और ये बाबा इसमें माहिर होते हैं। कोई वर्षो से एक टांग पर खड़ा है, तो कोई पेड़ से लटका है, कोई कीलों की शय्या पर लेटा है। इन चमत्कारों से किसी का भला नहीं हुआ। इसलिए इससे हमें सचेत रहने की आवश्यकता है।

दरअसल, हम बिना किसी जाँच-पड़ताल भेड़चाल चलते हुए उसके प्रति अपनी आस्था को सुदृढ़ करते चले जाते हैं और एक स्थिति ऐसी बन जाती है कि हमारी यह आस्था अँधविश्वास में परिणत हो जाती है। वह संत हमारे लिए भगवान बन जाता है और उसके प्रति हमारी अँध आस्था इतनी प्रबल हो जाती है कि हम उसके लिए कुछ भी कर गुजरने को तत्पर रहते हैं। आज समाज के ढोंगी संत और बाबा आमजन की इसी अँधआस्था का लाभ उठाकर अपनी दिखावटी आध्यात्मिक दुकान को चमकाने का काम कर रहे हैं। इसलिए आज हमें संत और ढोंगी को पहचानने की जरूरत है। हम आस्थावान बनें, लेकिन अँधविश्वासी कभी न बनें। समाज के बीच पनपते ढोंगी और दिखावटी बाबाओं की बढ़ती लोकप्रियता पर विराम लगाने के लिए इस तरह की समझ का विकसित होना जरूरी है। अब उम्मीद है कि हमें धार्मिक बाबा के चोले में छिपे अपराधियों के घातक गिरोह से मुक्ति मिल जाएगी, जिन्हें राजनीतिक संरक्षण के कारण ताकत मिलती है।

(४६)प्रश्न: क्या आपको ऐसा लगता है कि इस देश को धर्मनिरपेक्षता रूपी विकृति ने अधिक हानि पहुँचाई है? आखिर क्यों? क्या इस पर गंभीरता से विचार-विमर्श किए जाने की आवश्यकता है?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि इस देश की धर्मनिरपेक्षता रूपी विकृति ने अधिक हानि पहुँचाई है इसलिए इस पर गंभीरता से विचार किए जाने की

आवश्यकता है, क्योंकि एक ऐसे देश में जो सर्वधर्म समभाव से प्रेरित और संचालित हो और जिसने वसुधैव कुटुम्बकम को अपना आदर्श बना रखा हो वहाँ धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा की कहीं कोई जरूरत ही नहीं थी। धर्मनिरपेक्षता शुद्ध रूप से विजातीय अवधारणा है जिसका भारत से कहीं कोई लेना-देना नहीं। यूरोप में तो सेक्युलरिज्म की अवधारणा इसलिए पनपी, क्योंकि नागरिक सत्ता को चर्च के दुष्प्रभाव से बचाने की आवश्यकता थी। भारत में तो ऐसा कुछ था ही नहीं, लेकिन दुर्भाग्य से इसके बावजूद धर्मनिरपेक्षता को एक आदर्श के रूप में अपनाने का काम किया गया। सेक्यूलरिज्म को धर्मनिरपेक्षता का पर्याय समझा गया। चूंकि धर्म का अर्थ कर्तव्य है इसलिए इस पर प्रश्न चिह्न लगाने की कहीं कोई आवश्यकता नहीं थी।

दरअसल, सेक्यूलरिज्म को पंथनिरपेक्षता के रूप में लिया जाना चाहिए था, लेकिन उसे धर्मनिरपेक्षता समझ लिया गया और इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि मानवमात्र के लिए जो आदर्श कर्तव्य है उसकी अनदेखी हुई। इसमें कहीं कोई संशय नहीं कि धर्मनिरपेक्षता रूपी सेक्युलरिज्म के नाम पर अल्पसंख्यकवाद को बढ़ावा देने का काम किया गया है। अल्पसंख्यकवाद की राजनीति ने सामाजिक ताने-बाने को जैसा नुकसान पहुँचाया है, उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है।

गलती केवल यही नहीं हुई है कि सेक्युलरिज्म के नाम पर एक विजातीय अवधारणा को समाज पर थोप दिया गया, बल्कि यह भी हुई है कि एक ओर तो यह कहा गया कि संविधान की दृष्टि में सभी नागरिक बराबर हैं और इसके साथ ही यह भी व्यवस्था की गई कि भिन्न उपासना पद्धतिवाले लोगों को कुछ विशेष अधिकार प्राप्त होंगे। इन अधिकारों का न केवल जमकर दुरुपयोग किया गया, बल्कि उनके जरिए वोट बैंक की राजनीति को भी प्रश्रय दिया गया। यह राजनीति इतनी अधिक फली-फूली की हिंदू धर्म के सहोदर-सहभागी समझे जाने वाले जैन धर्म के अनुयायियों ने स्वयं को अल्पसंख्यक समुदाय घोषित करने की माँग की चूंकि राजनीतिक संकीर्णता का बोलबाला था। इसलिए इस माँग को स्वीकार भी कर लिया गया। इससे अच्छा हो कि नीति-नियंता और विचारक-चिंतक मनन करें कि सेक्युलरिज्म ने देश का भला किया है अथवा समाज में विभेद किया है। बेहतर होगा कि धर्म के मर्म को समझने की कोशिश की जाए न कि विभिन्न उपासना पद्धतियाँ के कर्मकांडों को धर्म का पर्याय माना जाए। यह उपासना पद्धति के कर्मकांडों को धर्म के रूप में लिए जाने का ही

दुष्परिणाम है कि कर्मकांड को ही धर्म समझ लिया गया है और इसी वजह से कर्मकांडरूपी कथित धार्मिक क्रियाकलाप एक तरह के शक्ति प्रदर्शन में परिवर्तित हो रहे हैं।

(४७)प्रश्न: एक साहित्यकार के नाते धर्म के बारे में आप क्या सोचते हैं? आपकी नजर में धर्म का सही मायने में क्या अर्थ है? धर्म का विज्ञान, शिक्षा, ज्योतिष और कर्मकांड आदि से क्या रिश्ता है?

उत्तर: धर्म मनुष्य की वह नैतिकता है, जो मनुष्य-मनुष्य को समान मानती है और यदि मनुष्य, मनुष्य के समान हो जाता है, तो वह व्यक्ति को सबसे बड़ा धार्मिक बना देता है। बापू भंगी-बस्ती में रहते थे और वह संपूर्ण रूप से धार्मिक थे। धर्म को खुदा से जुदा किया जा सकता है, मगर इंसानियत से नहीं। महीयसी महादेवी वर्मा की नजर में 'धर्म मूल अर्थ में कर्त्तव्य, स्वभाव तथा जीवन मूल्यों को व्यक्त करता है।' जब हम कहते हैं पुत्र को, माता-पिता को आदर देना उसका धर्म है तब उसका अर्थ कर्त्तव्य होता है जब हम कहते हैं फूल का क्षणभर खिलकर मुरझा जाना उसका धर्म है तब उसका अर्थ स्वभाव माना जाएगा। जब हम कहते हैं सत्य और अहिंसा का पालन मनुष्य का धर्म है तब वह जीवन मूल्य माना जाएगा। वास्तव में सभी धर्मों में कुछ जीवन मूल्य समान हैं, पर उन्हें जान लेने पर विवाद समाप्त हो जाएगा। महाभारत के रचनाकार का कथन 'नहि मानुषात क्षेष्ठतरें हि किंचित' मानवता का उद्घोष है। समुद्र की हर लहर समुद्र है। उसी प्रकार हर धर्म महान मानव चेतना ही है। धर्म इतनी खूबसूरत चीज है जिसे आज हम गलियों-बाजारों में ले आए हैं। हर चीज की तरह यह भी व्यापारिक बन गया है। इसके नाम पर सत्ता और दौलत कमाने वालों की साजिश है। सत्ता की यह मात्र चेरी बन कर रह गया है।

वैसे धर्म का शाब्दिक अर्थ है धारण करना- 'धारयेत इति धर्म।' धर्म शब्द की सच्ची भावना का द्योतन कणाद् मुनि के इस सूत्र से होती है-'मनोऽभ्यूदयनि:श्रेयस सिद्धि: स धर्म:।' अर्थात् जिससे मानव का इस लोक का उत्कर्ष एवं परलोक का कल्याण होता है वह धर्म है। भारतीय संस्कृति में यह मान्यता शुरू से ही लक्षित होती है कि मानव को सर्वश्रेष्ठ मानकर सभी क्रियाएँ एवं सांस्कृतिक अनुष्ठान उसी के निमित्त संपादित किए जाएँ। संस्कृत की निम्नस्थ ऋचा में इसी मान्यता की पृष्टि होती है-

सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्वे भवन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, माकश्चिद दु:ख भग भवेत्।।

दूसरे के दु:ख को समझना तथा दूसरों को पीड़ा न पहुँचाना यह भाव भारतीय संस्कृति के मूल में प्रारंभ से ही विद्यमान रहा है। शास्त्रकार ने कहा कि "परोकार: पुण्याय, पापाय परपीड़नम्।"

धर्म हमें उदार बनने तथा आत्मविस्तार करने का पाठ पढ़ाता है। जहाँ सांसारिक सुख हमें अँधकार, पाप, अधोगति एवं असंतोष की ओर ले जाते हैं, वहीं यह धर्म का मार्ग हमें पुण्य, सर्वोच्च गति एवं संतोष की प्राप्ति करा देता है। धर्म का कार्य है-'व्यक्ति के विवेक को जगाना'। विवेक के जागरण से व्यक्ति को उचित अनुचित एवं हित-अहित का बोध हो जाता है। वास्तव में अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही सबसे बड़ा धर्म है।

(४८)प्रश्न: राजनीति में धर्म की क्या भूमिका रही है?

उत्तर: भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है। यहाँ के अधिकांश लोग हिंदू धर्म के हैं, किंतु इस्लाम, सिख और ईसाई धर्म के मानने वालों की संख्या भी अच्छी-खासी है। इस देश में धर्म के साथ-साथ जातिवाद भी है, सांप्रदायिकता भी है यह सचमुच बहुत गंभीर स्थिति है। जहाँ तक राजनीति में धर्म की भूमिका का प्रश्न है, अक्सर धर्म विश्वास के रूप में नहीं, वरन् एक औजार के रूप में राजनीतिक दलों द्वारा इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए आज वह शासन करने का, दमन करने का हथियार बन गया है जो सचमुच दुखद है। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए राजनीतिक दलों द्वारा यहाँ कभी मस्जिद तोड़वाया जाता है, तो कभी मंदिर को अपमानित करवाया जाता है। यही कारण है कि यहाँ प्रगतिशील आंदोलन की मजबूत बुनियाद के बावजूद सांप्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रीयता, शोषण, दमन और अत्याचार से आज का भारतीय समाज आक्रांत है। धर्म और राजनीति के आपसी रिश्ते को मस्तमौला कवि स्वामीनाथ ने निम्न पंक्तियों के माध्यम से उनके तिकड़मी समीकरण को रेखांकित किया है-

"उनके धर्म के पांव कितने लंबे हैं,
इनकी राजनीति का माथा उतना ही ऊँचा है,
कितनी बारीकी से रेल के दो इंजनों की तरह,
भिड़ा देता है खुदा और भगवान को।"

(४९)प्रश्न: धर्म-कर्म का अभिप्राय क्या है? क्या धार्मिक विश्वासों के अनवरत प्रचार से वैज्ञानिक सत्य के प्रति आस्था रखने वालों को ठेस नहीं पहुँचती?

उत्तर: भारत में धर्म का जो वर्तमान स्वरूप सामने आ रहा है वह कई अर्थो

में जन समस्याओं से कटा ही नहीं, बल्कि आपके सुरक्षित हित में बिना कुछ खास किए धर्म के नाम पर उसका ध्यान न केवल जन समस्याओं से हटाने का काम कर रही है, वरन् विभिन्न धर्मो के अनुयायिओं के बीच दूरियाँ बढ़ाकर वोटों की खेती करने में लगी हैं। यही नहीं, इनका सबसे नकारात्मक पहलू यह है कि आपको सिर्फ आँख बंद करना सिखाया जाता है। आज के वैज्ञानिक युग में भी धार्मिक विश्वासों को चुनौती देने वाले टी.वी. चैनलों, पत्र-पत्रिकाओं की कल्पना नहीं की जा सकती।

आज जब इतिहास और विज्ञान की नई-नई अवधारणाएँ विकसित हो रही हैं, तो ऐसे में धर्मों की सैकड़ों साल पुरानी मान्यताओं को बिना तर्क की कसौटी पर कसे सिर्फ आस्था के नाम पर इक्कीसवीं सदी में भी ढोते जाना किसी भी तरह तर्कसंगत नहीं है आज देश की जनता सिर्फ विकास और खुशहाली चाहती है और धर्म के नाम पर राजनीतिक दुरुपयोग को स्वीकार नहीं करती। यही कारण है कि जनता धर्म के नाम पर उग्रवाद को कभी पसंद नहीं करती चाहे गुजरात का दंगा हो या अयोध्या का धार्मिक संकीर्णता का राजनीतिक लाभ उठाने का प्रयास आखिर कहाँ परवान चढ़ रहा है। मौलिक चिंतन की अनुपस्थिति और बड़े सामाजिक आंदोलन के न होने के पीछे यही धर्म-प्रभावित संस्कृति है जो भाग्य-भगवान अवतारों में लौ लगाने और भौतिकता से घृण करना सिखाती है- 'जो जहाँ है, वहीं उसका धर्म है, उसी का पालन श्रेयस्कर है और संतोष धन पाने पर सबधन धूरि-समान होता है, का उपदेश ही एक विशाल वर्ग की बौद्धिक खुराक रही है। यही कारण है कि बच्चा पैदा होने के बाद जैसे-जैसे वह बड़ा होता है उसकी धरती और आसमान छोटा होता जाता है और वह धर्मांधता की आग में झुलस जाता है। क्या कोई बता पाएगा कि गंगा का जल जब कोई भरता है, तो इससे वह 'वजू' करेगा या शिव मंदिर में जाकर शिव पर चढ़ाएगा? इसी प्रकार किसान जब अपने खेतों में फसल उपजाता है तो वह यह नहीं जानता कि उसे हिंदू खाएँगे या मुसलमान, सिख खाएँगे या ईसाई। इसलिए आज लोग धर्म के लिए नहीं, दिन-रात दो रोटी के लिए बेहाल हैं। रामलला का मंदिर तो पीढ़ियों से हर एक के दिल में है ही।

इसीलिए हमने धर्म की अपेक्षा कर्म की प्रधानता को स्वीकारा है। समाज व देश का कल्याण तभी संभव है जब मानवता को ही धर्म मानकर अपना कर्म करें।

(५०)प्रश्नः क्या आप ऐसा मानते हैं कि धर्म तो आज सारी बुराईयों को ढँकने और झूठ को पालने का साधन बन गया है? कबतक चलेगा ऐसा धर्म?

उत्तरः निःसंदेह आज धर्म की तेजस्विता और उसकी शक्ति क्षीण हो गई है और यह एक मान्यता-सा हो गया है। सैकड़ों साल से धर्म चल रहा है मगर जीवन में कोई परिवर्तन नहीं दिखता। लोगों का न तो गुस्सा कम हुआ न आदत बदली और न संस्कार बदला। नशे की आदत और बढ़ती जा रही है। काम वासना में न तो कोई बदलाव आया और न ही मन की चंचलता कम हुई। मसलन आज धर्म सारी बुराईयों को ढकने और झूठ को पालने का साधन बन गया है। इस तरह धर्म नहीं चल सकता। यदि धर्म को जारी रखना है तो इसके साथ प्रयोग जोड़ने की जरूरत है। जैन धर्म के शिखर के आध्यात्मिक पुरुष अचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा कि यदि धर्म के साथ प्रयोग नहीं तो धर्म निर्जीव हो जाएगा।

प्रायः सारे धार्मिक संतों ने एक ही घूंटी पी रखी है कि धर्म से परलोक सुधरता है। जबतक धर्म के साथ यह अवैज्ञानिक दृष्टि जुड़ी रहेगी, कोरी मान्यता और अंधकार में धर्म चलता रहेगा।

(५१)प्रश्नः पौराणिक कथाओं में शायद राम की कथा देश के स्तर पर सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। बाल्मीकि की 'रामायण' हो या तुलसीदास रचित 'रामचरित मानस'-इन रचनाओं में राम के किस पक्ष के कारण रामकथा की लोकप्रियता है?

उत्तरः भाई अखिलेश जी, आपके इस कथन से हम पूर्णतः सहमत हैं कि पौराणिक कथाओं में राम की कथा देश के स्तर पर सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। बाल्मीकि की 'रामायण' हो या तुलसीदासकृत रामचरितमानस या हो फिर दक्षिण के संत कवि त्यागराज की 'रामायण' सबमें मर्यादा पुरुषोत्तम का जो अस्तित्व है, वह जनमानस को आदिकाल से झकझोरता रहा है, क्योंकि समाज के सामने राम के जो आदर्श हैं; वही लोगों को उनकी आस्था से जोड़ते हैं। उपर्युक्त सभी रचनाओं में राम के जिस पक्ष के कारण रामकथा की जो लोकप्रियता है, वह है आध्यात्मिक परिवेश में राम की स्थापना। इसीलिए उनके प्रति भक्ति का एक गहरा भाव है।

(५२)प्रश्नः स्वामी विवेकानंद के मतानुसार भारत का मेरुदंड न राजनीति है न सैन्यशक्ति और न व्यावसायिक आधिपत्य है न यांत्रिक शक्ति, वरन है धर्म। उनके अनुसार धर्म ही हमारा सर्वस्व है जिसको हमें रखना भी हैं आप इस पर क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर: डॉ. अमलेश वर्मा जी, यों तो आजादी के बाद देश के संचालन से लेकर हर क्षेत्र को राजनीति प्रभावित करती है जिसकी वजह से उसकी भूमिका अहम हो गई है, किंतु फिर भी राजनीति को भारत का मेरुदंड नहीं कहा जा सकता जैसा कि स्वामी विवेकानंद का मत है।

जहाँ तक धर्म का सवाल है, इसका प्रयोग विभिन्न राष्ट्रों के विभिन्न प्रयोजन परिवेश में वह बदलाता रहता है। जैसे मौजूदा दौर में इस देश की राजनीति की चेरी बनकर रह गया है धर्म। मैं आमूलचूल परिवर्तन का पक्षकार हूँ और उन प्राचीन संस्कारों को दूर हटाकर नवीन रूप से प्रारंभ करना चाहता हूँ। इस दृष्टि से धर्म को प्रजातांत्रिक रूप देने का मैं हिमायती हूँ। जैसे जर्मन में लूथर और फ्रांस में कॉल्विन ने अपने-अपने देश में तीक्ष्णबुद्धि के बाद सुधारवाद के बुर्जुवा चरित्र को उजागर किए और उन्होंने धर्म को प्रजातांत्रिक रूप देने में सफल हुए। यही काल्विनी सुधारवाद जेनेवा, हालैण्ड और स्कॉटलैंड में प्रजातंत्रवादियों की पताका बन गया तथा हालैण्ड को स्पेन से और जर्मन राज्य से मुक्त कराया। इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म जब अस्तित्व में आ जाता है, तो उसमें परंपरागत तत्व हमेशा निहित रहता है, पर इस तत्व में होने वाले रूपांतर वर्ग संबंधों में उद्‌भूत होते हैं।

(५३)प्रश्न: क्या राहुल गाँधी का 'मंदिर प्रेम' कहीं अपने परनाना नेहरू के हिंदू विरोधी कृत्यों के लिए किया जाने वाला 'प्रायश्चित कर्म' तो नहीं है?

उत्तर: हाँ, गुजरात एवं हिमाचल प्रदेश के विधान सभा चुनाव 2017 के वक्त राहुल गाँधी के 'चुनाव स्वांग' के प्रति आपकी यह आशंका व्यक्त करना उचित ही है कि उनका यह 'मंदिर प्रेम' अपने परनाना नेहरू के हिंदू विरोधी कृत्यों के लिए किया जाने वाला 'प्रायश्चित कर्म' ही है, लेकिन मुझे लगता है कि नियति ने बाबरी ढाँचा ध्वंस के पश्चात् राममंदिर निर्माण और उसके बाद में राम सेतु विवाद के वक्त नेहरूवादी काँग्रेस को अपनी छद्म सेक्युलर छवि से बाहर निकलकर इस देश की आध्यात्मिक चेतना से एकाकार होने का अवसर दिया था, पर उस समय सत्तामोह में लिप्त काँग्रेस ने अल्पसंख्यक तुष्टीकरण को अपना राजनीतिक अस्त्र बनाकर वामपंथी मित्रों के सहयोग से इस देश की गरिमामयी संस्कृति और इतिहास के साथ खिलवाड़ करके हिंदू मान बिंदूओं का मान-मर्दन करने में ही अपनी भलाई समझी।

भारत की सांस्कृतिक चेतना में समाहित राम और कृष्ण की

काल्पनिक पात्र बताकर निर्दयी औरंगजेब को 'जिंदा पीर' घोषित करना इस देश में इसका एक उदाहरण है। ऐसे में अब काँग्रेस के सरताज राहुल गाँधी का पवित्र सोमनाथ मंदिर में जाना उनका चुनावी स्वांग माना जाए या उस अपराध का 'प्रायश्चित कर्म' जो उनके पूर्वज नेहरू द्वारा अपना छद्म सेक्युलर छवि बचाने के फेर में सोमनाथ मंदिर के पुनरूद्धार का विरोध करके किया गया था।

(५४)प्रश्नः भारत जैसे लोकतांत्रिक और धर्म निरपेक्ष देश में किसी नेता के धर्म को लेकर क्यों सवाल किए जाएँ?

उत्तरः मुझे भी यह कुछ अजीब-सा लगता है कि भारत जैसे लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष देश में किसी नेता के धर्म को लेकर सवाल किए जा रहे हैं। एक तरफ तो जिस भारत को हम दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र कहते नहीं अघाते, वहीं दूसरी तरफ लोकतांत्रिक एवं धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को ताक पर रखने से गुरेज भी नहीं करते।

भारतीय राजनीति में और खासतौर पर 2017 में गुजरात विधान सभा चुनाव के पूर्व जिस ढंग से राहुल गाँधी को सच्चा हिंदू ही नहीं, धर्म परायण हिंदू साबित करने के लिए काँग्रेस के प्रवक्ता रणदीप सुरजेवाला ने उनकी जनेऊ पहने और पिता राजीव गाँधी की अस्थियाँ चुनती तस्वीर को देश के सामने रखी, तो ज्यादातर लोगों ने उसे आश्चर्य से देखा, क्योंकि काँग्रेस की राजनीति में इसके बिल्कुल विपरीत छवि थी। काँग्रेस की छवि एक धर्मनिरपेक्ष पार्टी की थी जो अपनी सोच में अल्पसंख्यकों यानी मुसलमानों को प्राथमिकता देती है।

मुझे लगता है कि काँग्रेस ने जानबूझकर ऐसी छवि बनाई थी। आपको याद होगा भारत के पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कुछ अरसे पहले एक वक्तव्य में कहा था कि देश के संसाधन पर मुसलमानों का पहला अधिकार है। ऐसा कहकर उन्होंने काँग्रेस की सोच को ही अभिव्यक्त किया था, मगर 2017 के गुजरात विधानसभा चुनाव के वक्त काँग्रेस के कई नेता अपने को भाजपा से ज्यादा हिंदू धर्म का निष्ठावान साबित करने पर तुले। कपिल सिब्बल ने तो यहाँ तक कह दिया कि भाजपा तो हिंदुत्व की बात करती है, असली हिंदू तो हम लोग ही हैं। स्वयं राहुल गाँधी ने कहा कि वे शिवभक्त परिवार से आते हैं। गुजरात चुनाव के दौरान उन्होंने 22 मंदिरों की यात्रा कर चुके थे, जिसमें सोमनाथ मंदिर भी शामिल था। यहीं के मंदिर के उस रजिस्टर में उनका नाम दर्ज हो गया जो गैर हिंदुओं के लिए है।

भाजपा ने तुरंत मंदिर जाने के इस मामले को बड़ा मुद्दा बना दिया जिसकी आवश्यकता मेरे ख्याल से इसलिए नहीं थी, क्योंकि धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक भारत जैसे देश के लोग किसी भी धर्म को मानने के लिए स्वतंत्र हैं और भारतीय संविधान में इस आशय का प्रावधान भी है। और फिर नेहरू-इंदिरा गाँधी परिवार में तो इंदिरा जी की शादी एक पारसी परिवार में हुई थी, वहीं उनके पुत्र राजीव गाँधी की शादी इटली के संभवतः ईसाई परिवार की सोनिया जी से हुई थी। फिर धर्म का सवाल उठाना तो भारत जैसे लोकतांत्रिक एवं धर्मनिरपेक्ष देश में गैर वाजिब था। दरअसल, सियासत वह भी चुनाव के वक्त जो न करा दे! धर्म के नाम पर राजनीति बंद हो।

(५५)प्रश्नः अयोध्या में विवादित ढाँचा को ढहाने के बाद इस घटना ने देश की राजनीतिक और सामाजिक ताने-बाने को बुरी तरह झकझोर दिया था, लेकिन अयोध्या में हमेशा की तरह सौहार्द कायम है। तब फिर इस विवादित ढाँचा पर इतना हाय-तौबा क्यों? इस पर विस्तार से अपनी प्रतिक्रिया से कृपया आप हमें अवगत कराएँ।

उत्तरः अयोध्या से बाहर इस नगरी की पहचान रामजन्म भूमि और बाबरी मस्जिद विवाद से होती है, लेकिन अयोध्या के पास इन दोनों के इतर और भी बहुत कुछ कहने को हैं। विवादित ढाँचा गिरे 25 बरस बीत गए। आपको याद होगा विगत छह दिसम्बर, 1992 को घटी इस घटना के बाद भले ही इसके लिए बढ़े सुरक्षा इंतजामों से लोग परेशान हों, लेकिन वहाँ के लोग साथ-साथ हैं। बाबरी मस्जिद को लेकर भले ही दूसरे शहरों में तनाव रहा हो, लेकिन अयोध्या की जैसी बुनावट है कि यहाँ दोनों समुदायों में कभी कोई तनाव नहीं रहा। विवादों की वजह से अयोध्या नगरी की सूरत तो बदली, लेकिन इसका मिजाज नहीं बदला है।

आपको मैं यह जानकारी दे दूँ कि अयोध्या ख्याति में भले ही हिंदू तीर्थ है, लेकिन मंदिरों में हर जाति के महंत हैं, तो सड़कों पर हर धर्म के दुकानदार। अयोध्या के हनुमानगढ़ी में चूड़ी बेचने वाले यूसुफ मियां का कहना है कि अयोध्या उनकी जन्मभूमि है, यहीं वे पैदा हुए, यहीं बड़े हुए, यहीं पर रोजी-रोटी चलती है। उन्हें तो आज तक कोई परेशानी नहीं हुई है। उन्हें नहीं पता कि यह हिंदू मुसलमान का झगड़ा किसने पैदा किया। यह करने वाले अयोध्या के लोग नहीं हैं। अयोध्या हमेशा शांत थी और रहेगी।

दरअसल, यूसुफ मियां के कथन को मैं इसलिए शत-प्रतिशत सही मानता हूँ, क्योंकि अयोध्या में 25 साल बाद आज भी सामाजिक ताना-बाना

पहले से ज्यादा मजबूत है। यूसुफ मियां की तरह सरयू तट पर बसा लक्ष्मण घाट–गोला घाट के मध्य स्थित सैयद मोहल्ला जहाँ दर्जनों मुस्लिम परिवार सुकून के साथ रहते हैं और सीताराम–सीता–राम की धुन के साथ जहाँ उनका रात्रि विश्राम होता है, वहीं इस क्षेत्र के साधु–संतों की नींद अजान के साथ टूटती है। अयोध्या में सभी से भाईचारा कायम है। शाही इब्राहिम की मजार पर चादर चढ़ाने वालों में हिंदू–मुस्लिम दोनों ही परिवारों के लोग शामिल होते हैं। कभी आपस में किसी प्रकार की दिक्कत नहीं रही। संतों–महंतों की खड़ाऊँ–वंचट्टियाँ मुस्लिम परिवारों की रोजी–रोटी के साधन हैं।

छह दिसम्बर, 1992 से लेकर छह दिसम्बर 2017 तक में देश का राजनीतिक इतिहास बदल गया है। इस दौरान राजनीति के जातिवादी व धार्मिक ध्रुवीकरण ने न केवल सत्तापीठों को बदला, बल्कि सत्ता के चरित्र को भी प्रभावित किया है। बारह साल तक गुजरात के मुख्यमंत्री के रूप में विकास की नई राजनीति खड़ी कर नरेन्द्र मोदी अब प्रधानमंत्री की गद्दी पर दिल्ली पहुँचे और घपले–घोटालों में घिरी काँग्रेस सरकार के लिए मोदी के विकास ऐजेंडे को चुनौती दे पाना संभव नहीं हो पाया और उसके बाद मोदी ने इतिहास रचा जिसे राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ और जनसंघ के पुरोधाओं ने सपने में भी नहीं सोचा था। मोदी के राष्ट्रीय अविर्भाव के साथ काँग्रेस अपने न्यूनतम स्तर पर चली गई तथा अन्य विपक्षी पार्टियाँ भी केवल विरोध के लिए विरोध करती दिखाई दे रहीं हैं। ऐसी स्थिति में यह समझना आसान है कि अयोध्या में राममंदिर और बाबरी मस्जिद विवाद के पीछे किनका हाथ हो सकता है। दूसरी ओर इस देश के आमजन को भी इस विवाद से कुछ लेना–देना नहीं है। तब ले–देकर यह विवाद सियासत करने वालों का ही खेल समझा जाना चाहिए। सियासत करने वालों में सत्तापक्ष और प्रतिपक्ष दोनों के राजनीतिक दल और उसके नेता शामिल हैं जिन्हें केवल वही राजनीति करनी है।

सुप्रीम कोर्ट ने अयोध्या में राम जन्मभूमि–बाबरी मस्जिद विवादित ढाँचा गिराए जाने के 25 वर्ष पूरे से एक दिन पहले यानी 5 दिसम्बर, 2017 को रामजन्म भूमि बाबरी मस्जिद विवाद पर अंतिम सुनवाई शुरू की, जिसे 8 फरवरी, 2018 तक के लिए टाल दिया गया है।

दरअसल, छह दिसंबर, 1992 को बाबरी मस्जिद गिराए जाने के 10 दिन बाद यानी 16 दिसम्बर, 1992 को तत्कालीन प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंह राव की सरकार ने लिब्रहान आयोग का गठन किया था। आयोग का

कार्य अयोध्या में विवादित ढाँचे को ढाहने की जिम्मेदार स्थितियों की जाँच-पड़ताल करना था। इसका अध्यक्ष भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश मनमोहन सिंह लिब्रहान को बनाया गया था। आयोग को अपनी रिपोर्ट तीन महीने के भीतर पेश करनी थीं, लेकिन आयोग को इसमें 17 साल लग गए। वर्ष 2009 में आयोग ने अपनी रिपोर्ट तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह को सौंप दी।

सच तो यह है कि दोनों पक्ष सम्पूर्ण जमीन पर अपना हक चाहते हैं। हालांकि बेहतर यह होता कि इस मामले का निबटारा हिंदू और मुसलमानों के बीच आपसी बातचीत से हो जाता, लेकिन ऐसा नहीं हुआ और इससे संबंधित जो प्रयास हुए उनका कोई परिणाम निकला ही नहीं। ऐसे में उच्चतम न्यायालय के अंतिम फैसले की प्रतीक्षा करनी चाहिए और उसे स्वीकार कर विवाद का स्थायी रूप से अंत कर दिया जाए।

अध्याय: चतुर्थ
वैचारिक

(१)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि आज हम विचारशून्यता की स्थिति से गुजरते हुए उस दौर में हैं जहाँ हमारे परिवर्तन को परिभाषित करने वाले विचारों का भीषण अकाल है?

उत्तर : हाँ, मैं महसूस करता हूँ कि आज हम विचारशून्यता की स्थिति से गुजरते हुए उस दौर में हैं जहाँ हमारे परिवर्तन को परिभाषित करने वाले विचारों का भीषण अकाल है। दरअसल, जब चिंतक-विचारकों की कमी हो जाती है, तब छद्मवेशियों की पौ-बारह हो जाती है। आधुनिक समय के श्रेष्ठतम विचारक, चिंतक और दृष्टा माने जाने वाले गाँधी आज हमारे बीच नहीं है। समाजवादी विचारक लोहिया के गुजर जाने के बाद उनके चेले समाजवादी विचारधारा को लगभग छोड़ चुके हैं अथवा उस धारा से विचलित हो सत्ता पर ऐन-केन-प्रकारेण विराजमान होने की जुगाड़ लगा रहे हैं। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के भ्रष्टाचार से मुक्त होने के संपूर्ण क्रांति विचार को उनके शिष्यों ने तिलांजली दे रखी है। स्वाभाविक है इन विचारों के अभाव में विचारशून्यता का होना। वामपंथी विचारधारा के पराभव और उससे मोहभंग के पश्चात् वैचारिक अराजकता का दौर चला है। सच कहा जाए तो आयातित विचार कभी भी परिवर्तन अथवा क्रांतियों के वाहक नहीं बनते। आपने देखा नहीं माओवादी वैचारिक प्रतिबद्धता आज हिंसा की राह पर चल पड़ी है जिसके परिणामस्वरूप माओवाद का नाम देकर इसके भारतीय क्रांति बनने की संभावनाओं पर स्थायी विराम लगा दिया गया। हमारे देश में आज ऐसे भी वर्ग सशक्त हो रहे हैं जो विखंडित भारत के सपने देखते हैं जबकि आज इस देश को जरूरत है चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त तथा इशफाक अमानुल्ला जैसे क्रांतिधर्मी चरित्रों के सांचे में ढली अगली पीढ़ियों की, जो परिवर्तन की बेचैनी बड़ी शिद्दत से महसूस कर सकें।

(२)प्रश्न: क्या इस समय देश को वैचारिक प्रदूषण का दंश नहीं झेलना पड़ रहा है?

उत्तर : हाँ, इस समय देश को अलग प्रकार के वैचारिक प्रदूषण का दंश झेलना पड़ रहा है। दरअसल, यह प्रदूषण संसद में बैठे कुछ जनप्रतिनिधियों के अशोभनीय रवैए की वजह से फैल रहा है। यह चिंतनीय है कि जनता

का कितना सारा पैसा इनके वैचारिक प्रदूषण के कारण बर्बाद हो रहा है। उन्हें समझना चाहिए कि संसद की एक दिन की कार्यवाही पर करोड़ों रुपए खर्च होता है। सत्तापक्ष और विपक्ष के विचारों में जो कटुता आई है, उसका खामियाजा संसद को उठाना पड़ रहा है। संसद देश की सर्वोच्च संवैधानिक संस्था है जिससे सदस्यों से उम्मीद की जाती है कि वे एकजुट होकर देश के विकास के बारे में सोंचेगे, बहस करेंगे और जरूरी कानून बनाएँगे, लेकिन वहाँ कुछ सांसद हो-हल्ला मचाते हैं जिससे देश को नुकसान हो रहा है। संसद में भ्रष्टाचार पर जो हल्ला हो रहा है वह सिर्फ अपने कदाचार, नाकाबिलियत को छिपाने के लिए। यह कितना बड़ा अपराध है। आजादी के बाद से अबतक सैकड़ों घोटाले हुए हैं, लेकिन शायद ही घोटालेबाजों को सजा मिल पाई है। व्यवस्था ही ऐसी है कि पूरा तंत्र सत्ता और पूँजी के खेल में ऐसा उलझा हुआ है कि उसे देश की कोई फिक्र ही नहीं है।

(३)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि कामयाबियों के बाद भी लोगों के जीवन में इतना दुख क्यों है?

उत्तर : मौजूदा दौर के जीवन में हर कोई सफलता के लिए अधीर है। हमें यही लगता है कि कामयाबी, धन-दौलत और मान-सम्मान से खुशी मिलेगी, लेकिन जरा सोचिए कि क्या ऐसा वास्तव में है? नहीं, कतई नहीं। जीवन के सागर में हमारा अंतर्मन दिशा दिखाने वाला कम्पास है। वही हमें सच्ची खुशी और शांति प्रदान कर सकता है, किंतु बचपने से हम सीख लेते हैं कि दुनिया जिस तरह चल रही है वही सही है। इस भेड़चाल में चलते-चलते हम भीतर की आवाज को दबा देते हैं। नतीजतन सब कुछ हासिल करने के बाद भी हम दुखी रहते हैं।

दरअसल, हम इस भ्रमजाल में जीते रहे हैं कि एक दिन ऐसा आएगा, जब हमारे पास इतना वैभव होगा, जिससे हमें अपार आनंद मिलेगा, सारे दुख दूर हो जाएँगे। सच तो यह है कि हमारे अंतर्मन की आवाज ही हमें सच्ची खुशी और शांति प्रदान कर सकती है, लेकिन हम इस आवाज को सुन नहीं पाते, क्योंकि हमने झूठ और दिखावे की जिंदगी की आदत बना डाली है, पर इंसान अगर डटा रहे तो इसी सच में उसके पूर्ण विकास का रहस्य है। राजकुमार सिद्धार्थ शायद अपना जीवन मोहमाया में ही गंवा देते अगर वे अंतर्मन की आवाज न सुनते, मगर अंतर्मन की आवाज सुनने के बाद ही एक साधारण राजकुमार गौतम बुद्ध बन गया।

(४)प्रश्नः इस देश की समस्त समस्याओं के मद्देनजर क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि यहाँ वैचारिक क्रांति की लौ लगायी जाए?

उत्तरः हाँ, इस देश में आज जितनी समस्याओं की चुनौतियाँ बनकर हमारे सामने खड़ी हैं उनका सामना करने के लिए यहाँ के लोगों में वैचारिक क्रांति की ज्योति जलाई जाए और अवांछनीयता के विरूद्ध संघर्ष खड़ा किया जाए। मैं भी महसूस करता हूँ कि यहाँ के लोगों में मानवीय गरिमा के अनुरूप मर्यादाओं का पालन करने के साथ-साथ वर्जनाओं का अनुशासन अपनाने के लिए हर किसी को बाधित किया जाए। इसके लिए हमें व्यापक विचार क्रांति की तैयारी करनी होगी और समझदारों के सिर पर चढ़ी हुई नासमझी का उन्माद उतारना होगा। आज जरूरत इस बात की है कि लोहा से लोहा काटने की और कांटा से कांटा निकालने की नीति अपनानी होगी। सद्विचारों का इतना उत्पादन और वितरण करना पड़ेगा कि शोक, संताप कहीं ढूढें भी न मिलें।

इस देश की सवा सौ करोड़ लोगों की ब्रेनवाशिंग के लिए उनमें अवांछनीयता की गर्दन काटने के साथ-साथ मानवीय गौरव के अनुरूप उदारता से भरी-पूरी विवेकशीलता की स्थापना के लिए प्रयास करना होगा। एकता और समता की छत्रछाया में आने के लिए हर किसी को आमंत्रित ही नहीं, बल्कि बाधित भी किया जाना है।

अब सवाल उठता है कि इन सभी कार्यो को क्रियान्वित करने का पहल कौन करे, बिल्ली के गले में कौन घंटी बाँधे? इसका शुभारम्भ कैसे और कहाँ से किया जाए? कौन लोगों में प्राण फूँके और कौन उन्हें जुझारू संकल्पों से ओत-प्रोत करे? इसके उत्तर के लिए जब मैं चारो ओर अपनी दृष्टि डालता हूँ, तो मुझे यही उपाय सूझता है कि इसका प्रारंभ खुद के घर से किया जाए और पहले अपने घर में ज्योति जलायी जाय जैसे राजा दशरथ ने विश्वमित्र की याचना पर अपने ही पुत्र सुपुर्द किए थे, गुरुगोविंद सिंह के पाँचों पुत्र अग्रगामी बने थे और हरिश्चंद्र ने स्वयं ही गुरु की आवश्यकता पूरी की थी। इस परंपरा को आज भी जीवित किए जाने की आवश्यकता है। अपना उदाहरण प्रस्तुत करके ही दूसरों को आदर्शवादिता अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। सच तो यह है कि आम आदमी के रूप में राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में हम उतना सजग-सहायक नहीं हैं जितनी अपेक्षा हमसे की जाती है। ऐसी स्थिति में, मानवीय समाज में, यथास्थिति तोड़ने के लिए, जनशक्ति को निरंतर आक्रामक प्रहार करने की

जरूरत है। तभी अभिनव सभ्य समाज का रूप प्रत्यक्ष होगा। ऐसे परिवर्तन के लिए श्रमशील जन को लोकमांगलिक संगठन से जुड़ना अनिवार्य है।

(५)प्रश्नः नकारात्मक विचारों पर कैसे काबू पाया जा सकता है?

उत्तरः अपने भीतर का नकारात्मक विंचार और सोच खुद का सबसे ताकतवर शत्रु है, क्योंकि यह हमारे पेशेवर और व्यक्तिगत जिंदगी-दोनों को तबाह कर देता है। ऐसे में यह जरूरी है कि इसकी पहचान की जाए और समय रहते इस पर काबू पाया जाए।

अपने दिमाग के भीतर आने वाले नकारात्मक विचारों पर विजय पाने के लिए सबसे जरूरी है कि आप अपने आपको ठीक उसी तरह से सुने, जैसे आपकी बात को कोई दूसरा सुनता है। अगर आपकी अपने आपसे बातचीत सकारात्मक है, तो यह आपके विचारों और क्रियाओं में भी दिखने लगेगा। अपने आपसे नकारात्मक विचार या बातचीत आपका आत्मविश्वास कम कर सकता है, इसलिए जब भी आप अपने को ध्यान से सुन रहे होते हैं तो इस बात का ध्यान रखें कि अपने सकारात्मक विचारों को ही सुनें। इस दौरान नकारात्मक विचारों से खुद को दूर रखने का सबसे आसान तरीका है कि आप इस बात का ध्यान रखें कि आपको भी कोई सुन रहा है। इसे ध्यान में रखकर जब आप अपने आपसे बात करने लगेंगे तब सिर्फ सकारात्मक बातें ही करेंगे।

जब आप अपने आपसे बात कर रहे होते हैं तो उस समय ठीक उसी तरह से सतर्क रहने की जरूरत है जैसे आप दूसरों से बात करने के क्रम में सतर्क रहते हैं। अपने आपसे कुछ बोलने से पहले उस पर सोचें। जरूरत पड़ने पर एक से अधिक बार सोचें। कई बार एक ही बात को बोलने के पहले एक से अधिक बार सोचने पर कई तरह की समस्याओं का समाधान निकल जाता है। समय के साथ आप जब इसमें पारंगत हो जाएँगे, तो उसका सकारात्मक प्रभाव आपके पूरे व्यक्तित्व में दिखने लगेगा। नकारात्मक सोच क्रोधरूपी अग्नि में घी का काम करता है।

जब आप अपने आपका जरूरत से ज्यादा कड़ा इम्तिहान लेने लगते हैं, तब आपके भीतर का उत्साह कम होने लगता है। कई बार अपने आपके बारे में आपका मूल्याँकन गलत होता है। लेकिन इसका परिणाम यह होता है कि आपके अंदर नकारात्मक विचार अपनी पैठ जमाने लगते हैं। इसलिए इससे बचने के लिए आप नकारात्मक विचारों पर अंकुश लगाएँ तथा आप अपने बारे में दूसरों के विचारों को सुनें भी।

दुनिया में कोई भी परफेक्ट नहीं है। इस बात को आप जितनी जल्द स्वीकार कर लेंगे, उतना ही आपके लिए अच्छा होगा। आप जान लें कि हर आदमी का मजबूत पक्ष के साथ-साथ कमजोर पक्ष भी होता है। इसके मद्देनजर आप अपने मजबूत पक्ष की ओर ही ज्यादा ध्यान दें, ताकि आपमें उत्साह की कमी नहीं होगी। सफलता की सीढ़ियाँ आपकी कदम चूमेंगी।

'ओवर थिंकिंग' से बचें, क्योंकि बहुत सारी चीजों के बारे में सोचने से आप बहुत व्यस्त हो जाएँगे। इस तरह की परिस्थिति से निकलने के लिए तुरंत किसी वैसी दूसरी चीज की तरफ लगें जिसमें आपका मन लगता हो। इससे आपको सही और गलत में फर्क करने में मदद मिलेगी, जो नकारात्मक विचारों से आपको दूर करेगी। सकारात्मक विचार ही सफलता की सीढ़ी है।

(६)प्रश्नः क्या मौजूदा स्थिति को देखते हुए आपको ऐसा लगता है कि इससे मुक्ति के लिए फिर एक वैचारिक संग्राम की जरूरत देश की चेतना को पुकार रही है?

उत्तरः हमने 1947 के 15 अगस्त को जिस भारत को अँग्रेजों के चँगुल से छुड़ाया था, वह दो सौ सालों की मानसिक जद्दोजहद का नतीजा तो था ही, साथ ही असंख्य बलिदानों और अनाम रह गए असंख्य लोगों एवं उनके कामों का परिणाम भी था। पर वह भारत अपनी गरीबी में भी और कमजोरी में भी गुजरे इतिहास की एक सशक्त विरासत था, मगर हमारे सामने आज जो भारत है अपने सारे विकास और समृद्धि के बावजूद, अपने भविष्य के लिए डरता हुआ दिखाई देता है।

आज से 41 साल पहले भी सन् 1975 में इस देश में लगाए गए आपातकाल के खिलाफ पहले बिहार से और फिर गुजरात के बाद देश की पूरी जनता लोकतंत्र के लिए लोकनायक जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में आंदोलन में शरीक हुई थी, मगर वह भी सिर्फ चुनाव, वोट और सत्ता में परिवर्तन का एक तरीका भर था, क्योंकि चुनावी सुधारों के जरिए लोकतंत्र तक पहुँचाने वाली चुनावी मशीन तो सुधरती गई, पर देश में लोकतंत्र का स्वास्थ्य बिगड़ता गया। दशकों के बाद केंद्र में एक राजनीतिक पार्टी की सरकार तो बन गई, पर विपक्षी दलों एवं उसके नेता अब निहित स्वार्थो के चलते सत्ता पाने के लिए सिद्धांतों एवं विचारों को तिलांजलि देते दिखाई दे रहे हैं। जे.पी. के सारे शिष्य देश से बड़ा अपने दल को और दल से बड़ा

अपने आप को स्थापित करने के प्रयास में अग्रसर हैं और लोक को पीछे छोड़कर परिवारवाद और वंशवाद के घेरे में घिर गए हैं। लोक पर सत्ता भारी है और सत्ता पहले निहित स्वार्थो की थी अब निहित स्वार्थो के साथ निहित विचारों की भी है।

दरअसल, हमारी भूल यह हुई कि हमने न तो लोकतंत्र को अपने समाज और संस्थानों में मजबूत किया और ना ही हम अपने व्यवहार और आचरण में उसे उतार पाए। इसी का दुष्परिणाम है कि हम इस देश के लोग और हमारे नेता अपने भीतर इस राष्ट्र के विखंडन का बीज भरते हुए इसकी एकता और अखंडता को खंडित करने पर आमादा हैं। साथ ही भारत के इतिहास और संस्कृति को, उसके मूल्यों और विश्वासों को, उसके स्वरूप और ढाँचे को, उसके लक्ष्यों और बुनावट को धीरे-धीरे खोते जा रहे हैं, जिसे फिर से प्राप्त करना होगा। इसके लिए फिर एक वैचारिक संग्राम की जरूरत देश की चेतना को पुकार रही है।

यह कहने की जरूरत नहीं कि अपनी भारतीय संस्कृति की जड़ों के प्रति और मानव मूल्यों के प्रति एक जुड़ाव आज फिर हम महसूस कर रहे हैं, क्योंकि उसने पूरी शिद्दत के साथ डांवाडोल भारतीय मन को उकेरा है जो दूसरी संस्कृति से जुड़ता है, लेकिन जीवन भर न तो अपने भीतर दबी भारतीय संस्कारों की मिट्टी को झाड़ पाता है और न ही नई संस्कृति को पूरी तरह आत्मसात कर पाता है। फिर राजनीति के गिरते स्तर के परिणामस्वरूप समाज के लोगों में भी कुप्रवृत्तियाँ तेजी से पनपती जा रही हैं जिसके लिए भी वैचारिक संग्राम की जरूरत है।

(७)प्रश्न : यह संसार किस दिशा में और कैसे बदल सकता है?

उत्तर : कोई चाहे या न चाहे अब यह संसार वही नहीं रह जाएगा और न ही उस मंद गति से बदलता रहेगा, जैसे वह पिछले सारे पुराने इतिहास में बदलते रहा था। अब यह बदलाव एक अति वेगवती तूफानी धारा है, किसी के रोके न रुकने वाली। हाँ, सिर्फ इतना किया जा सकता है कि कैसे इसकी दिशा सही हो और कैसे इसका लक्ष्य सही हो। 'दुनिया को कैसे बदले' नामक एक पुस्तक 20वीं सदी के सबसे बड़े इतिहासकार एरिक हॉब्सबाम की इस प्रसिद्ध पुस्तक में गुजरी दो सदियों के वैचारिक आत्ममंथन की रोशनी में यह देखने की कोशिश की गई है कि यह संसार किस दिशा में और कैसे बदल सकता है?

इंसान के हजारों साल के इतिहास में यह प्रश्न कभी नहीं था कि

दुनिया को कैसे बदलें। अधिकतम सवाल इस दुनिया को जीतने और इसे भोगने का होता था। दुनिया को बदलने का विचार एक नया विचार है जो पिछली कुछ सदियों में जन्मा, पनपा और बढ़ा। हालांकि अधिकांश मानवता के लिए दुनियां जीने के लिए है, बदलने के लिए नहीं। हाँ, यह बात अलग है कि इस जीने में भी दुनिया बदलती तो निरंतर ही है, पर परिवर्तन बड़ा हो, सर्वआयामी हो, सकारात्मक हो। यानी जीवन का ढंग ही बदल जाए। यह एक बड़ी परिकल्पना है। असंभव लगने वाली भी। पर संसार और जीवन तो उसी ओर जा रहा है। बल्कि हो यह रहा है कि हर गुजरते दशक के साथ परिवर्तन की रफ्तार बेतहाशा बढ़ती जा रही है। कभी-कभी तो सदियों जितनी दूरी दशकों में तय हो रही है। कुल मिलाकर संसार अब जिस मोड़ पर खड़ा है, वहाँ व्यक्तिगत हितों पर टिका परिवार और समाज तथा राष्ट्रीय हितों पर टिके वैश्वीकरण इतिहास के अपने सबसे बड़े खतरे के सामने है। यह विध्वंस का एक विराट परिदृश्य है जिसका निदान एकमात्र है कि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र समय की इस चुनौती को ठीक से जाने और अपने संकीर्ण विचारों और हितों के खोल से खुद को बाहर निकालने का भीषण संघर्ष करें। इस तरह दुनिया का बदलाव जीवन की गुणवत्ता को बढ़ा सकेगा, उसे बेहतर की ओर ले जा सकेगा।

(८)प्रश्नः क्या आज की यह विडंबना नहीं है कि वैचारिक ध्रुवीकरण ने समुदायों को दो छोरों पर खड़ा कर दिया है?

उत्तर : हाँ, आज हम एक ऐसे युग में जी रहे हैं जिसमें सच और झूठ की विभाजक रेखा समाप्त हो गयी है और समय दिशाहारा हो ठिठक गया है। इसी के परिणामस्वरूप सभ्यता के कितने ही बर्बर अवशेष एक बार फिर जी उठे हैं और समाज उसे अपने हिंसक आगोश में ले रखा है। यह हिंसा व्यवहार के साथ विचारों पर भी हावी हो गयी है जो एक खतरनाक संकेत है। वैचारिक कट्टरता, धर्मोन्माद, युद्धोन्माद, जातीय हिंसा, सत्ता द्वारा दमन आदि विविध रूपों में व्यक्त हो रही है।

वैचारिक मतभेद समाज में हमेशा से रहे हैं, रहने भी चाहिए, क्योंकि जहाँ एक विचारधारा के अलावा किसी दूसरे विचार के लिए जगह नहीं होती, वह एक जड़ समाज होता है। मगर आज की विडंबना यह है कि वैचारिक ध्रुवीकरण ने समुदायों को दो छोरों पर खड़ा कर दिया है। कभी मौन को विचार का आश्रय माना जाता था। आज हम इतना अधिक बोलने लगे हैं कि हमने सुनना बंद कर दिया है। दरअसल, अभिव्यक्ति के माध्यम

ज्ञान के स्रोत का भ्रम पैदा कर रहे हैं। इस भ्रम के कारण ही ज्ञान, विज्ञान और तर्क से रहित माध्यम उन्मादी हाथों में हथियार बन गए हैं। शाम के वक्त पटना के शहीद स्मारक के नजदीक एक ऐसे ही व्यक्ति से मुझे मुलाकात हो गयी जिसे पुस्तकों से कभी वास्ता नहीं रहा और मैं भ्रम में पड़ गया कि उसे भी तर्क करने की शक्ति है और ज्ञान से वास्ता है। फिर उससे मैंने पींड छुड़ाना ही लाजिमी समझा, क्योंकि पत्थर पर तो दूब जमता नहीं।

आज चारों ओर इसी अविद्या और मूढ़ता की वजह से कलह हो रहा है जो समाज और समुदाय के सर्वनाश का कारण है और जिसकी ओर लोग तेजी से बढ़ रहे हैं। समय का यह पक्ष अँधेरा है जिसे दूर करने के लिए ही हमने लेखन का सहारा लिया है, क्योंकि मेरा विश्वास है कि साहित्य ही इस अँधेरे का दीप बनेगा और आस्था की लौ को एक बार फिर प्रज्ज्वलित करेगा। आखिर तभी तो कहा गया है–

माना कि बहुत अँधेरा है, पर दीप जलाना क्यों छोड़े?

(९)प्रश्नः क्या भारतीय समाज में विचार स्वातंत्र्य रहा है?

उत्तर: हाँ, भारतीय समाज में विचार स्वातंत्र्य रहा है। हालांकि मेरा मानना है कि समुदायत्व को स्वीकार करके ही हम आगे बढ़ सकते हैं, यही मानव का उत्कृष्ट मूल्य है, परंतु स्वतंत्र वातावरण में ही व्यक्तित्व निखरता है, उसका विकास होता है वशर्ते कि अभिव्यक्ति की आजादी सीमा में रहे। यहाँ तो आज स्वतंत्रता का मतलब उच्छृंखलता और मर्यादाहीनता है। विकास और ज्ञान प्राप्त मानव सुसंस्कृत है और जो दूसरों की स्वतंत्रता का ख्याल रखता है, वह संयम रखता है। समाज में रहकर ही मानवोचित गुणों का विकास होता है। दया, भ्रातृत्व, प्रेम, सदाशयता आदि गुण समाज में रहकर ही प्रादुर्भूत होते हैं। समाज द्वारा ही मानव का विकास हुआ है। समाज में रहकर ही तरह–तरह के नियम मानने पड़ते हैं, अन्यथा समाज विश्रृंखल हो जाता है और किसी को भी विकास का अवसर नहीं मिलता है। अत: सबकी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए उचित मर्यादा को स्वीकार करना जरूरी है। मर्यादा को स्वीकार करके ही व्यक्तित्व का विकास संभव है। व्यक्ति को यह स्वीकार करना होगा। इसलिए यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी मर्यादा को समझे तो व्यक्ति और समष्टि में कोई झगड़ा का सवाल ही नहीं उठता। ज्यों–ज्यों समाज ऊँचे स्तर पर जाता है, त्यों–त्यों व्यक्तित्व के विकास की गहराई बढ़ती जाती है। एक कबीले के व्यक्ति और राष्ट्र के व्यक्ति की परस्पर तुलना करने से मालूम होगा कि राष्ट्र के विचार, अनुभव और कल्पना में

कितना आकाश-पाताल का अंतर हो गया है। धीरे-धीरे व्यक्तित्व समृद्ध होता है। अत: व्यक्ति और समष्टि के बीच सामंजस्य का होना जरूरी है।

यह बात ठीक है कि व्यक्ति पर परिस्थिति का प्रभाव पड़ता है, किंतु यह भी सच है कि व्यक्ति परिस्थिति को बदलता भी है। मानव और प्रकृति की एक-दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है। यदि व्यक्ति की स्वतंत्रता का लोप हो जाए और कानून, परंपरा और रूढ़ि द्वारा उसको स्वतंत्र रीति से सोचने और काम करने का अधिकार न दिया जाए, तो समाज की उन्नति का क्रम अवरूद्ध हो जाएगा।

(१०)प्रश्न: क्या बदले की भावना आत्मघाती होती है?

उत्तर: हाँ, बदले की भावना आत्मघाती होती है, क्योंकि बदले की भावना क्या कुछ नहीं करा देती है। जब भी बदले की भावना जन्म लेती है, तो सबसे पहले वह अपना विवेक खो बैठता है। जब व्यक्ति का विवेक ही जाएगा तो वह सही निर्णय कैसे ले पाएगा? जब व्यक्ति सही निर्णय ही नहीं ले पाएगा तो वह जो भी कार्य करेगा उसका परिणाम कुछ भी हो सकता है। वह दूसरे के लिए ही नहीं करने वाले के लिए भी घातक हो सकता है।

अगर दूसरे व्यक्ति ने गलत किया तो इसका ये अर्थ तो नहीं कि हम भी गलत करें। जब हम भी बदले की भावना से कोई कार्य करते हैं, तो हम गलत कार्य कर बैठते हैं। जब हम ऐसा करते हैं, तो हम वास्तव में दूसरे की सजा स्वयं को देने का कार्य ही करते हैं। बदला लेना तो दूर, बदला लेने की भावना मन में आते ही हमारे जीवन में संचित संपूर्ण सद्‌गुण व संस्कार एक ही झटके में नष्ट हो जाते हैं। हाँ, बदले की भावना बेशक हमारे न चाहने अथवा अज्ञानता से उत्पन्न हो गई हो या उसके लिए हम दोषी न भी हों तो भी उसका दुष्परिणाम तो हमें भुगतना ही पड़ेगा। जीवन में इस क्षेत्र में अत्यधिक सावधानी बरतने की जरूरत है। इसलिए किसी भी कीमत में बदले की भावना को अपने में हम पनपने नहीं दें। बदले का सीधा प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता है।

यदि हम अत्यधिक क्रोध के वशीभूत होकर कोई कदम उठाते हैं, तो सबसे पहले इसका सीधा प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर होता है। उच्च रक्तचाप तो स्वाभाविक-सी बात है। मस्तिष्काघात तक हो सकता है। इसलिए अत्यधिक क्रोध के वशीभूत होकर बदले की भावना से कोई काम करने से बचने का प्रयास करना चाहिए। धम्मपद में कहा गया है, 'न हि वैरेण, वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन:' अर्थात इस संसार में वैर से वैर कभी शांत नहीं होता।

यदि सचमुच बदला लेना है, तो जिससे आप आहत है उस व्यक्ति की उपेक्षा न करके सब कुछ भुलाकर सच्चे मन से उसकी आवभगत कीजिए, उसका सम्मान कीजिए। संभव है उसे अपनी गलती या किए की अहसास हो जाए और वो भविष्य में ऐसा न करें। यदि ऐसा नहीं भी होता, तो भी आप क्यों स्वयं को अपने स्तर से नीचे गिराने जैसा कदम उठाएँ? दूसरा व्यक्ति चोर, धूर्त, लफंगा, पाखंडी अथवा अहंकारी है, तो क्या बदला लेने के लिए हम भी चोर, धूर्त, पाखंडी अथवा अहंकारी बन जाएँ? कोई हमें धोखा न दे सके अथवा हमारा अहित न कर सके या हमें मानसिक क्लेश न पहुँचा सके इसके लिए सचेत व सतर्क रहें, बात संभलने में न आ रही हो, तो उससे किनारा कर लें, लेकिन सुशिक्षित, सुसभ्य व सुसंस्कृत व्यक्तियों का अपने आचरण से गिरना अथवा जैसे को तैसे वाला व्यवहार अपनाना श्रेयस्कर नहीं लगता।

(११)प्रश्नः समाज का मध्यवर्ग क्या किसी बड़े वैचारिक बदलाव का सूत्रधार है?

उत्तर : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो समाज के मध्यमवर्ग का संबंध एक बड़े वैचारिक बदलाव से है, क्योंकि माना जाता है कि विश्व में आधुनिकता का वाहक यही वर्ग रहा है। खासतौर पर भारत के इतिहास में, नव जागरण को तो इसी से जोड़कर देखा जाता है। इसी ने सामाजिक परिवर्तन किया और स्वतंत्रता आंदोलन की भूमिका तैयार की। मगर उदारीकरण के बाद फिर से एक नए मध्य वर्ग की अवधारणा सामने आयी है। यह आर्थिक परिवर्तन का वाहक तो है, पर सामाजिक बदलाव का वाहक है या नहीं, इसमें संदेह है। इस नए मध्यवर्ग की पहचान एक बड़े उपभोक्ता वर्ग के रूप में है। इसे विश्व अर्थव्यवस्था में काफी उम्मीद के साथ देखा जा रहा है। इसमें कोई दो राय नहीं कि हमारे देश में उदारीकरण के बाद अर्थव्यवस्था में जो गति आई है उसका सूत्रधार यह मध्यवर्ग है। इसने ही भारतीय अर्थव्यवस्था को एक नया मोड़ दिया है। इसने जी-तोड़ परिश्रम किया और भूमंडलीकरण के नए अवसरों का लाभ उठाते हुए सफलता की नई कहानियाँ लिखीं। जाहिर है इसका रहन-सहन बदला है और उपभोग के स्तर में वृद्धि हुई है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि मौजूदा दौर के विश्व बाजार में मध्य वर्ग एक आधुनिक उपभोक्ता है जिसको ध्यान में रखकर कई बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारत में कदम बढ़ाए हैं। इन कंपनियों को इसी मध्यवर्ग से न

सिर्फ नयी सूझबूझवाले साझीदार मिल रहे हैं, बल्कि उन्हें तेज-तर्रार प्रोफेशलों की एक बड़ी फौज भी मिली है। यह वह वर्ग है जिसने दुनिया के बदलावों को स्वीकार किया और अपने आपको एक विश्व नागरिक के रूप में ढालने में तनीक भी देर नहीं लगाई जबकि दुनिया के कई विकासशील देशों में यह मध्यवर्ग ऐसा नहीं कर सका। कारण कि एक ओर जहाँ विकासशील देशों के मध्यवर्ग भूमंडलीकरण को लेकर संशय में पड़े रहे, वहीं दूसरी ओर भारत के मध्यवर्ग भूमंडलीकरण को एक सत्य के रूप में स्वीकार किया और उसमें अपनी जगह की तलाश के लिए वह तत्पर हो गया। आखिर तभी तो दुनिया के कई विकसित देशों में बड़ी संख्या में भारतीय प्रोफेशनल्स काम कर रहे हैं। उनकी प्रतिभा का लोहा हर कोई मानता है। यह मध्य वर्ग की बड़ी कामयाबी है, लेकिन क्या यह किसी बड़े वैचारिक बदलाव का सूत्रधार है या नहीं इस सवाल का जवाब यदि सकारात्मक रूप में दिया जाए, तो कहना पड़ेगा कि यदि यह समाज को अपने विचारों से बदल भी रहा है तो उसकी प्रक्रिया बड़ी धीमी है। मध्य वर्ग चाहे कितना भी बदला हो, पर उसके भीतर जड़ जमाए बैठी रूढ़ियाँ कम होने का नाम नहीं ले पा रही हैं। आज भी इस देश में इस मध्य वर्ग के बीच के लोग किसी दूसरे मध्यवर्ग के यहाँ किराए पर मकान के लिए जाते हैं, तो उनसे उनकी जाति अवश्य पूछी जाती है और जाति जानने पर कोई न कोई बहाना बनाकर मकान देने से इनकार कर देते हैं। सोशल मीडिया पर भी इस मध्यवर्ग के पढ़े-लिखे लोगों की तंगनजरी जाहिर होती रहती है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह वर्ग अभी मूल्यगत बदलाव का प्रतीक नहीं है।

(१२)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि राष्ट्रीय महत्व के चुनिंदा मसलों पर वैचारिक आग्रह कुतर्क की सवारी कर दुराग्रह में तब्दील होता जा रहा है?

उत्तरः हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि वर्तमान दौर में राष्ट्रीय महत्व के चुनिंदा मसलों पर वैचारिक आग्रह कुतर्क की सवारी कर दुराग्रह में तब्दील होता जा रहा है। उदाहरण के तौर पर 8 नवंबर, 2016 की आधी रात से केंद्र सरकार का नेतृत्व कर रहे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा पाँच सौ और एक हजार के नोटों के प्रचलन बंद करने जैसे राष्ट्रीय महत्व के फैसले को लें। विपक्षी पार्टियों में कुछ पार्टियों को अपवाद स्वरूप मान लें, तो राष्ट्रीय पार्टी काँग्रेस के साथ तमाम पार्टियों को यह फैसला केवल इसलिए रास नहीं आया,

क्योंकि यह फैसला डॉ. मनमोहन सिंह ने नहीं मोदी सरकार ने लिया। आश्चर्य तो मुझे इसलिए भी हो रहा है कि नोटबंदी के खिलाफ लोगों को बरगलाने और उकसाने का काम तमाम विपक्षी पार्टियों के नेताओं के अलावा कथित बुद्धिजीवियों ने भी किया।

इसमें कोई दो राय नहीं कि नोटबंदी जैसे बड़े फैसले को लेकर सरकार को जैसी व्यापक तैयारी करनी थी वह नहीं हो सकी जिसकी वजह से आमजन को थोड़ी परेशानी हुई, मगर देशहित में लिए गए इस फैसले को देखते हुए आमजन ने उस परेशानी को न महसूस कर खुशी का अनुभव किया। जब नेता बौराए जा रहे थे तब जनता संयम का परिचय दे रही थी। इसे आप वैचारिक दुराग्रह नहीं तो और क्या कहेंगे कि अरविंद केजरीवाल और प्रशांत भूषण जैसे दिग्गज लोग जहाँ कागज के गट्ठर आकाट्य सबूत के तौर पर क्रमशः दिल्ली विधानसभा और सर्वोच्च न्यायालय में पेश करते हुए कह गए कि बिरला और सहारा समूह ने नरेन्द्र मोदी को तब करोड़ों रुपए दिए थे जब नरेन्द्र मोदी गुजरात के मुख्यमंत्री थे, वहीं ममता बनर्जी, शरद यादव सहित काँग्रेस के प्रायः सभी बड़े नेता और वामपंथी दलों के लोग नोटबंदी के फैसले को तीन दिन में वापस करने की माँग कर रहे थे। राजनीति और मीडिया के एक खास समूह ने नोट बदलने की सुविधा खत्म करने को इस रूप में पेश किया मानो सरकार ने पुराने नोटवालों को कहीं का न छोड़ा। इसी प्रकार सोशल मीडिया ने विपरीत मत को आतंकित करने वाले वैचारिक एकाधिकार को ध्वस्त करने का काम किया। इस मीडिया ने असहमति को मौका भी दिया और आवाज भी। सोशल मीडिया ने तो मुख्य धारा के मीडिया पर भी असर डाला। नोटबंदी पर यह महज परिहास नहीं कि अमुक चैनल में बैंकों की कतार में सब लोग खुश दिख रहे थे तो अमुक में कुछ तकलीफ में और अमुक में कुछ हृदयाघात से मरते हुए भी।

मेरा मानना है कि नोटबंदी के मामले में अब यह सबके सामने आ चुका है कि अपने वैचारिक दुराग्रह से विपरीत मतवालों को आतंकित करने का दिन अब लद चुके हैं। विरोध के नाम पर अँधविरोध तक जाने और कुतर्क करने वालों को हर स्तर पर करारा जवाब मिला है। यह बात हर मत और विचारवालों को समझनी होगी कि यदि वैचारिक आग्रह कुतर्क की सवारी पर दुराग्रह में तब्दील होगा, तो उसकी रायवालों से मुठभेड़ अवश्य होगी जैसा कि नोटबंदी के फैसले को लेकर हुई। अच्छी से अच्छी सरकार के लिए भी विपक्ष का अंकुश जरूरी है, लेकिन फिलहाल विपक्ष सिर्फ शोर

मचाने वाली भीड़ जैसा व्यवहार कर रहा है। कमजोर और भटका हुआ विपक्ष लोकतंत्र के लिए अच्छा नहीं है। लेकिन फिलहाल हालात तो ऐसे ही हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि भारत बंद और आक्रोश मार्च की नाकामी से नोटबंदी पर विपक्षी दलों ने अपने विरोध की धार भोथरी कर दी है।

(१३)प्रश्नः सामान्य जीवन यापन करते हुए व्यक्ति स्वयं से अधिक विचार-विमर्श क्यों नहीं कर पाता?

उत्तर : सामान्य जीवन यापन करते हुए व्यक्ति स्वयं से अधिक विचार-विमर्श इसलिए नहीं कर पाता, क्योंकि उसका वैचारिक मंथन केवल दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं तथा उनके उपभोग करने की व्यवस्था तक सीमित रहता है। जहाँ जीवन में कठिनाई आई नहीं कि भविष्य की चिंता में सोच-सोचकर मनुष्य तन-मन से कमजोर होता जाता है। हाँ, संकट के समय व्यक्ति की संचेतना जाग्रत हो उठती है, किंतु संकट के समय व्यक्ति केवल वैचारिक स्तर पर श्रेष्ठ बने रहकर जीवन नहीं चला सकता। उसे जीने के लिए अनिवार्य खान-पान, वस्त्र, आवास इत्यादि भौतिक वस्तुओं के लिए शारीरिक परिश्रम भी करना पड़ता है।

सामान्य जीवन में अचानक आई विपदा से कमजोर पड़ा व्यक्ति नए सिरे से जीवन संभालने के प्रति भावनात्मक रूप से तो आशावान रहता है, लेकिन व्यवहारिक रूप से वह निराशा से घिरा रहता है। यदि व्यक्ति की युवावस्था निकल गई हो, तो उसे अत्यधिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों में व्यक्ति का आत्मविश्वास ही उसका सबसे बड़ा साथी होता है। कोई काम व्यवहारिक स्वरूप में आने से पहले एक विचार मात्र ही होता है। कर्ता का आत्मविश्वास ही कार्य की परिणति निर्धारित करता है।

(१४)प्रश्नः क्या आप ऐसा मानते हैं कि जन चिंतन में भावना, अतिशयोक्ति, अतिरेक या दुर्भावना से तथ्यों को न देखकर स्पष्ट और स्थिति निरपेक्ष सोच विकसित किए जाने की आवश्यकता है? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, मैं भी यह मानता हूँ कि जन-चिंतन में भावना, अतिशयोक्ति, अतिरेक या दुर्भावना से तथ्यों को न देखकर स्पष्ट और स्थिति-निरपेक्ष सोच विकसित किए जाने की आवश्यकता है, क्योंकि हमारे देश में प्रायः हर मसले पर वैचारिक खाई निरंतर बढ़ती जा रही है। भारतीय समाज एक अजीब दौर से गुजर रहा है। इस दौर में समाज के लोगों की सोच की स्पष्ट दो पारस्परिक द्वंद्वात्मक धाराएँ बन गई हैं। मुद्दा चाहे जो हो, भाव यह आ

गया है कि उस मुद्दे के स्रोत के आधार पर लोगों की तलवारें खिंच जाती हैं। जैसे उदाहरण के तौर पर खादी ग्रामोद्योग आयोग के नववर्ष के कैलेंडर व डायरी पर राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की तस्वीर न प्रकाशित कर आयोग के अधिकारी ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की तस्वीर प्रकाशित कर दी। मैं यह नहीं कहता कि आयोग के अध्यक्ष या सचिव ने यह सही किया, मगर यह ऐसा मुद्दा नहीं जिस पर इतना हाय-तौबा मचाने की जरूरत है, क्योंकि इसके पूर्व भी पाँच-सात बार 1996 से 2015 तक गाँधी की तस्वीर हटाकर दूसरों की तस्वीर छपी थी, मगर उस वक्त हो-हल्ला खासकर राहुल गाँधी, अरविंद केजरीवाल अथवा ममता बनर्जी तो अपने मुँह बंद किए रहे, क्योंकि केंद्र सरकार पर काँग्रेस के लोग ही विराजमान थे। इस बार उन्हें हल्ला करने का मौका इसलिए मिल गया, क्योंकि कैलेंडर व डायरी पर नरेन्द्र मोदी की तस्वीर आ गयी। दरअसल, ऐसे लोगों की सोच में खोट यह है कि उन्हें गाँधी जी के आदर्श और सिद्धांत से कुछ लेना-देना नहीं बस उन्हें केवल गाँधी जी की तस्वीर अपने कमरे में लगाकर लूट की छूट दे दी जाए।

क्या हो गया है हमारी सोच को, हमारी तर्कशक्ति को या हमारी निष्पक्षता को? आज हम या तो मोदी-भक्त हैं या फिर मोदी-विरोध के शाश्वत भाव में या तो हम एक खास ब्रांड के राष्ट्र भक्त हैं या फिर उतने ही शक्तिशाली दूसरे ब्रांड के राष्ट्र-द्रोही। यानी सत्य या तो इस तरफ है या उस तरफ। बीच में नहीं। दरअसल, कुछ उत्साही मोदी को मंदिर में स्थापित कर के पूजा-अर्चना करने का प्रयास कर रहे हैं, तो कुछ की कोशिश है कि 'उनकी भी कमीज मेरी ही तरह गंदी हो जाए तो बात बराबर।' आज की राजनीति में बाप को हटाकर बेटा पार्टी अध्यक्ष हो जाए अगर पार्टी कार्यकर्ता उसके साथ है। इसी तरह नीतीश जी की तरह दसों साल अच्छा काम करने के बाद लालू का हाथ थाम लें और सत्ता में आ जाएँ, तो कहा जाएगा कि 'राजनीति में कोई स्थायी दोस्त या दुश्मन नहीं होता।' अच्छा तो तब होता जब नेता या आमजन न तो मोदी की मूर्ति बनाने में लगें और न ही उनकी कमीज में दाग तलाशने में। बल्कि बेहतर होगा कि जन-चिंतन में भावना अतिशयोक्ति से तथ्यों को न देखकर स्थिति निरपेक्ष सोच पैदा करें।

(१५)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि किसी के विचारों को जाने-सुने बिना उन्हें खारिज करना भारतीय बौद्धिक परंपरा का हिस्सा नहीं कहा जा सकता? आखिर क्यों?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि किसी के विचारों को जाने-सुने बिना

उन्हें खारिज करना भारतीय बौद्धिक परंपरा का हिस्सा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि भारत में संवाद की परंपरा रही है, वाद-विवाद की नहीं, लेकिन आजादी के बाद से एक खास तरीके से बहस की संस्कृति को बढ़ावा दिया गया। वैचारिक जड़ता तो निर्मम आलोचना से ही टूटतीं है। किसी प्रकार की बहस या वाद-विवाद से तब तक कुछ हासिल नहीं होता जब तक संवाद न हो। वाद-विवाद या बहस की इसी संस्कृति को सत्ता के साथ लंबे समय तक चिपकी एक विचारधारा ने अपनाया। सत्ता की परजीवी इस विचारधारा ने समान विचारवाले लोगों से ही बहस की और उसके जरिए ही ऐसा माहौल बनाया कि समाज में बौद्धिक विमर्श अपने चरम पर है, लेकिन उससे कहीं कुछ असाधारण हासिल हुआ हो ऐसा ज्ञात नहीं है, बल्कि सच तो यह है कि चिंतन की जो हमारी थाती थी उस पर भी आयातित बौद्धिकता लाद कर उसके विस्तार को अवरूद्ध किया गया।

आपने देखा नहीं पिछले दिनों 2017 के प्रारंभ में जयपुर में आयोजित साहित्य उत्सव में एक अलग किस्म का विवाद खड़ा करने की कोशिश तब की गई जब आयोजकों ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह सरकार्यवाहक दत्तात्रेय होसबोले और अखिल भारतीय प्रचार प्रमुख मनमोहन वैद्य को वक्ता के तौर पर आमंत्रित किया। इस आमंत्रण को पुरस्कार वापसी अभियान के अगुआ अशोक वाजपेयी और ख्यातिप्राप्त कहानीकार उदय प्रकाश की अनुपस्थिति से जोड़कर देखा गया। हालांकि सच यह है कि इस बार असहिष्णुता के कथित झंडाबरदार को जयपुर के इस साहित्यिक कुंभ में आमंत्रित ही नहीं किया गया था। अशोक वाजपेशी, उदय प्रकाश, हरि कुंजरू आदि को आमंत्रित नहीं करना और दत्तात्रेय होसबोले एवं मनमोहन वैद्य की उपस्थिति से कई लेखकों के चेहरे पर बेचैनी के भाव दिखाई दिए। जयपुर लिटरेचर फेस्टिवल की साख और वैश्विक ब्रांड के मद्देनजर यह बात किसी के भी गले नहीं उतर रही थी कि कोई लेखक इस उत्सव का बहिष्कार इसलिए कर सकता है कि संघ के लोगों को बुलाया गया है। राजस्थान के कुछ लेखकों ने आयोजकों से दबी जुबान में अपनी आपत्ति दर्ज अवश्य करवाई। बावजूद इसके संघ के पदाधिकारियों के सत्र में श्रोताओं की जबरदस्त भागीदारी रही। साहित्य उत्सव में मौजूद लेखकों में भी उनको सुनने का कौतूहल देखने को मिला।

दरअसल, पाणिनी ने अष्टाध्ययी की जो रचना की और उसे एक वैज्ञानिक आधार दिया उसे भी धीरे-धीरे भुला दिया गया। संसार की सबसे

वैज्ञानिक भाषाओं में से एक संस्कृत को पवित्रता के दायरे में बाँधकर उसे पूजा पाठ की भाषा तक घोषित–सीमित कर उसका गला घोंट दिया गया। भारतीय ज्ञान परंपरा को रोकने के लिए आजादी के बाद बहस की संस्कृति को बढ़ावा दियां जाने लगा, जबकि होना यह चाहिए था कि बहस की जगह विचार विनिमय होता, संवाद होता, लेकिन अमर्त्य सेन जैसे विद्वान ने भी वाद–विवाद की भारतीय अवधारणा को ही आगे बढ़ाया। नतीजा यह हुआ कि विचार विनिमय का दौर रूक गया। बहसंवाली विचारधारा के अलावा जो भी विचारधारा थी उसे अस्पृश्य माना जाने लगा। उससे संवाद तक रोक दिया गया जिसे भारतीय बौद्धिक परंपरा नहीं कही जा सकती।

(१६)प्रश्नः हम इंसान औरों के गुणों को देखकर खुद को नकारात्मक विचारों में क्यों जकड़ लेते हैं?

उत्तरः इसके पूर्व कि मैं आपके मूल प्रश्न का उत्तर दूँ कैसोवैरी नामक चिड़िया से संबंधित एक कहानी सुनाना जरूरी समझता हूँ। कहानी यों है कि कैसोवैरी चिड़ियों को बचपन से ही बाकी चिड़ियों के बच्चे चिढ़ाते थे। कोई कहता, जब तुम उड़ नहीं सकती तो चिड़िया किस काम की। तो कोई उसे पेड़ की डाल पर बैठ कर चिढ़ाता कि जब देखो जानवरों की तरह नीचे चरती रहती हो और ऐसा बोलकर सब के सब कुछ हँसते।

कैसोवैरी चिड़िया शुरू–शुरू में इन बातों का बुरा नहीं मानती थी, लेकिन किसी भी चीज की एक सीमा होती है। बार–बार चिढ़ाए जाने से उसका दिल टूट गया। वह उदास बैठ गयी और आसमान की तरफ देखते हुए बोली, हे ईश्वर, तुमने मुझे उड़ने की काबिलियत क्यों नहीं दी। देखो, सब मुझे कितना चिढ़ाते हैं। मैं इस जंगल को हमेशा के लिए छोड़ कर जा रही हूँ। और ऐसा कहते हुए कैसोवेरी चिड़िया आगे बढ़ गयी। अभी वो कुछ ही दूर गयी थी कि पीछे से एक भारी–भरकम आवाज आई – रूको कैसोवैरी। तुम कहाँ जा रही हो? कैसोवैरी ने आश्चर्य से पीछे मुड़कर देखा, वहाँ खड़ा जामुन का पेड़ उससे कुछ कह रहा था। कृपया तुम यहाँ से मत जाओ। हमें तुम्हारी जरूरत है। पूरे जंगल में हम सबसे अधिक तुम्हारी वजह से ही फल–फूल पाते हैं। हमें तुम्हारी जरूरत है। वो तुम ही हो जो अपनी मजबूत चोंच से फलों को अन्दर तक खाती हो और हमारे बीजों को पूरे जंगल में बिखेरती हो। हो सकता है बाकी चिड़ियों के लिए तुम मायने ना रखती हो, लेकिन हम पेड़ों के लिए तुमसे बढ़कर कोई दूसरी चिड़िया नहीं है। मत जाना तुम्हारी जगह कोई और नहीं ले सकता।

पेड़ की बात सुनकर कैसोवैरी चिड़िया को जीवन में पहली बार एहसास हुआ कि वो इस धरती पर बेकार में मौजूद नहीं है, भगवान ने उसे एक बेहद जरूरी काम करने के लिए भेजा है। कैसोवैरी चिड़िया बहुत खुश थी वह खुशी-खुशी जंगल में वापस लौट गयी।

कैसोवैरी चिड़िया की तरह ही कई बार हम इंसान भी औरों के गुणों को देखकर खुद को नकारात्मक विचारों में जकड़ लेते हैं। असल में हर इंसान खुद में खास है। बस उस खास को पहचानने की जरूरत है।

(१७)प्रश्न: क्या शैक्षणिक और अकादमिक स्वतंत्रता को बाधित कर समाज का विकास किया जा सकता है? यदि नहीं तो क्यों?

उत्तर: नहीं, शैक्षणिक और अकादमिक स्वतंत्रता को बाधित कर समाज का विकास नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उस पर गहरी चोट से अध्ययन तथा अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य पर खतरा है और साथ ही वैज्ञानिक दृष्टि को भी। डॉ. राम निवास जी, आपको याद होगा अपनी पुस्तक 'भारत, इतिहास और संस्कृति' पर लगायी गयी पाबन्दी पर मुक्ति बोध ने कहा था-'आज यह आंदोलन मेरे विरूद्ध है, मेरी पुस्तक के विरूद्ध है। कल यह अन्य विद्वानों, विचारकों और लेखकों के विरूद्ध होगा।' इसी प्रकार 'अँधेरे में' कविता में उन्होंने 'अभिव्यक्ति के खतरे' उठाने की बात कही थी। हिंदी कवियों, लेखकों, विद्वानों, विचारकों ने यह खतरा कम उठाया है।

आज स्थिति यह है कि देश की शीर्ष अदालत सुप्रीम कोर्ट ने अभी दलित चिंतक-विचारक कांचा इलैया की पुस्तक 'पोस्ट हिंदू इंडिया' पर प्रतिबंध लगाने से इनकार किया है। भारत के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्र की पीठ ने उक्त पुस्तक को प्रतिबंधित करने से इनकार करते हुए यह कहा है कि विवादित होने के कारण ही किसी किताब को प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता। संविधान में 'अभिव्यक्ति का मौलिक अधिकार' है और किसी भी कीमत पर इस अधिकार की रक्षा की जानी चाहिए। स्वतंत्र अभिव्यक्ति लोकतंत्र का आधार है, आधार पर प्रहार पूरे लोकतंत्र पर प्रहार है। समावेशी और जीवंत लोकतंत्र में कोई एक विचार दृष्टि नहीं रह सकती। नागार्जुन ने तो बहुत पहले ही लिखा था-

'सिकुड़ा-सिमटा हृदय तुम्हारा
आओ इस पर लोहा कर दूँ'

निराला और नागार्जुन का समय आज के समय से भिन्न था। इन दोनों कवियों ने नेहरू पर जैसी कविताएँ लिखी हैं, क्या आज वैसी कविताएँ

लिखी जा सकती हैं? गाँधी जी ने भी बार-बार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर बल दिया है। 24 अगस्त, 1945 के 'यंग इन्डिया' में उन्होंने लिखा-व्यक्ति की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता स्वराज का आधार है। विचारों की स्वतंत्रता और संगति की स्वतंत्रता को उन्होंने 'मनुष्य के दो फेफड़े' कहा है। किताबों पर पाबन्दी लगाना, उन्हें जलाना पहले भी होता था, पर अब इनकी संख्या बढ़ रही है।

डॉ. 'मानव' जी, मेरा भी मानना है कि विचारों की काट और आलोचाना केवल विचार से ही संभव है। इसलिए विचार का संहार किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। वैचारिक बहुलता वैचारिक समृद्धि से जुड़ी है। वैचारिक तानाशाही सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक प्रगति में सदैव बाधक रही है। इसलिए अकादमिक और वैचारिक स्वतंत्रता का सदैव आदर-सम्मान किया जाना चाहिए।

(१८)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि हमें अँधविश्वासों ने इतना अकर्मण्य बना दिया कि हमने आत्मा की ज्योति जलाने के पुरुषार्थ को विस्मृत कर दिया? ऐसा क्यों?

उत्तरः हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि हमें अँधविश्वास ने इतना अकर्मण्य बना दिया कि हमने आत्मा की ज्योति जलाने के पुरुषार्थ को विस्मृत कर दिया, क्योंकि अँधविश्वास, विसंगतियुक्त रूढ़ियों एवं अकर्मण्यता का परित्याग कर सतत पुरुषार्थ के द्वारा अपने भीतर विवेक जागृत करने की बजाय घट-घट में व्याप्त अज्ञानता के तिमिर के सामने बाहर की रोशनी फीकी पड़ गई है जिसके परिणामस्वरूप हमें अँधविश्वासों ने इतना अकर्मण्य बना दिया कि हमने आत्मा की ज्योति जलाने के पुरुषार्थ को विस्मृत कर दिया। सच तो यह है कि पुरुषार्थ दो शब्दों से मिलकर बना है-पुरुष तथा अर्थ। पुरुष यानी विवेकशील प्राणी और अर्थ का भावार्थ है-लक्ष्य। विवेकशील प्राणी का लक्ष्य होता है आत्म-अनुशासन और इंद्रिय-संयम द्वारा आत्मज्ञान को जागृत करना। उस प्रकाश से अपनी जीवन-यात्रा को सार्थक बनाना। आत्मज्ञान की आंतरिक यात्रा में जलता हुआ दीपक हमें प्रेरणा देता है कि हम पवित्र बनते हुए आंतरिक रोशनी के सुपात्र बनें। बाह्य संस्कारों और मन की दूषित वृत्तियों को बदले बिना भीतरी प्रकाश का पात्र बनना संभव नहीं है।

कठोपनिषद् में भी कहा गया है कि-'उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोध'। यानी उठो, जागो और ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों का सान्निध्य प्राप्त करो,

जो तुम्हारे भीतर आत्मज्ञान की ज्योति जला दें। जागने से अभिप्राय बिस्तर से उठकर खड़े हो जाना मात्र नहीं है, बल्कि अँधविश्वास, विसंगतियुक्त रूढ़ियों एवं अकर्मण्यता का परित्याग कर सतत पुरुषार्थ के द्वारा अपने भीतर विवेक जागृत करना। इसलिए आत्मज्ञान की साधना में विवेकशील होना अनिवार्य है। विवेक के जागरण से व्यक्ति के समस्त प्रकार के भ्रम समाप्त हो जाते हैं। आखिर तभी तो श्रीकृष्ण ने आत्मज्ञान को ज्योतिस्वरूप बताते हुए कहा है–'ज्ञान का प्रकाश मनुष्य के समस्त प्रकार के बंधनों, अँधविश्वासों एवं कुसंस्कारों को मिटा देता है।' लेकिन विडंबना यह है कि सदियों बीत जाने के बाद भी लोगों में व्याप्त अज्ञानता के तिमिर के सामने बाहर की रोशनी फीकी पड़ने के परिणामस्वरूप हमें अँधविश्वासों ने अकर्मण्य बना दिया है।

अध्याय : पाँच

प्राकृतिक

(१)प्रश्नः क्या आपको भी ऐसा लगता है कि दुनिया के अन्य विकसित देशों की तरह भारत में भी विकास की अवधारणा बदलनी चाहिए?

उत्तर : हाँ, मैं भी यह महसूस करता हूँ कि दुनिया के अन्य विकसित देशों की तरह भारत में भी विकास की अवधारणा बदलनी चाहिए, क्योंकि मानव की बढ़ती उपभोक्तावादी महत्वाकांक्षाओं ने विकास-क्रम में पर्यावरण में जरूरत से ज्यादा परिवर्तन ला दिया है। तरह-तरह के प्रदूषणों के चलते वर्तमान विकास का स्वरूप नीरस तथा जीवनहीन लगने लगा है। अब लोग फिर एक बार प्रकृति के सान्निध्य में लौट जाना चाहते हैं, क्योंकि लोग विकास से ऊब चुके हैं। पश्चिमी देशों में तो 'गो-स्लो' का ट्रेंड तेजी से मशहूर हो रहा है। अब वहाँ तेजी से आगे बढ़ने और विकास करने की बजाय धीमे चलने और जिंदगी का आनन्द लेने पर जोर दिया जा रहा है। आखिर तभी तो दुनिया के अधिकतर विकसित देशों में लोग दो-चक्के या चार चक्केवाली गाड़ी छोड़कर साईकिल चलाना पसंद करने लगे हैं।

अब तो भारत की राजधानी नई दिल्ली जैसे शहर में भी सम-विषम के सिद्धांत से वाहन चलने शुरू हो गए हैं। यह सब इसलिए हो रहा है, क्योंकि लोग प्रदूषण से आजिज आ चुके हैं। अब भारत सहित दुनिया के हर व्यक्ति का एक ही स्वर है- बहुत हो चुका विकास, अब हमें शांति, चैन और सुकून चाहिए। हर व्यक्ति समन्वित विकास चाहता है। विकास की ऐसी अवधारणा हो, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का ख्याल रखा जाए और प्रदूषण को कम करने पर जोर हो।

सच तो यह है कि पर्यावरणीय संतुलन बनाते हुए भी विकास किया जा सकता है। जरूरत केवल इस बात की है कि हम सबको सबसे पहले एक खास मानसिकता अपनाने की जरूरत है और अपनी पर्यावरण संबंधी सोच पर ध्यान देने की आवश्यकता है। सिर्फ कानूनों में बदलाव करके पर्यावरण और विकास के बीच में सामंजस्य नहीं बनाया जा सकता। इसके लिए लोगों को जागरूक होना पड़ेगा। पर्यावरण की बेहतरी ही जीवन के सौंदर्य को बनाए रखने में मदद कर सकती है। जहाँ तक भारत का सवाल है हम ऊर्जा उत्पादन के लिए नए प्रयोग करें और दुनिया के दूसरे

देशों को भी राह दिखा सकें। लेकिन यह तभी हो सकता है जब हमारे सत्तावान नीतिनियामक विकास की मौजूदा अवधारणा के मोहजाल से अपने को मुक्त करें और विकास की ऐसी सुविचारित वैकल्पिक अवधारणा विकसित करें, जिसमें नीतिगत फैसले करते समय पर्यावरण जैसे गंभीर मसले को हमेशा की तरह दोयम दर्जे पर न रखा जाए या उसे नजरअंदाज न किया जाए।

(२)प्रश्न : क्या आप भी ऐसा मानते हैं कि बाढ़ प्राकृतिक नहीं, बल्कि मानव-निर्मित आपदा है?

उत्तर : देश के नीति-नियंता जानते हैं कि बांग्लादेश के बाद भारत दुनिया का सर्वाधिक बाढ़-प्रभावित देश है जहाँ गंगा बेसिन देश के सबसे बाढ़-प्रवण इलाकों में शुमार है, फिर भी नीतियों की बनावट में यह जानना कभी उतर नहीं पाता जिसके परिणास्वरूप बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश, असम जैसे राज्यों में सालों-साल बाढ़ से तबाही की कहानी नहीं बदलती और नहीं बदलती टूटते तटबंध, खतरे के निशाना को लाँघता नदी का पानी, किसी ऊँचे टील्हे की खोज में जान बचाकर भागते लोग, पानी में डूबती फसलें, दाना-पानी को तरसतें मवेशी, अखबार के पन्ने और टीवी के परदे पर जानमाल के नुकसान की खबरों के बढ़ते जाने के साथ-साथ जन प्रतिनिधियों द्वारा बाढ़-प्रभावित इलाकों में हवाई सर्वेक्षण और फौरी राहत की बातें! आखिर क्यों? कारण कि बाढ़ का पानी अपनी ताकत भर नुकसान करके उतर जाता है और कुछ लोग अपने घर-बार और रोजी-रोजगार से हमेशा के लिए उजड़कर कहीं और पलायन कर जाते हैं, जबकि ज्यादातर लोग बिखरी हुई हिम्मत समेट कर फिर से जिंदगी की शुरुआत करने लगते हैं और सत्तापक्ष एवं विपक्ष के नेता भी बाढ़ को लेकर एक-दूसरे पर भड़ास निकालकर चैन की नींद सो जाते हैं और अगले चुनाव में इसी को भंजलाकर अपनी जीत का सपना देखने लगते हैं। शासन के गलियारे में यह मान लिया जाता है कि यह सब बाढ़ कुदरत का प्रकोप है और इससे बच पाना बहुत मुश्किल।

राज्यों के लोग अपनी सरकार को जहाँ कोसते हैं, वहीं राज्य सरकार केंद्र सरकार को उलाहना देती है, लेकिन इस मूल बात पर चर्चा नहीं हो पाती कि बाढ़ प्राकृतिक नहीं, बल्कि मानव-निर्मित आपदा है। पिछले कई वर्षो से देश के उन हिस्सों में अतिवृष्टि दिखाई देने लगी है जहाँ पर सामान्य वर्षा भी नहीं होती थी और सामान्य बरसातवाले क्षेत्रों में वर्षा

होने की स्थिति में भी बड़ा परिवर्तन दिखाई दे रहा है। क्या इस तरह की प्राकृतिक आपदा के लिए हमारे देश में व्यापक तैयारियाँ पहले से की जाती हैं या समस्या से घिर जाने पर तात्कालिक रूप से उसका समाधान निकालने की कोशिश से ही काम चलाकर हम अगले वर्ष फिर से बाढ़ आने का रास्ता देखने लगते हैं।

मुझे तो यह भी लगता है कि प्रकृति के अत्यधिक दोहन और शोषण ने उसे अप्राकृतिक अवस्था में पहुँचा दिया है। हम और सरकार की नीतियाँ प्रकृति को सहेजने की बजाय उसे नष्ट करने पर आमादा हैं जिसकी परिणति प्राकृतिक आपदाओं के रूप में देखने को मिलती है। बाढ़, सुखाड़, अतिवृष्टि, अनावृष्टि इसकी बानगी है। 1975 में पटना में आई बाढ़ की विभिषिका को हमलोग देख चुके हैं और उसका कुछ रूप 2016 की बाढ़ में देखने को मिला। बिहार में 2016 की त्रासदी के प्रारंभिक आकलन के अनुसार दो लाख हेक्टेयर से अधिक क्षेत्रों में लगी फसल बरबाद हो गई और हजारों घर टूट चुके हैं। मरने वालों की संख्या 100 से अधिक हो चुकी है। इसके मद्देनजर जरूरत इस बात की है कि इस आपदा को लेकर सरकार एक स्पष्ट नीति बनाने पर गंभीरता से विचार करे। कुछ महीने पहले सूखे के मामले में उच्चतम न्यायालय में केंद्र सरकार ने बताया था कि उसके पास सूखे से निबटने की कोई नीति नहीं है। अफसोस की बात है कि बाढ़ के साथ भी यही मुश्किल है कि इससे निबटने की अभी तक कोई नीति नहीं बन पाई है।

दरअसल, नदी को जीवन व्यवस्था का अभिन्न अंग मानने की जगह हम उसे पानी की आपूर्ति करने वाली एक प्रणाली मान बैठे हैं। यह मानसिकता आत्मघाती है। आखिर तभी तो देश के एक-तिहाई हिस्से में बाढ़ से तबाही की कहानी इस वर्ष 2016 में भी कमोवेश ऐसी है जिसके समाधान पर विचार किए जाने की आवश्यकता है। जहाँ तक बाढ़ के प्राकृतिक अथवा मानव-निर्मित आपदा होने का सवाल है, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि अतिवृष्टि से जब नदियों में पानी अत्यधिक हो जाता है तो बाँध तोड़कर वह सारे इलाके में फैल जाता है। इसे तो आप प्राकृतिक कहेंगे ही, मगर मानव-निर्मित आपदा कहना भी इसलिए लाजिमी है कि कभी-कभी बराज से अत्यधिक मात्रा में पानी छोड़े जाने, नदियों के किनारे बने बाँधों के टूटने, नदी की तली में अत्यधिक गाद (सिल्ट) के जमा होते जाने, कल-कारखानों से निकलने वाले हानिकारक

रासायनिक कचरे और नगरों-महानगरों से गिरने वाले मल-जल, स्वार्थी तत्वों द्वारा सीवरेज सीधे नदियों में डालने आदि से भी समस्या उत्पन्न होती है। नदियों में बाँध-बराजों, मिट्टी के टीले बनने तथा तटबंधों और कगारों के टूटने जैसी समस्याओं का समाधान जरूरी हो गया है, क्योंकि इससे नदियों की प्रवृत्ति पर नकारात्मक असर पड़ता है।

मगर इसके साथ यह भी सही है कि सिचाई, बिजली उत्पादन और कई अन्य वजहों से भी बांधों का अपना महत्व है। नहीं तो प्रायः सभी नदियों में जगह-जगह पर बाँध और बराज निर्मित करने का क्या औचित्य था? फरक्का बराज के निर्माण का मकसद गंगा नदी के पानी को इसकी शाखा नदी हुगली व भगीरथी में स्थानांतरित करना था, ताकि हुगली नदी में मौजूद तलछट पानी के साथ बह जाए। साथ ही हुगली नदी के मुहाने पर स्थित कोलकाता बंदरगाह के लिए नौ परिवहन भी सुचारू रूप से चलता रहे। ऐसी स्थिति में एक राज्य के मुख्यमंत्री का यह सुझाव कि गंगा की भयावह बाढ़ से निजात के लिए फरक्का बाँध को हटाने का उपाय किया जाए, कुछ अटपटा सा अवश्य लगता है। यह ठीक है कि नदी की तली में अत्यधिक मात्रा में गाद(सिल्ट) जमा होने की वजह से बाढ़ की आशंका बढ़ जाती है, मगर यह भी तो सोचना होगा कि नदी की तली में अत्यधिक मात्रा में गाद आखिर किसकी करनी से जमा होती है? और फिर सरकार उस गाद की निकासी(डिसिल्टिंग) की व्यवस्था भी तो की जा सकती है जिसकी जवाबदेही निश्चित रूप से केंद्र सरकार की है, क्योंकि इस समस्या का समाधान संघीय ढाँचे के भीतर ही मुमकिन हो सकता है। इसलिए इसमें पहल केंद्र को ही करनी होगी। यही नहीं इसके निदान के लिए केंद्र सरकार को ठोस नीतिगत पहल करनी चाहिए।

आपने यह खबर पढ़ी होगी कि ग्लोबल वार्मिंग की वजह से जब वैश्विक तापमान में चार डिग्री की बढ़ोतरी होगी, तो लंदन और मुंबई जैसे शहर आधे डूब जाएँगे, क्योंकि समुद्र का जल स्तर अत्यधिक गर्मी के कारण बढ़ जाएगा और इस सदी में ओलिम्पिक जैसे विशाल आयोजन मुश्किल हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में बाढ़ की आपदा से निबटने के लिए मुकम्मल इंतजाम की जरूरत है। सूचनातंत्र को भी दुरुस्त रखना होगा, ताकि विपदा के हालात में यथाशीघ्र राहत पहुँचाई जा सके। इसी प्रकार बराज से इतना ही पानी छोड़ा जाए जिससे गंगा बेकाबू न हो सके। इंद्रपुरी बराज से इसके पूर्व भारी मात्रा में पानी छोड़ने के कारण ही 1975 और 2011 में बाढ़ की

विपदा झेलनी पड़ी थी। हर साल किसी राज्य की जनता प्रकृति से ज्यादा मानवजनित गलतियों के कारण सब कुछ गंवाने को विवश हो और नेता हवाई दौरा करने पर खुश हो लें। इस सोच को बाढ़ में ही दफनाने की जरूरत है।

(३)प्रश्न: क्या वैश्विक जनसंख्या का ९० प्रतिशत से अधिक भाग प्रदूषित हवा में सांस लेने के लिए अभिशप्त हैं?

उत्तर: हाँ, वैश्विक जनसंख्या का 90 प्रतिशत से अधिक भाग प्रदूषित हवा में सांस लेने के लिए अभिशप्त है। आखिर तभी तो दुनिया भर में वायू प्रदूषण के बढ़ते स्तर के खतरनाक प्रभाव का विश्लेषण करते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसे सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए 'आपातकाल' की संज्ञा दी है। वायु प्रदूषण से बड़ी संख्या में मौतों और बीमारियों से सबसे प्रभावित यों तो विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ हैं, लेकिन विकसित देश भी इससे बेअसर नहीं है। वैश्विक जनसंख्या का 90 प्रतिशत से अधिक भाग प्रदूषित हवा में सांस लेने के लिए इसलिए अभिशप्त है, क्योंकि विकासशील देशों में प्रदूषण अधिक सघन और गंभीर होता जा रहा है। ऐसे में यह जरूरी है कि प्रदूषण रोकने तथा इसके दुष्प्रभावों के समुचित समाधान के लिए समूचा विश्व मिलजुलकर सकारात्मक प्रयास करे, ताकि मानव जीवन के वर्तमान और भविष्य को सुरक्षित रखा जा सके।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के हालिया रिपोर्ट के मुताबिक विश्व की केवल 10 प्रतिशत आबादी ही उन देशों में रहती है, जहाँ हवा गुणवत्ता मानकों के अनुरूप है यानी वहाँ की हवा स्वच्छ है। वहीं दक्षिण पूर्वी एशिया और पश्चिमी प्रशांत क्षेत्र विश्व के सबसे ज्यादा प्रदूषित क्षेत्र हैं। घर के बाहर के वायू प्रदूषण के संपर्क में आने की वजह से हर साल लगभग तीस लाख लोगों की मौत हो जाती है। वर्ष 2012 में घर के भीतर और बाहरी वायु प्रदूषण से करीब 65 लाख लोगों की मृत्यु हुई। निम्न एवं मध्य आयवाले देशों में वायु प्रदूषण से 90 प्रतिशत मौत होने का रिकार्ड है।

(४)प्रश्न: जलवायु परिवर्तन पर पेरिस समझौते का भारत द्वारा अनुमोदन करने के बाद हमारा देश विश्व के साथ पृथ्वी का तापमान दो सेंटीग्रेट से नीचे लाने के अनुष्ठान में शामिल हो गया है, लेकिन तापमान दो सेंटीग्रेट से नीचे लाने के लिए भारत को किन-किन समस्याओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा?

उत्तर: भाई रवीन्द्र जी, आपको याद होगा कुछ माह पहले जलवायु परिवर्तन

पर कार्बन उत्सर्जन कम करने का पेरिस में हुए सम्मेलन में समझौता हुआ था। भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने विगत 25 सितंबर, 2016 को घोषणा की थी कि गाँधी जयंती की 147वीं वर्षगांठ पर भारत पेरिस जलवायु समझौते की पुष्टि कर देगा। उसी के अनुरूप दो अक्टूबर, 2016 को भारत सरकार के केंद्रीय मंत्रिमंडल ने पेरिस समझौते का अनुमोदन कर दिया जो कार्बन उत्सर्जन कम करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम माना जाएगा, लेकिन इसके साथ भारत की जिम्मेदारी काफी बढ़ गयी है।

भारत ने पेरिस समझौते के अनुमोदन संबंधी दस्तावेज संयुक्त राष्ट्र में जमा करा दिए जब संयुक्त राष्ट्र के न्यूयॉर्क स्थित मुख्यालय में अंतरराष्ट्रीय अहिंसा दिवस समारोह का आयोजन था। उसके एक दिन पहले राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने पेरिस समझौते पर सरकार के प्रस्ताव को अपनी मंजूरी प्रदान की थी। संयुक्त राष्ट्र के महासचिव बान की मून ने भारत के इस कदम की सराहना की है।

यह बात सही है कि पेरिस समझौते का अनुमोदन कर भारत ने जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों से निपटने की वैश्विक कोशिशों को भारी बल प्रदान किया है, मगर भारत के सामने कई दिक्कतें भी हैं। एक तो भारत को परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह(एनएसजी) की सदस्यता अभी नहीं मिली है, फिर भी भारत के विश्व के साथ पृथ्वी का तापमान दो सेंटीग्रेट से नीचे लाने के अनुष्ठान में शामिल हो गया है। इसके लिए भारत को बहुत कुछ करना होगा, क्योंकि भारत उभरती अर्थव्यवस्था है और इस अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र अभी कोयला ईंधन पर आश्रित है। पुनर्नवीकरण ऊर्जा के इस्तेमाल पर अधिक से अधिक बल देना होगा। इसमें संदेह नहीं कि भारत ने जो लक्ष्य निर्धारित किए हैं उनको राज्यों के सहयोग के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इसके लिए राज्यों को भी महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। जीवाश्म आधारित ईधन के प्रयोग को हतोत्साहित करना होगा और ऐसे विकल्प अपनाने होंगे जिससे पर्यावरण की रक्षा सुनिश्चित हो, तभी हम निर्धारित लक्ष्य को हासिल कर सकेंगे। मालूम हो कि एक अप्रैल, 2017 से यह सार्वभौमिक समझौता लागू होगा। भारत में बड़ी संख्या में लोग अभी बिजली की सुविधा से वंचित हैं। एक ओर गरीबी निवारण के लिए बिजली उत्पादन बढ़ाना है तो दूसरी ओर वर्ष 2020 तक तीस से पैंतीस प्रतिशत तक कार्बन उत्सर्जन में कटौती करनी होगी। यह भारत के लिए दोहरी चुनौती है जिससे निबटने के लिए इसे स्वच्छ ऊर्जा उत्पादन को बढ़ावा देना होगा।

2022 तक 175 जीडब्लू ऊर्जा उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इतना ही नहीं वर्ष 2030 तक चालीस प्रतिशत ऊर्जा गैरजीवाश्म ईंधन से पैदा की जानी है।

(५) प्रश्न: क्या आपको ऐसा लगता है कि ग्लेशियरों के पिघलने से बनीं कृत्रिम झीलें भारी तबाही मचा सकती हैं? कैसे ?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि ग्लेशियरों के पिघलने से बनी कृत्रिम झीलें भारी तबाही मचा सकती हैं, क्योंकि विज्ञान प्रौद्योगिकी एवं पर्यावरण परिषद के जलवायु परिवर्तन केंद्र, शिमला की ओर से करवाए गए एक अध्ययन के रिपोर्ट के अनुसार जहाँ वर्ष 2013 में रिवर बेसिन पर प्राकृतिक झीलों की संख्या 596 थीं, वहीं नई रिपोर्ट में अब उसकी संख्या बढ़कर 705 हो गई है। रिपोर्ट के मुताबिक रिवर बेसिन के करीब ग्लेशियरों के पिघलने से प्राकृतिक झीलें बन रही हैं। ये झीलें वर्ष 2000 में सतलुज नदी में आई बाढ़ की तरह प्रदेश में कहर बरपा सकती है। चिनाव बेसिन पर प्राकृतिक झीलों के बनने से पारछू की तरह खतरा भी मंडरा रहा है।

हिमाचल के हिमालयी क्षेत्रों में ग्लेशियरों के पिघलने से बनी कृत्रिम झीलें भारी तबाही मचा सकती हैं, क्योंकि सतलुज, चिनाव, रावी और ब्यास बेसिन पर विगत दो सालों में 109 नई प्राकृतिक झीलें बनी हैं। इन झीलों का आकार काफी बड़ा है।

(६) प्रश्न: क्या हमें वायु प्रदूषण रोकने की दिशा में काम करना है या प्रदूषित वातावरण में ऑक्सीजन मास्कों का सहारा लेकर मुँह को ढँके रहना होगा?

उत्तर: चीन की तरह हमारे देश की राजधानी दिल्ली में बोतल बंद पानी की तरह ही हवा या ऑक्सीजन की बिक्री की शुरुआत होने जा रही है। और यह तय है कि ऑक्सीजन की बिक्री धीरे-धीरे दूसरे प्रदूषित शहरों की भी जरूरत बनेंगे, क्योंकि जलवायू परिवर्तन के खतरों की सूची धीरे-धीरे इतनी व्यापक होती जा रही है कि भविष्य में सांस लेना भी मुश्किल हो जाए तो आश्चर्य नहीं होगा।

अमेरिकन एसोसियेशन फॉर एडवांसमेंट ऑफ साइंस की 1990 से 2013 के बीच की रिपोर्ट में 188 देशों के अध्ययन के अनुसार सबसे ज्यादा आबादीवाले देश चीन और भारत में वायु प्रदूषण सबसे ज्यादा है। दूषित वायु का ये संकट निकट भविष्य में हमारे स्वास्थ्य पर कितना असर डालेगा, इसकी कल्पना ही मुश्किल है।

बढ़ते प्रदूषण की वजह से सबसे अधिक खतरा हमारी सांस से जुड़ा है। अस्थमा, एलर्जी, जुकाम और सांस संबंधी बीमारियों का विकराल चेहरा हमारे सामने खड़ा है। लाखों एकड़ वनभूमि, खेत और हरियाली की बलि देकर विकास का रास्ता क्या इसीलिए चुना गया है कि हवा में ही जहर घोल दिया जाए? आज देश के कुछ इलाकों में गर्मियों का पारा 52 डिग्री तक पहुँच जाता है और राजधानी में शुद्ध हवा के लिए तो लोगों को तरसना पड़ता है। यदि सरकारें इस ओर ध्यान देतीं और पहाड़ों से लेकर मैदानों तक पर्यावरण का ध्यान रखा जाता, तो संभव है कि विकास के पहिए से प्रकृति इस तरह रौंदी न जाती। न मौसम बिगड़ता और न लोगों का स्वास्थ्य। पानी और हवा के इस्तेमाल का प्रत्येक नागरिक संवैधानिक अधिकार रखता है, मगर प्रदूषण और तापमान में जो तीव्र गति से बदलाव हो रहा है उसका मुख्य कारण रोजाना हजारों वाहनों को सड़कों पर आना है और पुराने वाहन भी उसी तरह प्रदूषण फैलाते दौड़ रहे हैं। मानक से अधिक प्रदूषण फैलाने वाले पुराने वाहनों में से कितने वाहन जिम्मेदार लोगों और विभागों द्वारा हटाए गए हैं? अतंरराष्ट्रीय सड़क सुरक्षा नियमों के अनुसार 15 साल से पुराने किसी भी वाहन को सड़कों पर उतरने की इजाजत नहीं मिलनी चाहिए। फिर भी हमारे परिवहन विभाग के अधिकारियों का ध्यान इस ओर नहीं जा पा रहा है। इसके अतिरिक्त हर जगह कचरे के ढेर भी प्रदूषण फैला रहे हैं। मगर 'स्मार्ट सिटी' की कल्पनाओं में खोए हमारे नीति-नियंताओं को यह प्राथमिक दिक्कतें क्यों नहीं दिखलाई देती हैं? यदि यही स्थिति रही तो प्रदूषित वातावरण में हम और आप सभी ऑक्सीजन मास्कों से अपने-अपने मुँह को ढँकने के लिए मजबूर हो जाएँगे ही।

(७)प्रश्नः क्या आप मानते हैं कि अमेरिका के तकरीबन तमाम जल-क्षेत्र में तेल व गैस खनन-कार्य बंद करने संबंधी राष्ट्रपति बराक ओबामा का फैसला अपने आप में पर्यावरण से जुड़ा एक शानदार उपहार है? आखिर क्यों ?

उत्तर : हाँ, मैं भी मानता हूँ कि अमेरिका के तकरीबन तमाम जल-क्षेत्र में तेल व गैस खनन-कार्य बंद करने संबंधी राष्ट्रपति बराक ओबामा का फैसला अपने आप में पर्यावरण से जुड़ा एक शानदार उपहार है, क्योंकि पर्यावरण संरक्षण के लिहाज से ओबामा प्रशासन का यह अच्छा फैसला है। जल-क्षेत्र को संरक्षित करने के लिए यह एक संवेदनशील और अद्वितीय परिस्थितिकीय तंत्र है, जो पृथ्वी पर कहीं भी नहीं मिल सकता। इस फैसले के साथ ही

ओबामा ने प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और उनके दोहन के बीच संतुलन साधने के अपने आठ वर्षों के सभी प्रयासों में एक नई कड़ी जोड़ दी है। ओबामा के फैसले का आधार 'द आउटर कॉन्टिनेंटल शेल्फ लैंड एक्ट' का एक प्रावधान है, जो संघ के अधिकार क्षेत्र में तेल व गैस खनन की गतिविधियों को नियंत्रित करने से संबंधित है। यह प्रावधान राष्ट्रपति को ऐसी किसी गतिविधि को बंद करने का अधिकार देता है।

इस फैसले के अलावा राष्ट्रपति ओबामा ने अटलांटिक में मैसाचुसेट्स से लेकर वर्जीनिया तक की नदी घाटियों में खनन-कार्य बंद करने की घोषणा की है। दुर्लभ मूंगा के साथ ही यह जल-क्षेत्र मछलियों की कई प्रजातियों का घर भी है। अब यह भविष्य बताएगा कि अमेरिका के नवनिर्वाचित राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप इन सद्प्रयासों को पलटने में कितना जोर लगाते हैं, मगर फिलहाल यह एक मापक जरूर बन गया है कि हम अपने आर्थिक हितों की बजाय पर्यावरण सुरक्षा को कितना तवज्जों देते हैं।

(८)प्रश्नः अरबों रुपए बहा देने के बावजूद ढाई हजार किलोमीटर लंबी गंगा नदी का जल शुद्ध क्यों नहीं हो पाया? क्या गंगा को वाकई लोगों ने पवित्र रहने दिया है?

उत्तरः आपका कहना सही है कि अरबों रुपए बहा देने के बावजूद ढाई हजार किलोमीटर लंबी गंगा नदी का जल शुद्ध नहीं हो पाया और वाकई इस नदी के किनारे रहने वाले लोगों ने इसे पवित्र रहने नहीं दिया है। हम बिना फिल्टर या आरओ प्रशोधन के गंगा जल नहीं पी सकते।

आप इस बात से संभवतः अवगत होंगे कि जब किसी व्यक्ति का आखिरी वक्त होता है या इस दुनिया को छोड़ किसी दूसरी दुनिया के लिए कूच कर रहा होता है, तो उसे जल्दी से जल्दी गंगा जल पिलाने की हड़बड़ी हो जाती है। आखिर क्यों? क्या आपने कभी इस पर विचार किया है? यह इसलिए ताकि मरने वाले की स्वर्ग प्राप्ति सुनिश्चित हो जाए। किंवदन्ति तो यही है चाहे कोई इसे माने या न माने, मैं तो अँधविश्वासी नहीं हूँ। इसलिए इन सभी किंवदन्तियों पर कतई विश्वास नहीं करता। वैसे सच मानिए चिकित्सक भी किसी स्वस्थ व्यक्ति को भी गंगा जल पीना तो छोड़िए, कुल्ला करने तक की सलाह नहीं देते हैं, मगर पवित्र गंगा के आध्यात्मिक महत्व से पूरा हिंदू वाड.मय भरा पड़ा है।

अब आइए आपके प्रश्न का मैं उत्तर दूँ कि अरबों रुपए खर्च किए जाने के बावजूद गंगा का पानी शुद्ध क्यों नहीं हो पाता है। दरअसल,

गंगा में कूड़ा, कबाड़, घातक रसायन, गंगा के किनारे बसे प्राय: सभी शहरों के नाले से मल-मूत्र, हवन, प्लास्टिक कचरे, तंत्र-मंत्र सामग्री, मूर्तियाँ यहाँ तक कि मानव सहित जानवरों के शवों को गंगा में बहा देने के कृत्य से कहाँ कोई बाज आ पा रहा है? इसके अतिरिक्त गंगा के किनारे बसे शहरों में जो कल-कारखानें हैं उसके गंदे पानी भी गंगा में बह रहे हैं। जबतक इन सभी को गंगा को बहाने की बजाय कोई वैकल्पिक व्यवस्था नहीं होती लाखों-करोड़ों रुपए खर्च करने से भी गंगा का पानी शुद्ध नहीं हो पाएगा।

जिस गंगा के जल को लेकर राजकपूर द्वारा बनाई गई पहली फिल्म 'जिस देश में गंगा बहती है' के हिट गीत 'जिस देश में गंगा बहती है हम उस देश के वासी हैं' को सुनने के बाद किसी भी भारतीय का सिर गर्व से ऊँचा हो जाता था, लेकिन उसी राजकपूर द्वारा बनाई गई दूसरी फिल्म 'राम तेरी गंगा मैली' का हिट गीत 'राम तेरी गंगा मैली हो गई पापियों के पाप धोते-धोते' जिसे सुनने के बाद शर्म से किसी भी भारतीय का सिर झुक जाता है।

भारतीय राजनीति की तरह ही गंगा भी लोगों ने प्रदूषित किया है। सच तो यह है कि गंगा का प्रदूषण प्रदूषित राजनीति का पर्याय ही माना जाना जाएगा। इसलिए मुझे तो लगता है कि जबतक प्रदूषित राजनीति की गंदगी को साफ नहीं किया जाएगा, गंगा के जल को शुद्ध कर उसे पवित्र करने का कोई भी प्रयास असफल होगा।

गंगा सफाई को लेकर बनी तमाम परियोजनाओं के लिए एक एकीकृत केंद्रीय क्रियान्वयन और नियंत्रण की जरूरत है। अन्यथा परियोजनाएँ बनती रहेंगी, आवंटित धन बेतहाशा खर्च होता रहेगा और भ्रष्टाचार पनपता रहेगा।

(९)प्रश्न: क्या आपको ऐसा लगता है कि जाने-माने गाँधीवादी और पर्यावरणविद् अनुपम मिश्र के देहावसान से प्रकृति का एक सजग पहरेदार हमारे बीच से उठ गया? क्यों?

उत्तर : हाँ, मुझे ऐसा लगता है कि जाने-माने गाँधीवादी और पर्यावरणविद् अनुपम मिश्र के देहावसान से प्रकृति का एक सजग पहरेदार हमारे बीच से उठ गया, क्योंकि पर्यावरण के लिए वे तब से काम कर रहे थे, जब देश में पर्यावरण का कोई विभाग नहीं खुला था। बगैर बजट के उन्होंने देश-दुनिया के पर्यावरण की जिस बारीकी से खोज-खबर ली, वह करोड़ों रुपए बजटवाले विभागों और परियोजनाओं के लिए संभव नहीं हो पाया है। वर्ष 1948 में वर्धा में जन्में अनुपम मिश्र प्रख्यात साहित्यकार-गीतकार

भवानी प्रसाद मिश्र के सुपुत्र थे। सन् 1969 में दिल्ली के दीनदयाल उपाध्याय मार्ग स्थित गाँधी शांति प्रतिष्ठान से जब वे जुड़े, निरंतर काम में जुटे रहे। स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति के बाद जब मैंने दिल्ली को अपने संगठन-'राष्ट्रीय विचार मंच' और उसके मुख्य पत्र 'विचार दृष्टि' के संचालन के लिए राष्ट्रीय कार्यालय बनाया, तो गाँधी शांति प्रतिष्ठान के ठीक उत्तर राजेन्द्र भवन और अणुव्रत भवन मेरी गतिविधियों का केंद्र बना और मेरी बैठकी उन्हीं दोनों भवनों में होती रहीं। उसी क्रम में गाँधी शांति प्रतिष्ठान से भी मैं जुड़ा और अनुपम मिश्र जी से मेरा परिचय हुआ। सिद्धांतों से कभी समझौता नहीं करने वाले मिश्र जी के व्यक्तित्व से मैं काफी प्रभावित हुआ और पर्यावरण में मेरी अभिरुचि बढ़ी जिसका परिणाम है पटना के ए. जी. कॉलानी स्थित मेरे 'संस्कृति' निवास के दो हजार वर्गफीट में मेरे द्वारा स्थापित हरा-भरा बागीचा जहाँ हँस-बोल रही है हरियाली।

अनुपम मिश्र जी ने महत्वपूर्ण पर्यावरण संस्थान सेंटर फॉर साइंस एंड इनवायरमेंट की स्थापना में अपनी अहम भूमिका निभाई। इसी प्रकार नर्मदा बाँध के खतरों के प्रति आगाह करने वाली पहली आवाज अनुपम मिश्र की ही थी। देश-विदेश में पर्यावरण संरक्षण की अनेक परियोजना उनकी स्थापनाओं से प्रेरित रहीं हैं। 'आज भी खरें हैं तालाब', 'राजस्थान की रजत बूंदें' और 'हमारा पर्यावरण' नाम्नी उनकी पुस्तकें उनकी विरासत हैं जो हमें प्रेरित करती हैं।

प्राकृतिक जल स्रातों के विलुप्तीकरण पर जिन लोगों ने चिंता जाहिर की थी, उनमें से अनुपम मिश्र का नाम हमेशा अग्रिम पंक्ति में शामिल रहेगा। भारत के जल संकट को प्राथमिक अवस्था से ही पहचानने वाले इस चिंतक ने परंपरागत जल संरक्षण और जल प्रबंधन के अध्ययन के निष्कर्षो का बाजारीकरण-व्यवसायीकरण नहीं किया। जल संरक्षण के क्षेत्र में उनके कार्य को भले ही राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उतनी ख्याति नहीं मिली, लेकिन उन्होंने जो काम किया, वह अद्वितीय है। वास्तव में अनुपम मिश्र पानीदार आदमी थे। ऐसे विशद्ध सामाजिक, सरकारी और प्राकृतिक पहरेदार को हमारी भावभीनी श्रद्धांजलि।

(१०)प्रश्नः क्या देश हमेशा प्राकृतिक आपदा की जद में रहता है? आखिर कैसे? चक्रवात 'वरदा' से क्या नुकसान हुआ?

उत्तर: हाँ, देश हमेशा प्राकृतिक आपदा की जद में रहता है, क्योंकि इस देश की 7516 किलोमीटर लंबी तटीय रेखा उष्णकटिबंधीय चक्रवात के लिहाज

से 10 फीसद जोखिम में है। प्रत्येक वर्ष औसतन 5 से 6 उष्णकटिबंधीय चक्रवात भारत में आते हैं जिनमें से ज्यादातर बंगाल की खाड़ी में होते हैं। मॉनसून के बाद चक्रवात अक्सर आते हैं और आमतौर पर उनकी तीव्रता अधिक विनाशकारी होती है। अनुमान है कि 58 फीसद चक्रवाती तूफान बंगाल की खाड़ी में उत्पन्न होते हैं, जो अक्टूबर और नवंबर में तटीय इलाकों को प्रभावित करते हैं, लेकिन इस बार सही वक्त पर सटीक सूचना और सतर्कता की वजह से तमिलनाडु की चेन्नई एवं पड़ोसी राज्य आँध्रप्रदेश व कर्नाटक में आए चक्रवात 'वरदा' अनुमान के मुताबिक ही 120 किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से आया। तूफानी हवाओं के थपेड़ों ने परिसंपत्तियों को ज्यादा नुकसान पहुँचाया जिसमें 260 पेड़, 37 बिजली के खंभे व 20 घर गिर गए। इसके चलते रेल, बस और हवाई सेवाएँ पूरी तरह बंद करनी पड़ीं।

सरकार ने 100 के करीब राहत शिविर लगाकर 16 हजार से भी ज्यादा लोगों को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाया। कम क्षति होने के लिए शाबाशी का हकदार मौसम विभाग तो है ही, राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन विभाग, सेना और कोस्ट गार्ड की साझेदारी भी उतना ही सराहनीय है। तमिलनाडु सरकार की सतर्कता और सजगता की भी सराहना करनी होगी।

प्राकृतिक आपदा को रोका नहीं जा सकता है, पर इतना जरूर है कि उसके कहर को कम अवश्य किया जा सकता है और जाहिर है, यह निर्णायक रूप से पूर्व सूचना तथा पूर्व तैयारी पर निर्भर करता है। वरदा तूफान से, पूर्व के अनुभवों की तुलना में जानमाल का कम नुकसान हुआ, तो इसकी बड़ी वजह चेतावनी प्रणाली का विकास है। विगत 12 दिसंबर, 2016 को दोपहर बाद जब वरदा नामक समुद्री तूफान तमिलनाडु के तट से टकराया, उसके पहले राज्य सरकार ने कोई दस हजार लोगों को तटीय क्षेत्र से हटा कर सुरक्षित स्थानों पर पहुँचा दिया था। इसी तरह आँध्रप्रदेश की सरकार ने भी हजारों लोगों को तटीय क्षेत्र से दूर पहुँचा दिया था। मछुआरों समेत तटीय इलाकों में रहने वाले लोगों को तूफान के बारे में आगाह कर दिया गया था। इसी प्रकार केंद्रीय आपदा रक्षक बल के कई दस्तों और सेना की कई टुकड़ियों को आपात-सहायता के लिए पहले ही बुला लिया गया था इसलिए तमिलनाडु में खासकर जयललिता के निधन के बाद वहाँ के नए मुख्यमंत्री पल्नी सेल्वम और मंत्रिमंडल के सभी सहयोगियों सहित आँध्र प्रदेश सरकार को शाबाशी अवश्य दी जानी चाहिए और दूसरे राज्यों के सरकारों के लिए यह सबक भी है।

(११)प्रश्नः क्या हम सभी मनुष्यों का प्राकृतिक मान्यताओं के अनुरूप अपने जीवन को जीने का संकल्प लेना चाहिए? आखिर क्यों? क्या हमें पशु-पक्षियों से प्राकृतिक व्यवस्था के अनुकूल रहने की कला सीखनी चाहिए?

उत्तर : हाँ, हम सभी मनुष्यों को प्राकृतिक मान्यताओं के अनुरूप अपने जीवन जीने का संकल्प लेना चाहिए, क्योंकि मानव जीवन में विज्ञान की विसंगतियाँ प्रकृति को यथावत बनाए कभी नहीं रह सकती। यह बात ठीक है कि विज्ञान जीवन के लिए आवश्यक है, लेकिन आजकल का मनुष्य उसका दुरुपयोग ही कर रहा है। इसलिए अब हमें पशु-पक्षियों से प्राकृतिक व्यवस्था के अनुकूल रहने की कला सीखनी ही होगी, क्योंकि पशु-पक्षियों की दुनिया बहुत सरल और सहज होती है। इनका ज्ञान अपने परिवेश और बच्चों के प्रति पवित्र सेवा के रूप में विद्यमान होता है। इनकी आभाषी दुनिया बड़ी शक्तिशाली होती है। अपनी प्राकृतिक संचेतना, जानकारी का इन्हें गर्व तथा अहंकार नहीं होता। इनमें बुद्धि, विवेक, प्रज्ञा तथा आत्मिक ज्ञान की भावनात्मक प्रतियोगिताएँ नहीं होतीं। इनका समस्त अर्जित अनुभव श्रेष्ठता या सम्मान के लिए नहीं तरसता। ये अपने व्यस्क अनुभवों से अपने परिवेश को यत्नपूर्वक सुखी-संपन्न रखते हैं। अपने बच्चों कें व्यस्क होने तक ये उन्हें बिना किसी प्रतिलोभ के प्रेम से पालते हैं। अपने नीड़ में अपने बच्चों को स्वयं से लिपटा कर रखते हैं। खाद्यान्न, रहन-सहन, चिकित्सा तथा भोग-विलास आदि के लिए इन पशु-पक्षियों ने चमचमाती कृत्रिम दुनिया इसीलिए नहीं बनाई, ताकि इनके जीवन में आवश्यकताओं का भेद उत्पन्न न हो जाए या धनी-निर्धन का कोई विचार न उभर आए। इन्हें कृत्रिम जीवन की विवशता में पड़ने की इसीलिए कभी आवश्यकता भी नही पड़ी। हमें पशु-पक्षियों से ज्ञान के मूल सिद्धांत और प्राकृतिक व्यवस्था के अनुकूल रहने की कला सीखनी चाहिए, क्योंकि कुदरत की राहों में जीने का सुख कुछ और ही होता है।

(१२)प्रश्नः विश्व सूनामी जागरूकता दिवस जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से जागरूकता बढ़ाकर क्या हम सूनामी से होने वाली तबाही को कम कर सकते हैं?

उत्तर : आप इस बात से अवगत हैं कि जापान आज वैश्विक स्तर पर आपदा जोखिम कम करने के मुद्दे को मुख्यधारा में लाने के लिए अग्रणी भूमिका निभा रहा है। अब तक आपदा के समय अंतरराष्ट्रीय समुदाय की

प्रतिक्रियाएँ आपदा के बाद के उपायों पर ही केंद्रित होती थीं, लेकिन अब आपदा आने से पहले खतरे को कम करने की तरफ ध्यान केंद्रित किया जा रहा है।

आपको यह जानकारी दूँ कि आपदा जोखिम न्यूनीकरण का तीसरा संयुक्त राष्ट्र विश्व सम्मेलन मार्च, 2015 में उत्तरी जापान के सूनामी प्रभावित शहर सेंडाइ में आयोजित किया गया था और सितम्बर, 2015 में सतत विकास के लिए संयुक्त राष्ट्र के 2030 कार्यक्रमों में इसे प्रमुखता के साथ अपनाया गया और दिसंबर, 2015 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 5 नवंबर को प्रति वर्ष विश्व सूनामी जागरूकता दिवस मनाए जाने का निर्णय किया था।

इस संदर्भ में मैं यह कहना चाहूँगा कि आपदा के समय जोखिम में कमी लाना सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा है। बच्चों और नागरिकों के भीतर इसे लेकर जागरूकता होनी चाहिए। जापान में हर साल सरकार और स्थानीय समुदायों की पहल के तहत निकासी अभ्यास यानी किसी जगह से भाग निकलने का अभ्यास आयोजित किया जाता है। इसी प्रकार जापान के कुरोशिओं में विश्व सूनामी जागरूकता दिवस के अवसर पर 25 और 26 नवंबर, 2016 को छात्रों के एक शिखर सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें हिस्सा लेने के लिए दुनिया भर से लगभग 250 उच्च विद्यालय के छात्रों को जापान आमंत्रित किया गया था। भारत के अंडमान व निकोबार द्वीप समूह से भी 5 उच्च विद्यालयों के छात्र इस शिखर सम्मेलन में हिस्सा लिए। इस सम्मेलन में विश्व सूनामी जागरूकता दिवस के युवा राजदूत फील्ड वर्क और विचारों के आदान-प्रदान के द्वारा आपदा जोखिम में कमी के ज्ञान को साझा किया। इस प्रकार जागरूकता से तबाही को कम किया जा सकता है।

(१३)प्रश्नः प्रदूषण को रोकने के मामले पर क्या केंद्र एवं दिल्ली की सरकार जनता से छल कर रही हैं?

उत्तर : राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में वायु प्रदूषण के खतरनाक स्थिति में पहुँचने पर पिछले 4 नवंबर, 2016 को राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण ने जिस लहजे में केंद्र और दिल्ली सरकार को जमकर लताड़ लगाई उससे तो ऐसा ही लगता है कि दोनों सरकारें जनता से छल कर रही हैं, क्योंकि वायु प्रदूषण रोकने की बजाय दोनों सरकारें एक-दूसरे पर जिम्मेदारी थोप रही हैं। राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण (एनजीटी) ने आदेश पर दोनों सरकार को प्रदूषण नियंत्रण पर बैठक करनी थी, परंतु लोगों की सेहत और प्रदूषण की चिंता

किसी को नहीं है और न बच्चों को ही दिए जाने वाले खौफनाक भविष्य की परवाह है इसलिए बैठक नहीं हो सकी।

दिल्ली में दस साल पुरानी डीजल गाड़ियों को भी दिल्ली की सड़कों से हटाना था वह भी अभी तक जब्त नहीं की जा सकीं। इसी प्रकार एनजीटी ने प्रदूषण रोकने के लिए निर्माण कार्यो से उड़ने वाली धूल प्रदूषण रोकने के उपाय करने को कहा था और केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और दिल्ली प्रदूषण नियंत्रण समिति को प्रदूषण पर काबू करने के लिए तुरंत कदम उठाने को कहा था, लेकिन उस दिशा में भी कोई कदम नहीं उठाए जा सके। इसी प्रकार दिल्ली के पड़ोसी राज्य हरियाणा, पंजाब और राजस्थान में फसलों के कचरे को जलाए जाने से राजधानी में वायु की गुणवत्ता बुरी तरह प्रभावित होती है, जिसे रोकने के लिए भी तीनो राज्यों के पर्यावरण सचिव को तलब किया था, फिर भी आज तक कोई कदम नहीं उठाए जा सके। इन सभी हालातों से ऐसा लगता है कि दोनों सरकारें दिल्ली की जनता से छल कर रही हैं।

दिल्ली में प्रदूषण की स्थिति इतनी विकट हो चुकी है कि इसका असर न तो राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र तक सीमित रहेगा और न ही निदान कुछ तात्कालिक कदमों से मुमकिन होगा, बल्कि दिल्ली के लिए जहाँ यह दूरगामी सोच के साथ कड़े कदमों और पर्यावरण कानूनों पर अमल का वक्त है, वहीं दूर बसे शहरों के लिए समय रहते जागने का।

(१४)प्रश्नः क्या आपको ऐसा लगता है कि वायु प्रदूषण सिर्फ हिंदुस्तान की नहीं, बल्कि पूरी दुनिया के लिए चुनौती बन रहा है?

उत्तर: भारत की राजधानी दिल्ली में खासतौर पर दिवाली के बाद वायु प्रदूषण के बढ़ते स्तर से लोगों का दम घुट रहा है। दिल्ली ही नहीं, बल्कि देश के और कई शहर और इलाके इसकी चपेट में हैं। यह भी सच है कि वायु प्रदूषण सिर्फ हिंदुस्तान में ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया के लिए चुनौती बन रहा है। यूनिसेफ के एक रिपोर्ट के अनुसार चौकाने वाली बात यह है कि इस ग्लोबल पॉल्यूशन की वजह से 2012 में हर 8 में से 1 मौत हुई है। पूरे विश्व में इन मौतों का आँकड़ा 7 मिलियन है, जिनमें से 5 साल से कम उम्र के 6 लाख बच्चे शामिल हैं। वायु प्रदूषण से सबसे ज्यादा खतरा बच्चों को है, क्योंकि लंग्स, दिमाग और इम्यून सिस्टम विकासात्मक स्टेज में होते हैं। प्रदूषित हवा के कारण उन्हें अस्थमा या सांस संबंधी कई दिक्कतें भी शुरू हो जाती हैं। कई अध्ययनों में पाया गया है कि प्रदूषण के कारण

छोटे-छोटे पार्टिकल्स दिमाग में रक्त के प्रवाह को बाधित कर सकते हैं, जिससे ब्रेन टिश्यू नष्ट हो सकते हैं या दिमागी विकास बाधित हो सकता है।

अमेरिका स्थित एक स्वास्थ्य संगठन के अध्ययन में दावा किया गया है कि वायु प्रदूषण भारत में पांचवां सबसे बड़ा हत्यारा है, जो हर वर्ष 6 लाख 20 हजार लोगों की जान ले लेता है। साथ ही दिल्ली देश की सबसे गंभीर प्रदूषित क्षेत्रों में से एक है। अन्य 4 सबसे अधिक प्रदूषित क्षेत्रों में गाजियाबाद, ग्वालियर, झारखंड में पश्चिमी सिंहभूमि जिला और रायपुर का नाम लिया गया है।

(१५)प्रश्न: वायु प्रदूषण के जहरीले कण अब इंसानों के दिमाग में भी पाए जाने लगे हैं जिससे सांस से जुड़ी परेशानियाँ ही नहीं हो रहीं, बल्कि आपकी सोचने और समझने की क्षमता को भी प्रभावित कर रहा है। आप कृपा हमें बताएँ कि इंडियन मेडिकल एसोसिऐशन द्वारा इस जहरीली हवा से बचने के लिए कौन-कौन से दिशा निर्देश जारी किए गए हैं?

उत्तर : हाँ, आपने सही कहा कि वायु प्रदूषण के जहरीले कण अब इंसानों के दिमागों में भी पाए जाने लगे हैं, यानी वायु प्रदूषण सिर्फ आपको सासों से जुड़ी परेशानियाँ ही नहीं दे रहा, बल्कि आपकी सोचने और समझने की क्षमता को भी प्रभावित कर रहा है। ये कण अल्जाइमर जैसी दिमागी बीमारियों का कारण भी बन सकते हैं। इसे देखते हुए भारतीय चिकित्सा संघ (आईएमए) ने इस जहरीली हवा से बचने के लिए निम्नांकित दिशा निर्देश जारी किया है-

1. बारीक धूलकण को नंगी आँखों से नहीं देखें।
2. लोग ज्यादा से ज्यादा घर के अंदर रहें और खुले में कसरत न करने की सलाह दी गई है।
3. फिल्टर हवावाले कमरे या इमारत में रहें।
4. सांस तेज करने वाली गतिविधियाँ कम करें और घर में रहकर पढ़ने और टीवी देखने के लिए यह समय बेहतर है।
5. अंगीठी, गैस चूल्हे और मोमबत्ती व अगरबत्ती के पास न बैठें।
6. कमरा साफ रखें और वैक्यूम क्लीन तभी करें जब आपके वैक्यूम में हेपा फिल्टर हो। उसकी बजाय गीला पोछा ठीक रहेगा।
7. धूम्रपान न करें।
8. जब हवा साफ हो तो खिड़कियाँ खोलें।

9. डेस्क मॉस्क पर ज्यादा निर्भर न हों, क्योंकि यह बड़े कण तो रोक सकते हैं, लेकिन छोटे कणों से सुरक्षा नहीं देते।

10. स्कॉर्फ और बँधन भी कारगर नहीं होते।

11.अगर आप कुछ देर के लिए बाहर जा रहे हों, तो रेस्पीरेटर का प्रयोग करें।

12. ऐयर क्लिनर घर पर रखें।

13. मैकेनिकल फिल्टर और इलेक्ट्रॉनिक एयर क्लिनर्स का प्रयोग करें।

14.ओजोनवाले क्लिनर्स न प्रयोग करें।

15. अगर पूरे घर के लिए क्लिनर नहीं ले सकते हैं तो सोने के कमरे में इसे जरूर प्रयोग करें।

16. एसी तभी चलाएँ जब इसमें फिल्टर लगे हों या बाहर से हवा न खींचे।

(१६)प्रश्नः क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि देश में वन, वृक्ष और वन्यजीव लगातार घटते चले जाने की वजह से पर्यावरण का संकट दिनोदिन बढ़ता जा रहा है?

उत्तरः आप भी इस बात से अवगत हैं कि वृक्षों की मानव जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका है और इसके बिना मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती हैं। सच तो यह है कि आम, नीम, पीपल, तुलसी, बरगद आदि ऐसे पेड़-पौधे हैं, जो अत्यधिक ऑक्सीजन छोड़ते हैं। कुछ औषधीय पेड़-पौधे ऐसे हैं जो हिलिंग प्रक्रिया को तेजकर देते हैं। इनमें तुलसी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हरेक पेड़-पौधों में एक विशेष प्रकार की खूशबू होती है, जिसे अरोमा कहा जाता है। यह खुशबू पेड़-पौधों में मौजूद तैलीय पदार्थो के कारण होती है। तुलसी, पीपल, नीम या दूसरे पेड़-पौधे जब ऑक्सीजन छोड़ते हैं, तब उस समय उसके साथ ही वातावारण में यह तैलीय पदार्थ भी फैलता है। उस समय पौधों के आसपास रहने वाले लोग ऑक्सीजन के साथ इन तैलीय पदार्थो को भी ग्रहण करते हैं। इस प्रक्रिया से मानव शरीर और उसके स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

इसके बावजूद आज देश में वृक्षों-वनों की जो दयनीय स्थिति है, उसको लेकर हमारे पर्यावरणविद् वनस्पति विज्ञानी तथा वन्य जीव विशेषज्ञ खासे चिंतित हैं। बीते दिनों आई रपटें सबूत हैं कि आज देश के 21 प्रतिशत भू-भाग पर ही वन बचे हैं। कोई भी राज्य ऐसा नहीं है जहाँ वन संपदा में बढ़ोतरी हुई हो। ऐसी स्थिति में पर्यावरण संकट का दिनोदिन बढ़ना स्वाभाविक है।

(१७)प्रश्नः कुदरत या प्रकृति का कानून था कि हम प्रकृति के नियम को मानें, फिर ऐसा क्या हुआ कि प्रकृति को ही बदलने पर हम आमादा हैं?

उत्तर: आपने सही कहा किं कुदरत या प्रकृति का कानून था कि हम प्रकृति के नियम को मानें, उसके अनुसार चलें और सुरक्षित, स्वस्थ एवं पूर्ण जीवन बिताएँ। सभी जीवों ने ऐसा ही किया आज भी कर रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे, मगर हम मनुष्यों ने इन नियमों को हजारों साल तक तो माना, फिर हम इन्हें तोड़ने लगे और पिछली सदी से हम बहुत दागी हो गए हैं। हमारी बगावत का आलम यह है कि हम खुद अब खुदा बनना चाहते हैं। कुदरत या प्रकृति को बदलने पर आमादा हैं।

इस धरती के जीवों के कार्यकलापों पर जब हम नजर डालते हैं तो पाते हैं कि जानवरों की जीवनशैली और भोजन में कोई परिवर्तन नहीं आया। शेर तब भी शिकार करता था और आज भी गाय तब भी घास खाती थी और अब भी बंदर पहले भी पेड़ों पर उछल-कूद करके फलों और पत्तियों से पेट भरते थे और आज भी, लेकिन हम इंसान पाषाण युग के गुफा मानव से आधुनिक स्मार्ट मानव में बदल गए। हम कंदमूल, मांस और फलों की जगह रोटी, चावल, तेल, घी, पिज्जा, बर्गर, कोल्डड्रिंक और मजे के लिए शराब और ड्रग्स भी लेने लगे। हमने दौड़ने-भागने को छोड़कर जानवरों की सवारी शुरू की और फिर कार-मोटर और हवाई जहाज की यात्राएँ शुरू कर दीं। हमने जंगल के खुले आसमान में पेड़ों और पहाड़ों की तलहटी से गुफा में रहना शुरू कर और फिर झोपड़ियों से होते हुए हम महलों, मकानों एवं फ्लैटों तथा झुग्गियों में रहने लगे। हमने जिंदगी बिताने से आगे बढ़कर अपने ऐशो-आराम के संसाधन भी जुटाए, हम शिकारी और खानाबदोश से व्यापारी बन गए और व्यापारियों को छोड़कर बाकी के लोग मजदूर या कर्मचारी बन गए।

मानव की इस विकास यात्रा से हमें हानि यह हुई कि उसने हमारे स्वास्थ्य को नष्ट किया। विकास के मामले में मंगल ग्रह तक हम पहुँच गए, लेकिन स्वास्थ्य के मामले में पाताल तक धँस गए। आज बच्चे होते ही बीमार हो जाते हैं और जिंदगी भर बीमार रहते हैं, क्योंकि कुदरत की अवहेलना कर प्रकृति के नियम को तोड़ने पर आमादा हो गए हैं।

(१८)प्रश्नः उच्चतर न्यायपालिका को तमाम सख्ती के बावजूद प्रदूषण की रोकथाम के मामले में कोई उल्लेखनीय सुधार होता क्यों नहीं दिख पा रहा है?

उत्तर: प्रदूषण की रोकथाम के लिए न्यायपालिका के स्तर से कई बार आदेश-निर्देश दिए जाते रहे हैं, फिर भी प्रदूषण की समस्या के समाधान में कोई उल्लेखनीय सुधार होता नहीं दिख रहा है जिसके और कारण चाहे जो हों, मगर राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड उन कल-कारखानों पर कोई लगाम नहीं लगा पा रहे हैं जो शोधन संयंत्रों से लैस नहीं या फिर उनका इस्तेमाल केवल दिखावे के लिए करते हैं। कायदे से तो ऐसे कारखाने होने ही नहीं चाहिए जो शोधन संयंत्रों का इस्तेमाल नहीं करते हों, लेकिन सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के अनुसार ऐसे कल-कारखानें अस्तित्व में हैं और वे अपना कचरा नदियों-तालाबों अथवा खुली जगह में बहा रहे हैं जबकि सुप्रीम कोर्ट का स्पष्ट निर्देश है, जिसके अनुसार उन्हें यह भी अधिकार दिया गया है कि वे शोधन संयंत्र न लगाने वाले कारखानों की बिजली आपूर्ति रोक दें।

वस्तुस्थिति यह है कि प्रदूषण नियंत्रण बोर्डो का तो प्राथमिक दायित्व ही यह है कि वे सभी कारखानों को न केवल शोधन संयंत्रों से लैस कराएँ, बल्कि यह भी देखें कि वे सही-सही तरह से काम कर रहे हैं या नहीं? इस दायित्व की इस तरह अनदेखी की जा रही है, इसका प्रमाण है गंगा एवं अन्य तमाम नदियों का प्रदूषण। नदियों के प्रदूषण में एक बड़ा हाथ उनके तट पर स्थापित उद्योग हैं। यदि सुप्रीम कोर्ट औद्योगिक कचरे को लेकर गंभीर है, तो फिर उसे राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्डो की सुस्ती और नाकामी के लिए राज्य सरकारों की भी खबर ली जानी चाहिए। यह भी ठीक नहीं कि उन्हें चेतावनी देकर कर्तव्य की इतिश्री कर ली जाती है। सुप्रीम कोर्ट ने हाल में भी उद्योगों से निकलने वाले कचरे पर सख्ती की है। दरअसल, अदालतों के पास भी ऐसी कोई व्यवस्था नहीं जिससे वे यह देख सकें कि उनके आदेशों का पालन हो रहा है या नहीं? चूँकि प्रदूषण की रोकथाम के मामले में उच्चतर न्यायपालिका की तमाम सख्ती के बावजूद हालात बदले नहीं इसलिए बेहतर होगा कि सुप्रीम कोर्ट यह भी देखे कि उसका दखल समस्या के समाधान में सहायक क्यों नहीं बन पा रहा?

आखिर तभी तो सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश जे. एस. खेहर ने विगत 22 फरवरी, 2017 को नदियों को प्रदूषित कर रही औद्योगिक इकाइयों से जुड़े मामले की सुनवाई के दौरान यह टिप्पणी की-'किसी वजह से लोगों की जिंदगी खराब हो रही है तो समझिए कि सब दिक्कत ही दिक्कत है। सरकारों को आमजनता के हालात छोड़कर बाकी सभी दिक्कतें दिखती हैं।' कोर्ट ने प्रदूषण फैलाने वाली औद्योगिक इकाइयों को तीन महीने

में अपने यहाँ प्राइमरी एफलेंट ट्रीटमेंट प्लांट लगाने को कहा है। इसके बाद जिस इकाई में प्लांट नहीं मिलेगा, उसकी बिजली काट दी जाएगी। उन्होंने पुनः कहा कि नदियों में उद्योगों का गंदा पानी डालना गंभीर समस्या है। ट्रीटमेंट प्लांट नहीं लगाने वालों को उद्योग चलाने की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए।

(१९)प्रश्नः जिस तरह भारत सहित पूरी दुनिया से पानी गायब होता जा रहा है उसे देखते हुए क्या आपको ऐसा लगता है कि पानी आने वाले समय में झगड़ों का सबसे बड़ा कारक बनेगा? पानी की इस कमी को दूर करने के कौन-कौन से उपाय किए जा सकते हैं?

उत्तरः हाँ, मैं भी यह महसूस करता हूँ कि भारत सहित पूरी दुनिया से जिस तरह पानी गायब होता जा रहा है उसे देखते हुए पानी आने वाले समय में झगड़ों का सबसे बड़ा कारक बनेगा। भारत में तो पानी को लेकर आज ही राज्यों के बीच झगड़ा शुरू हो गया है। अब पानी की किल्लत और लड़ाई सिर्फ गली-कूचों तक ही सीमित नहीं रहने वाली। यमुना नदी के पानी को लेकर हरियाणा, पंजाब और दिल्ली का झगड़ा हो या काबेरी के पानी के लिए कर्नाटक और तमिलनाडु की लड़ाई तो पहले से ही चल रही है। इसी प्रकार ब्रह्मपुत्र के पानी के लिए चीन, भारत और बांग्लादेश के बीच भी झगड़ा हो रहा है। आजकल तो महाराष्ट्र के खासतौर पर मराठवाड़ा के कई जिलों में धारा 144 इसलिए लगा दी गई है, क्योंकि पानी को लेकर झगड़े हो रहे हैं। ये झगड़े कदापित थमने वाले नहीं हैं और आगे देश के दूसरे हिस्सों में भी ऐसी खबरें आनी शुरू होंगी।

दरअसल, विगत तीन-चार दशकों में जनसंख्या में वृद्धि और विभिन्न कारणों से पानी की उपयोगिता बढ़ी है और भूगर्भ जल का दोहन भी लगातार हो रहा है। पहले पानी केवल पीने और सिंचाई के लिए इस्तेमाल हुआ करता था, किंतु अब पानी स्वयं ही उद्योगी उत्पाद के रूप में हमारे आपके सामने हैं। जो पानी पोखरों, तालाबों या फिर नदियों और कुओं में होना चाहिए था वह अब बोतलों में कैद होकर हमारे सामने आ रहे हैं। बोतल बंद पानी का व्यापार और काफी फलने-फूलने वाला है, क्योंकि पानी के लिए अब पोखरों, तालाबों और कुओं के पनघट पर भीड़ देखने को नहीं मिलती, बल्कि लोगों की प्यास बोतलों में बंद पानी पर टिकी है। आखिर क्यों?

मौजूदा दौर में पानी की किल्लत के पीछे के कारणों में हम जाते हैं तो पाते हैं कि टेनरी, चमड़ा उद्योग, दवा फैक्ट्री आदि में पानी की खपत

तेजी से बढ़ी है। एक ताजा रपट के अनुसार भारत सहित दुनिया के दस देशों में पानी की स्थितियाँ इतनी बिगड़ चुकी हैं कि आज साफ पानी पीने के लिए उपलब्ध नहीं हो पा रहे हैं। इस रपट में कहा गया है कि 76 लाख भारतीय पीने के साफ पानी से वंचित हैं और इसी वजह से यहाँ प्रतिवर्ष लगभग 14 लाख बच्चे दूषित पानी के कारण काल के गाल में समा जाते हैं।

पानी से जुड़ी समस्या पर यदि आप गौर करें तो जलवायु परिवर्तन या धरती के बढ़ते तापमान (ग्लोबल वार्मिंग) की वजह से भी कुएँ, तालाब, पोखर आदि परंपरागत पानी स्रोत सूखते जा रहे हैं, पहाड़ों में तेजी से जलधाराएँ गायब होती जा रही हैं और भूमिगत जल स्तर के लगातार गिरते जाने की वजह से भी जलसंकट खड़ा हुआ है। इसके लिए जरूरत इस बात की है कि देश में सही जल प्रबंधन की कमी दूर किए जाएँ तथा जल संरक्षण के उपाय किए जाएँ, क्योंकि जलवायु परिवर्तन को जल केंद्रित दृष्टि से देखना जरूरी होगा। इसके अतिरिक्त रेनवाटर हार्वेस्टिंग को मजबूत करने के उपाय सोचने होंगे।

इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि आजादी के अड़सठ साल बीत जाने के बावजूद सरकारें हमारी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने में नाकामयाब रही हैं। पानी को लेकर कई राज्यों में युद्ध जैसी स्थिति है। ऐसी स्थिति में जल संरक्षण हमारी जिम्मेदारी है और जलअपव्यय रोकने से मुँह मोड़ लेना अपने भविष्य के साथ खिलवाड़ करने जैसा है। महाराष्ट्र के लातूर में लोग पानी के लिए रात-रात भर जाग रहे हैं तब जाकर उन्हें सुबह तक पानी मिल रहा है। खुद दिल्ली के कई क्षेत्रों में लोग घंटों तक टैंकर के आने का इंतजार करते हैं और आते ही ऐसे टूट पड़ते हैं जैसे कुबेर का खजाना मिल गया हो।

(२०)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि कभी समाज को जीवन देने वाले बेंगलुरु की बेलंदूर झील के नैसर्गिक ढाँचे से की गई छेड़छाड़ और उसमें बेपनाह जहर मिलाने से नाराज तालाब ने ही आग उगलकर अपनी चिनगारियों से समाज को चेताया है?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा ही लगता है कि कभी समाज को जीवन देने वाले बेंगलुरु की बेलंदूर झील के नैसर्गिक ढाँचे से की गई छेड़छाड़ और उसमें बेपनाह जहर मिलाने से नाराज झील ने ही आग उगलकर अपनी चिनगारियों से समाज को चेताया है। हुआ यह कि विगत 16 फरवरी, 2017 को बेहतरीन मौसम के लिए मशहूर बेंगलुरु की झील की सतह से शाम पाँच बजे पहले लपटें उठीं और बाद में धुएँ की गहरी भूरी-बदबूदार परत ने पूरे इलाके को ढँक लिया जिसका असर कई किलोमीटर तक रहा, जिससे लोगों

को सांस लेने में परेशानी हुई और यातायात प्रभावित हुआ। हालात सामान्य होने में कई घंटे लग गए। पता चला कि झील के तट को नगर निगम ने कूड़ाघर में तब्दील कर रखा है। उस दिन उसी कूड़ाघर में आग लगा दी गई थी, जिसकी लपटों से झील पर बिछी रसायन की परत ने आग पकड़ ली।

दरअसल, देश के सबसे खूबसूरत महानगर कहे जाने वाले बेंगलुरु की फिजा अब बदल चुकी है। यहाँ भीषण गर्मी पड़ने लगी है और थोड़ी सी बारिश में जल–प्लावन जैसी स्थिति आ जाती है। बिसरा दी गई बेलंदूर झील शहर के दक्षिण–पूर्व में स्थित है और आज भी यहाँ की सबसे बड़ी झील है। इसमें आग अचानक नहीं लगी। इससे पहले भी 26 अप्रैल, 2015 को वर्तुर झील में भी कई–कई फुट ऊँचे सफेद झाग के जंगल खड़े हो गए थे। जानलेबा बदबू और उसके पानी से शरीर पर छाले पड़ने का नजारा घंटों तक देखा गया था। जब हंगामा हुआ, तो जिम्मेदार महकमों ने एक–दूसरे के ऊपर दोषारोपण करके अपना पल्ला झाड़ लिया था। मई, 2016 में भी पानी से धुआँ उठने और चिनगारी जैसी कई घटनाएँ सामने आई थीं।

परिस्थितिकी विज्ञान केंद्र के पर्यावरण वैज्ञानिक प्रो. वी. रामचंद्र के नेतृत्व में किए गए शोध के चौकाने वाले निष्कर्ष में पाया गया कि औद्योगिक इकाइयों में बनने वाले डिटर्जेंट में फॉसफोरस की मौजूदगी होती है, जिससे फैक्टरियों से निष्कासित प्रवाह के जरिए पानी पर फोम का निर्माण होता है, जो आग का कारण बनता है। वर्तुर झील के शोध में निकला कि इन झीलों का पानी सिंचाई और घरेलू उपयोग के अनुकूल तो नहीं ही है, इनसे भू–जल दूषित होने के भी आसार पैदा हो गए हैं। शोध में कई खतरों की ओर इशारा किया गया था। और यह तो सामने आ चुका है कि बेलंदूर झील में आग लगने का कारण इलाके के कारखानों और गैराज से बहे डीजल, पेट्रोल, ग्रीस, डिटर्जेंट और जल–मल हैं और मिथेन की परत के जल के ऊपरी स्तर पर बढ़ जाने से आग लगी। बेलंदूर की घटना बेंगलुरु ही नहीं, तेजी से विकसित हो रहे तमाम शहरों के लिए चेतावनी है कि यदि अब भी तालाबों व झीलों के अतिक्रमण व उनमें गंदगी घोलने का काम बंद न किया गया तो आज दिख रही छोटी सी चिनगारी कभी भी ज्वाला बन सकती है, जिसमें जल संकट, बीमारियाँ, पर्यावरण असंतुलन की लपटें होंगी।

(२१)प्रश्नः उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय द्वारा गंगा और यमुना को जीवित व्यक्तियों सरीखे कानूनी अधिकार दिए जाने के फैसले को क्या आप ऐतिहासिक मानते हैं? आखिर क्यों?

उत्तर: हाँ, मैं मानता हूँ कि अभी हाल में उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय, नैनीताल द्वारा गंगा और यमुना को जीवित व्यक्तियों सरीखे कानूनी अधिकार प्रदान किये जाने का फैसला ऐतिहासिक है, क्योंकि इस फैसले से नदियों की महत्ता को नए सिरे से रेखांकित किया जा सकता है। उम्मीद की जानी चाहिए कि इस फैसले से केंद्र सरकार के साथ-साथ सभी राज्य सरकारें भी चेतेंगी और नदियों को साफ-सुथरा रखने के प्रति ईमानदारी के साथ सक्रिय होंगी।

यह संभवत: दूसरा ऐसा उदाहरण है जब नदियों को जीवित व्यक्तियों जैसा अधिकार दिया गया है। इसके पहले हाल में न्यूजीलैंड की वांगानुई नदी को ऐसा ही अधिकार वहाँ की संसद ने प्रदान किया है। न्यूजीलैंड की इसी वांगानुई नदी का नजीर देते हुए हरिद्वार निवासी मो. सलीम की जनहित याचिका पर विगत 20 मार्च, 2017 को नैनीताल उच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीश राजीव शर्मा एवं न्यायाधीश आलोक सिंह की एक खंडपीठ ने आदेश दिया। माननीय न्यायाधीशों ने गंगा-यमुना नदी को जीवित मानते हुए केंद्र सरकार को इन्हें इंसानों की तरह अधिकार देने के आदेश दिए हैं। साथ ही गंगा से निकलने वाली नहरों आदि संपत्ति का बंटवारा आठ सप्ताह में करने के आदेश भी दिए हैं। अदालत ने देहरादून के जिलाधिकारी को 72 घंटे के भीतर शक्ति नहर ढकरानी को अतिक्रमण मुक्त करने के सख्त निर्देश जारी किए हैं।

गंगा-यमुना को दिए गए अधिकार का उपयोग तीन सदस्यीय समिति करेगी यानी यह समिति इन नदियों को क्षति पहुँचाए जाने से संबंधित सभी मुकदमों की पैरवी करेगी जिसमें उत्तराखण्ड के मुख्य सचिव, नैनीताल उच्च न्यायालय के महाधिवक्ता और नमामी गंगे प्राधिकरण के महानिदेशक शामिल किए गए हैं।

दरअसल, अदालत के पास किसी को भी वैधानिक व्यक्ति का दर्जा देने का अधिकार है। इसी आधार पर गंगा-यमुना केवल नदी ही नहीं है, बल्कि इस देश की संस्कृति की प्रतीक एवं पर्याय है। एक विशाल आबादी के लिए वे जीवनदायिनी भी है और आस्था का केंद्र भी। आवश्यक केवल यह नहीं है कि नदियों के अविरल धारा की चिंता की जाए, बल्वि, यह भी है कि उनके परिस्थितिकी तंत्र को सहेजने की कोशिश की जाए। बिना ऐसा किए नदियों के धार्मिक, सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक महत्व को बचाए रखना मुश्किल होगा। इसलिए गंगा-यमुना को प्रदूषण के साथ-साथ अतिक्रमण से बचाने की पहल इस रूप में होनी चाहिए कि उनका प्रवाह

बाधित न होने पाए। इस दृष्टि से अदालत का फैसला ऐतिहासिक है।

नैनीताल उच्च न्यायालय ने जनहित याचिका पर एक और ऐतिहासिक फैसला देते हुए पतित पावनी गंगा नदी के संरक्षण के लिए गंगोत्री-यमुनोत्री व अन्य ग्लेशियरों, नदी-नालों, गाड-गंदेरों (बरसाती नालों), तालाब, वायु, जंगल, घास के मैदान और झरनों को भी जीवित व्यक्ति का दर्जा प्रदान किया तथा उसे मौलिक अधिकार दे दिया। उच्च न्यायालय ने कहा कि जो कोई भी उन्हें नुकसान पहुँचाता है, उनके खिलाफ कार्रवाई की जाए। गंगा में गंदगी डालने वाले प्रतिष्ठानों को तत्काल सील करने के आदेश दिए गए।

अदालत ने यह भी सुनिश्चित करने को कहा है कि गंगा नदी में किसी भी दशा में सीवरेज न जाने पाए।

(२२)प्रश्नः क्या वायु प्रदूषण की तरह ध्वनि प्रदूषण भी महानगरवासियों को काफी तेजी से परेशान कर रहा है? आखिर कैसे?

उत्तर: हाँ, वायु प्रदूषण की तरह ध्वनि प्रदूषण भी महानगरवासियों को काफी तेजी से परेशान कर रहा है, क्योंकि वायु प्रदूषण तो महानगरवासियों को दमा से लेकर कैंसर तक के कई घातक रोग दे ही रहा है और अभी तक न इन रोगों का न कोई अंतिम इलाज ढूँढ़ा जा सका है और न ही इस प्रदूषण का कोई पक्का समाधान मगर शहर की सड़कों, चौराहों और पार्कों सहित कॉलोनियों में कानफोड़ ध्वनि से हमारा हमेशा ही साबका पड़ता रहता है।

नॉटिघंम ट्रेंट विश्वविद्यालय के एक शोध के अनुसार ध्वनि के स्तर में अचानक कमी या बढ़ोतरी दिल के लिए आफत का काम करती है, क्योंकि ध्वनि के स्तर का अचानक बदलाव हृदय की लय बिगाड़ देता है। शहर के ट्रैफिक में हर रोज 45 मिनट यात्रा करना हृदय की लय को बिगाड़ने के लिए काफी है। वैज्ञानिकों ने यह भी पता लगाया है कि हमारा दिल शोर का ही नहीं, प्रकाश और वायु के दबाव का भी बहुत तेज उतार-चढ़ाव नहीं झेल पाता, इससे भी उसकी लय बिगड़ती है।

ध्वनि प्रदूषण के संदर्भ में मैं आपको एक और बात बताना चाहता हूँ जिसकी ओर पता नहीं आपका ध्यान गया है या नहीं। आपने देखा होगा ट्रैफिक की ध्वनि के अतिरिक्त आजकल चादर, मच्छड़दानी, तकिए, टीवी, वासिंग मशीन आदि के कभर बेचने वाले से लेकर छोहाड़ा, किशमिश के बिक्रेता भी अपने ठेले में छोटे-छोटे साउन्ड मशीन के साथ माईक लगाकर अपनी तेज आवाज से लोगों की नींद खराब करते देखे जा रहे हैं जिससे ध्वनि प्रदूषण फैल रहा है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि दुनिया के

न्यूयॉर्क जैसे बड़े शहरों की तरह देर-सबेर हमारे शहरों को भी बढ़ते शोर को लेकर गंभीर होना ही पड़ेगा।

(२३)प्रश्नः क्या आज यह वही दिल्ली है जहाँ की नर्म गुनगुनी धूप कभी चहलकदमी के लिए प्रेरित करती थी? यदि नहीं तो पर्यावरण को नुकसान करने वाली ताकतों से कैसे बचा जाए?

उत्तरः आनन्द वर्द्धन जी, दिल्ली के निवासी होने की वजह से आप इस बात से अवगत हैं कि दिल्ली तथा एनसीआर के लोग धनतेरस से ही पटाखे छोड़ने के आदी होते हुए भी इस बार यानी 2017 की दिवाली के मौके पर ऐसा नहीं कर पाए। लगा कि देश की शीर्ष अदालत का फैसला रंग लाया है। इसके कारण में जाने पर ऐसा नहीं लगता कि बिक्री पर बंदिश की वजह से पटाखों की उपलब्धता कम हो गई या लोगों में जागृति आ गई, क्योंकि दिल्ली की रात नौ बजे से जो जोर-शोर शराबा वह आधी रात तक जारी रहा। इस तरह के पटाखे छोड़े गए देर तक आवाज करने वाले, दूर तक आवाज करने वाले और अधिक से अधिक पदूषण फैलाने वाले। कुछ लोगों ने इसे धार्मिक अस्मिता का सवाल बना रखा था।

जहाँ तक मैं समझता हूँ कि प्रकृति पूजकों के देश में पर्यावरण को नुकसान पहुचाने वाली कोई हरकत भले ही किसी भी धर्म के लोग करे, इसकी प्रशंसा कैसे की जा सकती है। इस धूम-धड़ाके के पर्यावरण को जो नुकसान पहुँचता है, वह अपनी जगह है, परन्तु छोटे बच्चे, बीमार और बुजूर्ग जो कष्ट पाते हैं, उन पर लोगों की नजर क्यों नहीं जाती?

प्रदूषण के संदर्भ में आए आँकड़ों पर जब हम नजर डालते है तो वल्लभभाई पटेल चेस्ट इंस्टीच्यूट, ऑल इंडिया इंस्टीच्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज और सर गंगा राम अस्पताल के डॉक्टरों ने अपने अध्ययन में पाया है कि राजधानी के युवाओं में तेजी से फेफड़े का कैंसर पनप रहा है। पहले इस बीमारी से ग्रस्त 90 फीसदी लोग धूम्रपान के लती होते थे, जबकि शेष 10 फीसद मरीजों पर यह प्रकोप किसी अन्य वजह से टूटता था। ताजा अध्ययन में पाया गया कि एक सौ में से चालीस लोग ऐसे है, जो बिना धूम्रपान के इसका शिकार बन गए। पहले की तुलना में अब 30 से 45 वर्ष तक की उम्रवाले इसकी चपेट में आ रहे हैं जिसका प्रमुख कारण हवा में दिनोदिन बह हरे जहरीले रसायन है। इसलिए इसे देखते हुए यह नहीं लगता कि यह वही दिल्ली है, जहाँ की नर्म गुनगुनी धूप कभी चहलकदमी के लिए प्रेरित करती थी।

आनंदवर्द्धन जी, इस दृष्टिकोण से मेरा कहना है कि दीपावली असत् पर सत् की जीत का पर्व है, तो हम उससे अपने अंतस में पसर रहे अंधकार से लड़ने की प्रेरणा लेने का प्रयास करे और जन-विकृति का रास्ता चुनने की बजाय जन-जागृति का रास्ता अपनाएँ। इसके साथ ही धार्मिक तुष्टीकरण के नाम पर मौकापरस्त लोगों को खुलकर खेलने की छूट पर पाबंदी लगायी जाए।

(२४)प्रश्न: यदि देश की राजधानी दिल्ली को घातक प्रदूषण से नहीं बचाया जा सकता, तो फिर यह उम्मीद कैसे की जाए कि दूसरे शहरों में प्रदूषण की रोकथाम सही तरह से हो सकेगी?

उत्तर: डॉ. रविन्द्र जी, आपका यह कहना सही है कि यदि देश की राजधानी दिल्ली को घातक प्रदूषण से नहीं बचाया जा सकता, तो फिर यह उम्मीद कैसे की जाए कि दूसरे शहरों में प्रदूषण की रोकथाम सही तरह से हो सकेगी, क्योंकि तमाम सतर्कता के बावजूद अगर दिल्ली में वायु प्रदूषण इतने खतरनाक स्तर तक पहुँच गया कि छोटी कक्षाओं के विद्यालय बंद करने का फैसला लेना पड़ा, तो इसका सीधा मतलब है कि प्रदूषण की रोकथाम के जरूरी उपाय नहीं किए गए। यदि प्रदूषण रोकने के मामले में वैसी ही हीलाहवाली की जाती रही जैसी दिल्ली में देखने को मिली तो यह तय है कि राजधानी जैसी स्थिति देश के अन्य हिस्सों और खासकर उत्तर भारत में भी देखने को मिलेगी।

दरअसल, होना तो यह चाहिए कि सभी राज्य अपने-अपने स्तर पर प्रदूषण की रोकथाम के लिए कमर कसें, लेकिन इसके आसार कम ही हैं, क्योंकि यदि राज्यों ने प्रदूषण की रोकथाम के मामलों में अपनी जिम्मेदारी सही तरह से समझी होती तो शायद दिल्ली में खतरे की घंटी नहीं बजती। यह एक तथ्य है कि पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और राजस्थान में इस बार भी किसानों को फसलों के अवशेष यानी पुआल जलाने से रोका नहीं जा सका। नि:संदेह केवल हरियाणा और पंजाब को दोष देकर कर्तव्य की इतिश्री नहीं की जा सकती, क्योंकि प्रदूषण का एक मात्र कारण पुआल जलाना नहीं। वायु प्रदूषण गंभीर रूप तब लेता है जब वायुमंडल में वाहनों के उत्सर्जन, कल-कारखानों के धुएँ और सड़कों एवं निर्माण स्थलों से उड़ने वाली धूल की मात्रा बढ़ जाती है। यदि हरियाणा और पंजाब की सरकारें पुआल जलाए जाने पर रोक नहीं लगा सकीं, तो दिल्ली सरकार और केंद्र सरकार भी राजधानी को वाहनों के उत्सर्जन और धूल-धुएँ से बचाने के

थाम कहाँ कर पाई? इस मामले में राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण और सर्वोच्च न्यायालय की सक्रियता भी कारगर साबित नहीं हुई।

दिल्ली सरकार और केंद्र सरकार को प्रदूषण की रोकथाम के मामले में एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए था, लेकिन ऐसा लगता है कि दोनों सरकारें एक-दूसरे पर दोषारोपण करने तक ही सीमित रहना चाहती है। आखिर पर्यावरण मंत्रालय देश की राजधानी में भी निष्प्रभावी क्यों है? ऐसे ही सवाल के जवाब दिल्ली सरकार को भी देने होंगे, क्योंकि उसने कहीं ज्यादा नाकामी का परिचय दिया है। दिल्ली की सड़कों को धूल-धुएँ के गुबार से बचाने की उसकी घोषणाएँ हवा-हवाई क्यों साबित हुई?

(२५)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि आज जर्मनी के बॉन शहर में ६ नवम्बर, २०१७ को शुरू हुई संयुक्त राष्ट्र की कॉंफ्रेंस ऑफ पार्टीज की जलवायु परिवर्तन वार्ता की सबसे बड़ी चुनौती पेरिस समझौते की मूल भावना को बचाए रखने की पैदा हो गई है? उत्तर भारत जिस तरह प्रदूषण की चपेट में आ गया है उसे देखते हुए क्या बॉन पर्यावरण सम्मेलन से उम्मीदें ज्यादा नहीं बढ़ गई हैं?

उत्तर: भाई इन्दु शेखर जी, मुझे भी ऐसा लगता है कि जर्मनी के बॉन शहर में विगत 6 नवंबर 2017 से शुरू हुई संयुक्त राष्ट्र की कॉंफ्रेंस ऑफ पार्टीज की जलवायु परिवर्तन वार्ता की सबसे बड़ी चुनौती पेरिस समझौते की मूल भावना को बचाए रखने की पैदा हो गई है, क्योंकि खासतौर पर अमेरिका में सत्ता परिवर्तन के बाद डोनाल्ड ट्रंप के राष्ट्रपति होने पर उनके द्वारा पेरिस समझौते से अलग होने की घोषणा किए जाने के बाद जैसे बम फुट गया। खतरा यह है कि अमेरिका की देखादेखी कई और विकसित देश अपनी जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ सकते हैं। ऐसा हुआ तो भारत जैसे अनेक गरीब और विकासशील देशों की चिंताएँ बढ़ेंगी। दूसरी बात यह कि सन् 2100 तक वैश्विक तापमान की बढ़ोतरी को दो डिग्री से नीचे रखने का जो समझौता हुआ उस पर अमल किया जाए, क्योंकि आज जैसी रफ्तार से तापमान में वृद्धि हो रही है उससे तो यह वृद्धि तीन डिग्री से भी ज्यादा होने की आशंका है। ऐसी स्थिति में जब हर जलवायु परिवर्तन वार्ता पर सहमतियों पर कार्रवाई का मौका आता है तो विश्व समुदाय में वार्ता के दौरानवाली एकजुटता गायब हो जाती है।

पेरिस जलवायु समझौते पर 190 देश सहमति जता चुके थे और इसके क्रियान्वयन पर आगे बढ़ रहे थे, लेकिन इसमें आया गतिरोध भारत

के लिए अच्छा नहीं है खासकर उस स्थिति में जब उत्तर भारत प्रदूषण की भारी चपेट में आने पर भारत खुद बढ़-चढ़कर उस समस्या से निपटने के लिए कार्य कर रहा हो। हमारे जैसे अन्य देशों के लिए भी यह चिंता की बात है। दरअसल, हमारे देश में पिछले कुछ साल से मौसम का जो रूद्ररूप दिख रहा है, वह किसी से छिपा नहीं है। मुंबई की बारिश हो, केदारनाथ की तबाही हो या चेन्नई की हालिया तबाही वाली बारिश हो। दिल्ली में छाई प्रदूषण की परत को जलवायु परिवर्तन से कैसे मान लें? किसानों के पुआल जलाने, निर्माण गतिविधियों या वाहनों की संख्या कोई साल-दो-साल के भीतर पैदा हुई समस्याएँ तो हैं नहीं, लेकिन धुंध की परत कुछ वर्षों से ही क्यों बन रही है।

दरअसल, मौसम का मिजाज बदला है, जो प्रदूषण को छँटने नहीं दे रहा है, यानी खतरा भारत पर इसलिए बढ़ा है, क्योंकि यहाँ आबादी ज्यादा है, संसाधन कम। ऐसी स्थिति में जर्मनी के बॉन शहर में हो रही जलवायु परिवर्तन पर वार्ता से भारत की उम्मीदें बढ़ गई हैं।

(२६)प्रश्नः नदियों की तरह क्या हम स्वाभाविक रूप से अंतिम स्रोत को पा लेंगे या रास्ते में ही भटक जाएँगे? पानी कम नहीं हो इसके लिए सबसे आसान हल क्या है?

उत्तरः आजादी के समय हर आदमी के लिए जितना पानी था, अब उसका 25 प्रतिशत ही रह गया है। हमारी जरूरत का लगभग 65 प्रतिशत पानी नदियों से आता है, जो सूखने की कगार पर हैं। अगर हमने समय रहते कदम नहीं उठाया तो हम अगली पीढ़ी को ऐसी विरासत सौंपकर जाएँगे जो संघर्ष और अभाव से भरी होंगी। हम पानी सिर्फ अपने घरेलू कामों के लिए ही नहीं, बल्कि 80 फीसदी पानी अन्न उगाने के काम में आता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस तेजी से नदियाँ सूख रही हैं उससे तो ऐसा लगता है कि हम रास्ते में ही भटक जाएँगे। नदियाँ तो समुद्र में मिलने के लिए आगे बढ़ रही हैं, लेकिन हम उलटा कर रहे हैं। दरअसल जितना हम प्रकृति से दूर होंगे, उतने हम 'स्वभाव' से दूर होंगे और जितना हम अपने आपसे दूर होते जाएँगे उतने हम अपने आसपास के जीवन के स्वरूपों के प्रति संवेदनहीन होते जाएँगे। इसलिए रास्ते में ही भटकने की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर है।

पानी कम नहीं हो पाए इसके लिए सबसे आसान हल यह है कि नदी के दोनों तटों पर कम से कम एक किलोमीटर की चौड़ाई में और छोटी

नदियों के लिए आधे किलोमीटर की चौड़ाई में पेड़ लगाए जाएँ। दरअसल, हम सोचते हैं कि पानी की वजह से पेड़ होते हैं। नहीं हमलोगों की यह सोच गलत है। सच तो यह है कि पेड़ों के कारण पानी होता है। बारिश होने पर पेड़ों की जड़ें पानी सोख लेती हैं और धरती में पानी जमा हो जाता है। यह पानी जमीन के अंदर रिस रिसकर नदी में पहुँचता है और नदी में बारहों महीने पानी बहता रहता है। पेड़ नहीं होंगे, तो जमीन बारिश के पानी को नहीं सोख सकती। तब मानसून में पानी जमीन के ऊपर-ऊपर बहेगा व बाढ़ आ जाएगी और गर्मी के मौसम में सूखा पड़ जाएगा।

(२७)प्रश्न: सरकारों द्वारा पर्यावरण की रक्षा के लिए नित नयी परियोजनाएँ लाने के बावजूद दुनिया में हरित चादर का आवरण क्यों घटता जा रहा है?

उत्तर: नेचर जर्नल की एक रिपोर्ट के अनुसार दुनिया भर में पाँच अरब पेड़ प्रति वर्ष लगाए जा रहे हैं जबकि हर साल 10 अरब पेड़ का नुकसान हो रहा है। यानी प्रति व्यक्ति दो पेड़ से भी ज्यादा का नुकसान हर साल हो रहा है। जहाँ तक भारत का सवाल है, यहाँ अब प्रति व्यक्ति सिर्फ 28 पेड़ बचे हैं और उनकी संख्या साल-दर-साल कम होती जा रही है। समय रहते यदि अब भी नहीं चेते तो मनुष्य का अस्तित्व खतरे में होगा। नेचर जर्नल की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया भर में एक व्यक्ति के लिए 422 पेड़ मौजूद हैं। पेड़ों की संख्या के मामले में रूस सबसे आगे है। रूस में करीब 641 अरब पेड़ हैं, जो किसी भी देश से ज्यादा हैं। इसके बाद 318 अरब पेड़ों के साथ कनाडा दूसरे तथा 301 अरब पेड़ों की संख्या के साथ ब्राजील तीसरे स्थान पर है। अमेरिका 228 अरब पेड़ों की संख्या के साथ चौथे स्थान पर है। अन्य देशों की तुलना के वैश्विक अनुपात के अनुसार भारत में सिर्फ 35 अरब पेड़ हैं यानी एक व्यक्ति के लिए केवल 28 पेड़।

नेचर जर्नल की रिपोर्ट के अनुसार मानव सभ्यता की शुरुआत से लेकर आज तक 3.04 लाख करोड़ पेड़ काटे जा चुके हैं यानी अबतक 46 प्रतिशत तक पेड़ों की संख्या में कमी आ चुकी है। इसके मद्देनजर न सिर्फ पेड़ों को लगाने की जरूरत है, बल्कि उसकी देखभाल भी जरूरी है, क्योंकि पेड़ों की कमी होते चले जाने से प्रदूषण का खतरा बढ़ता जा रहा है और लोग मौत के मुँह में जा रहे हैं। ये मौतें वायु, जल और अन्य प्रदूषण की वजह से हो रही है। चिकित्सीय पत्रिका के अनुसार हर साल वायु प्रदूषण के कारण दस लाख से ज्यादा भारतीय मारे जा रहे हैं। उत्तर भारत में छाया

स्मॉग भारी नुकसान कर रहा है और हर मिनट भारत में दो जिन्दगियाँ वायु प्रदूषण के कारण चली जाती हैं।

सेटेलाइट सिस्टम से पौधों की निगरानी के दावे हवा-हवाई साबित हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में पर्यावरण के प्रति लोंगों को अपनी जिम्मेदारी निभानी होगी और लोगों को अधिक से अधिक पेड़ लगाने होंगे, ताकि देश में पर्यावरण की स्थिति सुधरे।

(२८)प्रश्नः बहुप्रचारित प्रदूषण कितने प्रकार के हैं? प्रदूषण की समस्याएँ विगत कितने वर्षों से हैं?

उत्तरः भाई रविन्द्र जी, आप तो प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड से जुड़े हैं, मुख्य तौर पर बहुप्रचारित प्रदूषण के निम्नलिखित प्रकारों पर हमारा ध्यान गया है-

(i) वायु प्रदूषणः मुख्य रूप से कार्बन मोनोक्साइड, सल्फर डायक्साइड, क्लोरो फ्लूओरो कार्बन्स और नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसे रसायन, जो उद्योगों और परिवहन द्वारा वायु में छोड़े जाते हैं। इनकी वजह से कोहरा और ओजोन परत में, जो हमारी सूर्य के तीखेपन से रक्षा करती है, छेद जैसी समस्याएँ पैदा हो गई हैं। 1952 में लंदन में 'ग्रेटस्मोग' का ऐसा संकट पैदा हो गया था, जिसमें 4000 व्यक्तियों की मृत्यु हो गई थी।

(ii) प्रकाश प्रदूषणः यह ऐसा प्रदूषण है, जिसमें प्रकाश की अधिकता के कारण आँखें चौंधिया जाती हैं।

(iii) कूड़ा-करकट प्रदूषणः यह सबसे उजागर प्रदूषण है, जो प्लास्टिक के कारण विकराल समस्या बन रहा है।

(iv) ध्वनि प्रदूषणः कल-कारखानों में हवाई जहाजों, परिवहन, लाउड स्पीकरों आदि के वजह से कान-फोड़ प्रदूषण है।

(v) धरती प्रदूषणः तरह-तरह के रसायनों के रिसने की वजह से धरती इतनी प्रदूषित हो रही है कि उसपर उगने वाली वनस्पतियाँ स्वास्थ्य के लिए घातक होती जा रही हैं। अब तो कीटनाशक दवाएँ सबसे बड़ा खतरा बन गई हैं।

(vi) रेडियोधर्मी प्रदूषणः परमाणु अस्त्रों के प्रयोग से ऐसा प्रदूषण, जो प्रायः नियंत्रित ही नहीं किया जा सकता है। तभी तो हिरोशिमा और नागासाकी में अमेरिकी सरकार द्वारा गिराए गए बमों के कारण करीब सात दशक बाद भी उस क्षेत्र में बच्चे विकलांग पैदा हो रहे हैं और हाल में फुकुशिमा की दुर्घटना के बाद परमाणु ऊर्जा द्वारा बिजली उत्पादन के भी विरूद्ध विश्वव्यापी आंदोलन तेज होता जा रहा है।

(vii) ताप प्रदूषणः मनुष्य द्वारा मुनाफे और सुख के लिए ताप का

अत्यधिक इस्तेमाल की वजह से धरती का तापमान असंतुलित हो गया है और ग्लेशियर पिघलने लगे हैं। समुद्रतल बढ़ रहा है जिसके कारण धरती के बहुत से तटीय निचले इलाके डूबते जा रहे हैं।

(viii) दृश्य प्रदूषण: बढ़ते औद्योगिकीकरण और नगरीकरण के कारण चारो ओर के बढ़ते बदसूरत परिदृश्य, जिसमें राजधानी दिल्ली में कूड़ों की पहाड़ियों का उल्लेख किया जा सकता है।

(ix) जल-प्रदूषण: घरों और उद्योगों से नदियों में उड़ेला जा रहा मलबा जिसका सबसे बड़ा उदाहरण है भारत की पवित्र नदियों गंगा और यमुना जिसका पानी आज पीने को कौन कहे छूने लायक नहीं रहा।

ये सारी प्रदूषण समस्याएँ पिछले दो सौ वर्षों में पैदा हुई हैं। वैसे तो पूरी मानव सभ्यता ही मानव द्वारा प्रकृति में हस्तक्षेप के द्वारा विकसित हुई है।

(२९)प्रश्न: क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि गंगा सफाई अभियान सुस्ती के साथ ही देरी का भी शिकार है? ऐसा क्यों?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि गंगा सफाई अभियान सुस्ती के साथ देरी का भी शिकार है। हमारी इस बात की संपुष्टि तो भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक (सीएजी) ने भी अपनी रिपोर्ट में की है। रिपोर्ट में कहा गया है कि केंद्र सरकार स्वच्छ गंगा मिशन के लिए आवंटित धनराशि के एक बड़े हिस्से का उपयोग ही नहीं कर सकी है जिससे यह स्पष्ट दिख रहा है कि गंगा सफाई अभियान सुस्ती के साथ ही देरी का भी शिकार है। यह स्थिति तब है जब प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने खुद गंगा की स्वच्छ-साफ करने के प्रति प्रतिबद्धता दिखाई थी। यह विचित्र है कि मोदी सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकतावाली एक महत्वपूर्ण योजना कहीं पहुँचती नहीं दिख रही है और वह भी तब जब मोदी सरकार के कार्यकाल का साढ़े तीन साल का समय बीत चुका है। शेष डेढ़ साल में गंगा के साफ होने की उम्मीद इसलिए नहीं की जा सकती, क्योंकि इस बड़े काम को करने के लिए जैसी ठोस नीति बननी चाहिए उसका अभाव ही नजर आ रहा है।

सच मानिए सरकार की 'नमामि गंगे' नाम की परियोजना गंगा को साफ-स्वच्छ बनाने के प्रति गंभीर नहीं है, क्योंकि सरकार की गंभीरता धरातल पर कहीं नजर नहीं आ रही है। साथ ही संबद्ध राज्य सरकारें भी गंगा सफाई अभियान के प्रति प्रतिबद्ध नहीं दिखाई पड़ती है, क्योंकि सीवेज शोधन संयत्र चलाने वाले उनके नगर निकायों का रंग-ढंग बदलने का नाम नहीं ले रहा है।

ऐसा लगता है कि संसाधन और तकनीक की उपलब्धता के बावजूद गंगा और अन्य नदियों को साफ-सुथरा रखने का दायित्व जिनके कंधों पर दिया गया था उनकी दिलचस्पी केवल सरकारी कोष को मनमाने ढंग से खर्च करने में है। क्या इससे बड़ी विडंबना और कोई हो सकती है कि जब सरकार के साथ-साथ किस्म-किस्म के सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक संगठन गंगा को साफ करने के लिए सक्रिय हैं तब यही काम होने के अलावा और सब कुछ कैसे हो रहा है? बेहतर हो कि सीएजी रिपोर्ट सामने आने के बाद सरकार को यह अहसास हो जाए कि उसकी एक महत्वाकांक्षी योजना नाकाम होने के कगार पर जा खड़ी हुई है।

(३०)प्रश्न:क्या आपको ऐसा लगता है कि इतिहास, धर्म और राजनीति के विकृत मिश्रण से हर शहर अमानवीय जगह होता जा रहा है?

उत्तर: हाँ, मुझे भी ऐसा लगता है कि इतिहास, धर्म और राजनीति के विकृत मिश्रण से हर शहर अमानवीय जगह होता जा रहा है और बौद्धिकता, स्वतंत्रता एवं कल्पना के अवसर सिकुड़ते जा रहे हैं। दरअसल, हर तरफ हिंसा की छायाएँ हैं और इतिहास कभी ऊहापोह में होता है, कभी अपहृत हो जाता है, कभी बिखर जाता है, कुचला जाता है और कभी कुरूप कर दिया जाता है, पर उसे नष्ट नहीं किया जा सकता है। वह समाज के भीतर लड़ता रहता है और अंतत नई शक्तियों को लेकर सामने आ जाता है।

मुझे तो ऐसा लगता है कि मनुष्य की मनुष्य के प्रति अमानवीयता का ही नतीजा है मनुष्य का प्रकृत्ति अमानवीयता। जो जल, वायु और मिट्टी जीवन के मुख्य आधार हैं, उनके प्रति इस समय अनियंत्रित बेईमानी चल रही है। आखिर तभी तो 7000 करोड़ खर्च करके गंगा अभी भी दुनिया की पाँच सबसे प्रदूषित नदियों में एक है। गंगा आरती करते रहिए। इनसान की सारी गंदगी का भार प्रकृति ढो रही है और उसका प्रतिशोध भी हमारे सामने है। उत्तराखंड के भू-स्खलन, मुंबई और चेन्नई की बाढ़ें, दिल्ली का जहरीला धुआँ, कलकत्ते में बढ़ता जल प्रदूषण प्रकृति की चीखें हैं। यदि समाज में मानव मूल्य बचे होते, पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान जटिल नहीं होता।

मैं भी यह मानता हूँ कि वर्तमान समय की बहुत सी समस्याओं की जड़ें हमारी संस्कृति में तो हैं ही धर्म और राजनीति के विकृत मिश्रण से भी है। व्यक्ति जब कल्पना करना छोड़ देता है तो संस्कृति और धर्म में मौजूद रूढ़ियाँ और संकीर्णताएँ उसे दबोच देती हैं। मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए बाध्य हूँ कि यदि मानव-मूल्यों और पर्यावरण को बचा नहीं पाते

तो हम समाज को खो देंगे। मूल्यहीनता के परिदृश्य में विद्वेष फैलता है। बेईमान बेईमान नहीं लगता, हिंसक हिंसक नहीं लगता। लुटेरे को लुटेरा कभी लुटेरा नहीं बोल पाता। इसी स्थिति में सभ्यता और संस्कृति चुपचाप दम तोड़ देती है। इसीलिए मानव-मूल्यों को बचाने के लिए बंधुत्व, स्वतंत्रता और समानता जैसे मानव-मूल्यों के प्रधान स्रोत को समझना होगा, क्योंकि ये मानव-मूल्यों की गंगोत्री है। इसके सूखने से कुछ भी हरा नहीं होगा और निर्माण पर ध्वंस की जीत होगी। इसलिए प्रकृति और पर्यावरण के प्रति जागरूकता लानी होगी। •

अध्याय : छह

प्रष्टाओं का परिचय

(१)डॉ. बालशौरि रेड्डी:

नाम : डॉ. बालशौरि रेड्डी

जन्म : 1 जुलाई, 1928

जन्म स्थान : गोल्लल गुडूर, जिला-कडपा, आँध्रप्रदेश

शिक्षा : नेल्लूर, कडपा, इलाहाबाद और वाराणसी

कार्यक्षेत्र : प्राचार्य, प्रशिक्षण महाविद्यालय, हिंदी प्रचार सभा, मद्रास
संपादक, 'चंदामामा'(हिंदी)-23 वर्ष तक
निदेशक, भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता
अध्यक्ष, आँध्रप्रदेश हिंदी अकादमी, हैदराबाद
अध्यक्ष, तमिलनाडु हिंदी अकादमी, चेन्नई
अध्यक्ष, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशित पुस्तकें : शबरी, जिंदगी की राह, यह बस्ती: ये लोग, भग्न सीमाएँ, बैरिस्टर, स्वप्न और सत्य, प्रकाश और परछाई, लकुमा, धरती मेरी माँ, प्रोफेसर, वीर केसरी, दावानल, कालचक्र, तेलुगु की लोककथाएँ, आँध्र के महापुरुष, सत्य की खोज, तेनालीराम के नए तलीफे, बुद्धू से बुद्धिमान, न्याय की कहानियाँ, आदर्श जीवनियाँ, आमुक्त माल्यदा, दक्षिण की लोककथाएँ, तेनालीराम की कहानियाँ, वैशाखी हर-हर गंगे, पंचामृत, आँध्र-भारती, तमिलनाडु, कर्नाटक सहित विभिन्न भाषाओं में सैकड़ों पुस्तकें।

विदेश यात्रा : अमेरिका, इंगलैंड, मॉरिशस, सिंगापुर आदि सहित दशाधिक देशों की यात्राएँ।

अभिरुचि : अध्ययन, लेखन और पर्यटन

स्थायी पता : 'ज्योति निकेतन', 27 वडिवेलुपुरम, वेस्टमांबलम, चेन्नई-600033, तमिलनाडु, दूरभाष: 044-24893095

महाप्रयाण : 15 सितम्बर, 2015

(२)डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

जन्म तिथि: 27 दिसम्बर, 1933

जन्म स्थान: ग्राम-सहाजितपुर, जिला-सारण

शिक्षा : एम. ए., पटना विश्वविद्यालय
पीएच.डी., लंदन विश्वविद्यालय

कार्यक्षेत्र : 1. बिहार तथा भागलपुर विश्वविद्यालय में संस्कृत विभागाध्यक्ष

2.1986 से 1988 तक कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति

3.पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, राँची विश्वविद्यालय, राँची तथा विनोवा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग में विजिटिंग प्रोफेसर तथा इमेरिटस फेलो

4.इंडियन इंस्टीच्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज, शिमला में 2003 से 2006 तक फेलो,

5. राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, भारत सरकार द्वारा 2011 में प्रायोजित 15वें विश्व संस्कृत काँग्रेस के विभिन्न शैक्षिक सत्रों के अध्यक्ष

रचना : विश्व प्रसिद्ध-Sanskrit Syntax and Grammar of Case

सम्मान : ग्रेट ब्रिटेन के कॉमनवेल्थ स्कॉलरशिप कमीशन द्वारा भाषा विज्ञान में पीएच.डी. के लिए इन्हें स्कॉलरशिप मिला।

अभिरुचि : अध्ययन, लेखन और पर्यटन

स्थायी पता : 75सी, पाटलीपुत्र कॉलोनी, पटना

देहावसान : 28 अगस्त, 2016 को 83 वर्ष की उम्र में

(३) डॉ. बलराम तिवारी

जन्म तिथि : 3 मई, 1951
(प्रमाण-पत्र में 13जून, 1950)

जन्म स्थान : ग्राम-सिरसिया, जिला-मधेपूरा, बिहार

शिक्षा : डिग्री-1 विज्ञान, बी.ए. हिंदी सम्मान, एम.ए. हिंदी एवं 'पोस्ट एम.ए. डिप्लोमा इन लिंग्विस्टिक्स' में प्रथम श्रेणी में प्रथम, पीएच.डी.

अध्यापन : नवम्बर, 1977 से बी.एन. कॉलेज, पटना, पटना कॉलेज, पटना एवं हिंदी विभाग, पटना वि.वि. पटना में प्राध्यापन, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, पटना वि.वि. में अध्यक्ष रूप में एवं पत्रकारिता तथा जनसंचार विभाग, पटना वि.वि. में निर्देशक रूप में सेवा (2008 से 2011 तक)
पटना कॉलेज के हिंदी विभाग में 'स्नातक-जनसंचार'(बेचलर इन मास कम्युनिकेशन) एवं स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, पटना वि.वि. में 'स्नातकोत्तर-पत्रकारिता एवं जनसंचार' (मास्टर इन जर्नलिज्म एण्ड मास कम्युनिकेशन) पाठ्यक्रम के प्रारंभ का श्रेय।
जून, 2015 में अवकाशप्राप्त।

पुस्तक एवं आलेख: 'ध्वनि-परिवर्तन की दिशाएँ',1977,माध्यम प्रकाशन,पटना
'सूर की काव्य-चेतना', परिवर्धित संस्करण, 2001, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद
'बिहारी रत्नाकर', 2002, अनुपम प्रकाशन, पटना
'आलोचना'(दिल्ली), 'दस्तावेज'(गोरखपुर), 'विश्व भारती' पत्रिका(शांति निकेतन),'राष्ट्रभाषा परिषद् पत्रिका(पटना) आदि में आलेख प्रकाशित।

अभिरुचि : अध्ययन, अध्यापन और संवाद

वर्तमान पता : पूर्व विभागाध्यक्ष,स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,पटना विश्वविद्यालय, पटना, रोड नं. 4ए, मजिस्ट्रेट कॉलोनी आशियाना नगर, पटना-800025, मो.-9431433652

(४) प्रो. (डॉ.) उमेश शर्मा

जन्म तिथि : 28.02.1963

जन्म स्थान : ग्राम-डेढ़सैया, पो.-हाटी, थाना-काको
जिला-जहानाबाद (बिहार)

शैक्षणिक योग्यता: आचार्यद्वय व्याकरण एवं साहित्य
विधावारिधि-(Ph.D.)K.S.D.S. University, Darbhanga
एम.ए.संस्कृत, पटना विश्वविद्यालय, पटना

कार्यक्षेत्र : पूर्व कुलपति, कामेश्वर सिंह दरभंगा, संस्कृत विश्वविद्यालय
दरभंगा, बिहार
प्राध्यापक, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, काजीपुर, पटना

अभिरुचि : लेखन, पठन-पाठन, सर्वधर्म समभाव।

प्रकाशित रचनाएँ: महावैयाकरण नागेशभट्ट का व्यक्तित्व एवं कृतित्व। सद्यः

प्रकाश्य पुस्तकें: 1. संस्कृत व्याकरण सुबोधिनी
2. ब्रिलिएण्ट आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना

वर्तमान पता : प्राचार्य, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, काजीपुर, पटना-4
श्रीकृष्ण कोलोनी, बेउर, पटना
मो.-9431289566

(५) डॉ. रामनिवास 'मानव'

जन्म तिथि : 2 जुलाई, 1954

जन्म स्थान : ग्राम-तिगरां, जिला-महेन्द्रगढ़, हरियाणा

शिक्षा : एम. ए.(हिंदी), पीएच.डी., डी. लिट्

कार्यक्षेत्र : पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, पीआरएम महाविद्यालय, हिसार, हरियाणा

सम्प्राप्ति : (1) विभिन्न विधाओं की छतीस महत्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित।

(2) देश-विदेश की अड़सठ प्रमुख बोलियों-भाषाओं में विविध रचनाओं का अनुवाद और अनुदित कृतियाँ प्रकाशित।

(3)व्यक्तित्व और कृतित्व पर एम. फिल हेतु पैंतालिस बार तथा पीएच.डी. हेतु आठ बार शोधकार्य संपन्न।

(4)चार कविताएँ तथा दो शोध प्रबन्ध कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाणा की एम.ए. (हिंदी)-द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम में शामिल।

(5)देश के एक दर्जन विश्वविद्यालयों द्वारा शोध-निर्देशक के रूप में अनुमोदित।

(6) अनेक प्रतिष्ठित सम्मान, पुरस्कार तथा मानद उपाधियाँ प्राप्त। देश-विदेश की एक सौ पचास संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

(7)स्नातक तथा स्नातकोत्तर कथाओं को पढ़ाने का तीन दशक से अधिक का अनुभव।

(8)सम्प्रति विश्वविद्यालयी शोध कार्यक्रम केंद्र में शोध-निदेशक।

अभिरुचि : अध्यापन एवं शोध

वर्तमान पता : 'अनुकृति', 706, सेक्टर-13, हिसार-125005,हरियाणा दूरभाष: 01662-238720, मो.-8053545632

(६)डॉ. अरुण कुमार भगत

जन्म स्थान : सहरसा, बिहार

शिक्षा : एम.ए.

कार्यक्षेत्र : एसोसिएट प्रोफेसर, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल, नोयडा केंद्र, गाजियाबाद, उ.प्र.

अभिरुचि : पत्रकारिता, अध्ययन, लेखन एवं संपादन

वर्तमान पता : 174, प्रथम तल शक्ति खंड-3, इंदिरापुरम, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, मो.-9818387111

(७) डॉ. पी. लता

जन्म स्थान : तिरूवनंतपुरम, केरल

शिक्षा : एम.ए.

कार्यक्षेत्र : हिंदी प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय, तिरूवनंतपुरम, केरल

अभिरुचि : अध्ययन, अध्यापन, लेखन एवं संगठन

वर्तमान पता : महासचिव, राष्ट्रीय विचार मंच, केरल
टी.सी.-14/1592, पो.-लेन, ई-28,बबुन्कुका,
तिरूवनंतपुरम, केरल,
दूरभाष-0471-2332468, मो.-9946253648

(८) डॉ. आनंद वर्द्धन

जन्म तिथि : 22 अक्टूबर, 1957

जन्म स्थान : ग्राम-सदरपुर, पत्रा-अमावाँ, जिला-नालन्दा, बिहार

शिक्षा : सिविल इंजीनियरिंग ग्रैजुएट, आर.आई.टी., जमशेदपुर एम.टेक, आई.आई.टी. दिल्ली, पीएच.डी., आई.आई.टी. दिल्ली

कार्यक्षेत्र : वैज्ञानिक 'बी', रक्षा अनुसंधान और विकास संस्थान (वर्फ एवं अवधाव अध्ययन संस्थान, मनाली), वैज्ञानिक 'सी', राष्ट्रीय जल विज्ञान संस्थान, रूरकी एसोसियेट प्रोफेसर, जल संसाधान अध्ययन केंद्र, पटना विश्वविद्यालय, पटना जेनेरल मैनेजर, आईसीटी प्राइवेट लिमिटेड तथा कन्सल्टिंग इंजीनियरिंग सर्विसेज, दिल्ली, प्रोफेसर, द्रोणाचार्य कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, गुरगाँव, हरियाणा

प्रकाशित रचनाएँ : 100 से अधिक शोधपत्र, प्रस्तावना प्रारूप, प्रतिवेदन आदि प्रकाशित, हिंदी और मगही काव्य रचना-'मगही बयार', मगही काव्यानन्द, नियति, रसरागरंग अनन्त, सम्पूर्ण नवीन छठगीत, जलथलनभ पर्यावरण, योग एंड मैनेजमेंट आदि

अभिरुचि : शोध, परिकलन एवं विकास कार्य, विज्ञान, साहित्य, प्रकृति एवं पर्यावरण तथा समाजोपयोगी कार्य

वर्तमान पता : मकान सं. एफ-733, C/o श्री मामचन्द चौधरी, कुँआ मोहल्ला, तुगलकाबाद गाँव, दिल्ली-110044
मो.-9728590776, 9911960776, 8851419171
E.mail- anand_indra3@yahoo.co.in

(९) डॉ. शिववंश पाण्डेय

शिक्षा : एम.ए.

कार्यक्षेत्र : पूर्व निदेशक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना
साहित्य मंत्री, बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन, पटना
अध्यक्ष, बिहार संस्कृत संजीवन समाज, पटना

अभिरुचि : अध्ययन, लेखन

वर्तमान पता : 'लीलाधाम', 3/307 न्यू पाटलीपुत्र कॉलोनी, पटना-13
मो.-9430253666

(१०) डॉ. शाहिद जमील

जन्म स्थान : हाजीपुर, वैशाली

शिक्षा : एम.ए.

कार्यक्षेत्र : राजभाषा पदाधिकारी, उर्दू निदेशालय, राजभाषा विभाग, बिहार सरकार, पटना,
कथाकार, रचनाकार, संचालक

अभिरुचि : लेखन, अध्ययन, संवाद, विमर्श

वर्तमान पता : क्वॉटर नं-सी-84, बैंक रोड, पटना
मो.-9430559161, 9931493157

(११) श्री उमेश्वर प्र. सिंह

जन्म स्थान : बेगुसराय, बिहार

शिक्षा : एम.ए.

कार्यक्षेत्र : पूर्व अधिकारी, कार्यालय, महालेखाकार (लेखा परीक्षा), बिहार, पटना
पूर्व वित्त पदाधिकारी, महावीर कैंसर संस्थान, पटना

अभिरुचि : अध्ययन, लेखन, संगीत

वर्तमान पता : पत्थर रोड, सगुन हॉल के निकट, सरिस्ताबाद, पटना-800001, मो.-09835202663,9334449156

(१२) श्री सुरेश कुमार सिन्हा

जन्म तिथि : 26.12.1948

जन्म स्थान : सीतामढ़ी (बिहार)

शिक्षा : बी.ए., एम.ए.(राजनीति विज्ञान)
एलएलबी, पटना वि.वि.

कार्यक्षेत्र : पूर्व अधिकारी, कार्यालय, महालेखाकार(ले.प.),
बिहार, पटना
पूर्व सहायक आयुक्त, भविष्य निधि, कोलकाता
पूर्व सहायक संपादक, 'वाग्वंदना', बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड

अभिरुचि : कला, संगीत, पेन्टिंग, रेखाचित्र, लेखन, खेल एवं अध्ययन

वर्तमान पता : 'घरौंदा' ए-364,ए.जी. कॉलोनी, आशियाना नगर, पटना-25
मो.-9835642504

(१३) डॉ. गोपाल शरण सिंह

जन्म स्थान : गोपालबाद, नालन्दा

शिक्षा : एम. ए.

कार्यक्षेत्र : समाज सेवा,

अभिरुचि : सामाजिक मनोवृत्ति, लेखन एवं संपादन

वर्तमान पता : ग्राम+पत्रा.-नालन्दा, जिला-नालन्दा
मो.-9709451481

(१४) डॉ. अमर सिंह वधान

जन्म तिथि : 14 जुलाई, 1947

जन्म स्थान : अमृतसर, पंजाब

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी), एम. ए.(अँग्रेजी) तथा
एम.ए.(राजनीति) पीएच.डी, डी.लिट्, पीजीडीसीटी,
सीसीजी

कार्यक्षेत्र : 40 वर्षो तक महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के स्तर पर अध्यापन

प्रकाशित ग्रंथ : मौलिक ग्रंथ-15
संपादित ग्रंथ-15

संप्रति : निदेशक, उच्चतर शिक्षा एवं शोध केंद्र, चंडीगढ़

स्थायी पता : 3150, सेक्टर 24 डी, चंडीगढ़
मो. 9876301085

(१५) श्री मनीष कुमार सिन्हा

जन्म तिथि : 8 फरवरी, 1973

शिक्षा : बी.कॉम(ऑनर्स), पटना विश्वविद्यालय, बी.जर्नलिज्म एंड मास कॉम्यूनिकेशन

कार्यक्षेत्र : प्रकाशन एवं संपादन, साप्ताहिक न्यूज पेपर

अभिरुचि : लेखन, अध्ययन एवं संगीत

वर्तमान पता : एम. 141, स्ट्रीट नं.-15, सदातपुर इक्स., दिल्ली-94
दूरभाष-011-22963567, मो.-9810811381

(१६) श्री संजय कुमार सिंह उर्फ संजय भाई

जन्म तिथि : 17 नवंबर, 1975

जन्म स्थान : ग्राम+पत्रा.-मांडी, थाना-बेन, जिला-नालंदा

कार्यक्षेत्र : सामाजिक कार्यकर्ता, संयोजक, युवा एकता परिषद, बिहार
पूर्व निदेशक, अंहिसा प्रशिक्षण केंद्र, शेरपुर, पंजाब,
पत्रकार, ऑफ्टरब्रेक अखबार, दिल्ली
दिल्ली प्रतिनिधि पत्रकार, संभावना सुरभि, बाढ़, पटना

अभिरुचि : समाज सेवा, अध्ययन, जनसंपर्क

स्थायी पता : C/oअध्यात्म साधना केंद्र, छतरपुर, नई दिल्ली-74
मो.-8800597750

(१७) श्री मनोज कुमार

जन्म स्थान : ग्राम-तेलियामय, हिलसा, जिला-नालंदा

शिक्षा : एम. ए.

कार्यक्षेत्र : वरीय लेखा परीक्षा अधिकारी कार्यालय, महालेखाकार(लेखा परीक्षा), बिहार वीरचंद पटेल पथ, पटना-1
सदस्य, कार्यकारिणी, पटेल सेवा संघ, बिहार, पटना
संपादक, 'प्रहरी', कार्यालय, महालेखाकार(लेखा परीक्षा), बिहार, पटना

अभिरुचि : पत्रकारिता, समाज सेवा एवं अध्ययन

वर्तमान पता : प्रगतिनगर, सिपारा, पटना

(१८) श्री रामप्रताप सिंह

श्री राम प्रताप सिंह

जन्म स्थान : ग्राम-चौधरायनचक, पत्रा.-मसत्थू, पटना

कार्यक्षेत्र : बिहार सरकार के लोक निर्माण विभाग में वरिष्ठ सहायक पद पर पैंतीस वर्षों तक कार्यरत

अभिरुचि : समाज सेवा, पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार में अभिरुचि

वर्तमान पता: 314 जीए, पश्चिमी जयप्रकाश नगर, तीन पुलवा, पटना-गया लाईन, पटना-800001, मो.-8334109945

(१९) आचार्य राम विलास मेहता

जन्म स्थान: ग्राम-बचनू चकला, पो.-रतनपुर भाया-करजाईन बाजार, जिला-सुपौल (बिहार)

शिक्षा : बी.एस.सी., बी.ए., एल.एल.बी., साहित्याचार्य, व्याकरणाचार्य

कार्यक्षेत्र : आठ वर्षो तक नेपाल के विभिन्न उच्च विद्यालयों में अध्यापन, श्री जनता बौधी गंगाय प्रा. सह मध्य संस्कृत विद्यालय ढ़ेना, सुपौल

अभिरुचि : संस्कृत शिक्षा के उन्नयन हेतु निरंतर प्रयासरत, पत्रकारिता, समाज कल्याण, शैक्षणिक कार्य, वाद-विवाद एवं लेखन कार्य

भाषाई ज्ञान: संस्कृत, हिंदी, अँग्रेजी, मैथिली उर्दू एवं नेपाली

सम्मान : राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार से 5.9.1998 को सम्मानित

स्थायी पता: ग्राम-बचनू चकला, पो.-रतनपुर भाया-करजाईन बाजार, जिला-सुपौल (बिहार)

(२०) श्री कुमार शैलेन्द्र

जन्म स्थान : हल्दी छपरा, भवानी टोला, मनेर, पटना

शिक्षा : एम. कॉम, पटना विश्वविद्यालय, एमबीए तथा एलएलबी

कार्यक्षेत्र : कानून एवं समाज सेवा में महत्वपूर्ण योगदान, हीनाफीलिया एवं थेलेसेमियास रोगियों की सेवा में 1986-87 से निरंतर सक्रिय

संस्थापक, अंतरराष्ट्रीय समाज सेवा संस्थान,

महासचिव, वर्ल्ड फेडरेशन ऑफ हीमोफीलिया के विचार चाप्टर

संस्थापक, सोसाइटी फॉर हीमोफीलिया केयर, नई दिल्ली

आजीवन सदस्य, बिहार रेड क्रॉस

संरक्षक सदस्य, बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन, पटना

प्रकाशित रचनाएँ: 'अम्बेडकर'

अभिरुचि : समाजसेवा

(२१) कविवर निशा नाथ अवस्थी : नि:शंक

जन्मस्थान: ऊँचा थोक, हरदोई, उ.प्र.

शिक्षा:

कार्यक्षेत्र: साहित्य, शिक्षक-कवि

अभिरुचि: कविता-लेखन एवं काव्य पाठ

वर्तमान पता: 205, ऊँचा थोक, हरदोई-24001, उत्तरप्रदेश

(२२) श्री अमरेन्द्र कुमार

जन्मतिथि: 12 जून 1962
जन्मस्थांन: ग्राम सिरसी-बराह, हरनौत, जिला-नालन्दा
शिक्षा: पोस्ट ग्रेजुएट मास कम्युनिकेशन
कार्यक्षेत्र: निजी सचिव, डाक विभाग, पटना
अभिरुचि: समाज सेवा एवं नैतिक मूल्यों के पक्ष में वैचारिक सोच
वर्तमान पता: शकुन्तला मार्केट, कृषि नगर, ए.जी. कॉलोनी, पटना-25
मो.-9334337302

(२३) श्री अरविंद कुमार उर्फ पप्पू जी

जन्मस्थान : गरूआरी, पटना
कार्यक्षेत्र: कागज व्यापारी एवं थोक बिक्रेता
अभिरुचि: सामाजिक कार्य एवं संगठन
वर्तमान पता: 1. नोएडा, उत्तरप्रदेश
2. स्कूल ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली-92
मो.- 9934761017

(२४) श्री अवध बिहारी जिज्ञासु

जन्मस्थान :
कार्यक्षेत्र: अध्यक्ष, अखिल भारतीय तंतुवाय वस्त्रकार समाज पटना, बिहार
संपादक, 'जागो पान' त्रैमासिक पत्रिका
अभिरुचि: सामाजिक कार्य एवं संगठन
वर्तमान पता: गुप्ता मार्केट, राजाबजार
पाया नं.-53 के दक्षिण, बेली रोड, पटना-14
मो.-9546855273

(२५) श्रीमति पल्लवी सिंह चौहान

जन्मतिथि : 27 नवम्बर, 1979
जन्मस्थान : बी-39, सोदाना, जयपुर
शैक्षणिक योग्यता : एम. ए.
कार्यक्षेत्र: विकास अधिकारी, वैदिक ग्रुप ऑफ एजुकेशन जयपुर, राजस्थान
अभिरुचि: शिक्षा, अध्ययन, समाज सेवा संगठन, सांस्कृतिक शुचिता
वर्तमान पता: बी-39, सोडाना, जयपुर, राजस्थान
मो.-9602922779

(२६) श्री कृष्ण प्रसाद (योग प्रेमी)

जन्मतिथि : 18.01.1954
जन्मस्थान : ग्राम-जुआफर डीह, पो.-नीरपुर पंचायत बड़गाँव (नालन्दा)
शैक्षणिक योग्यता : आई.एससी
कार्यक्षेत्र: पैथोलोजी विभाग में 35 वर्षो से कार्यरत
अभिरुचि: कृषि कर्म एवं साहित्य साधना, आकाशवाणी से काव्य-पाठ
प्रकाशित रचनाएँ : जीवन तर्पण
सम्मान : अनेक साहित्यिक पुरस्कारों से सम्मानित
वर्तमान पता: पटेल सेवा नगर, रोड नं.-5, भागवत मिलन मन्दिर मेन रोड
पटना-26

(२७) श्रीमति रिंकू पांडे

जन्म तिथि : 01.03.1983

जन्म स्थान : ग्राम+पत्रा.-अंधारी, जिला-भोजपुर(आरा)

शिक्षा : एम.ए.(समाज शास्त्र), साहित्याचार्य, संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा

कार्यक्षेत्र : सामाजिक कार्यकर्ता, पाक कला

वर्तमान पता : न्यू पटना कॉलोनी, बेऊर, पटना
मो.-9060134643

(28) श्री रवीन्द्र प्रसाद यादव

जन्म तिथि : 04.11.1963

जन्म स्थान : ग्राम-कराय परशुराय, नालन्दा

पिता का नाम : स्व. रामेश्वर प्रसाद यादव

पत्नी : श्रीमति प्रियंका कुमारी

शिक्षा : एम.कॉम., बी.डी. कॉलेज, पटना, मगध वि. वि.
एम.ए.(श्रम एवं समाज कल्याण विभाग), ए. एन. कॉलेज
एल.एल.बी., कॉलेज ऑफ कॉमर्स, पटना, मगध वि. वि.

कार्यक्षेत्र : अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, पटना
लेखालिपिक, बिहार राज्य प्रदूषण नियंत्रण पर्षद्

अभिरुचि : संगठन एवं सामाजिक कार्य

वर्तमान पता : बापूपथ, पुरन्दरपुर, पटना-800001
मो.-9431808053

(२९) श्री कैलाश चौधरी

जन्म तिथि : 05.09.1943
जन्म स्थान : भारती ग्राम, पो.-भोभी, जिला-नालंदा
शिक्षा : एम.ए.(भूगोल)
कार्यक्षेत्र : शिक्षक, अवर शिक्षा सेवा, एस.डी.ओ. (शिक्षा), प्राचार्य, शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय, पबिया (सं. परगना)
युवा समन्वयक, नेहरू युवा केन्द्र, नालन्दा रोहतास
क्षेत्रीय उपशिक्षा निदेशक, सारण, तिरूहुत तथा मगध
अध्यक्ष, राष्ट्रभाषा हिंदी प्रसार परिषद् बजरंगपुरी, पटना-7
प्रकाशित रचनाएँ : युवा चेतना, नवमल्लिका, साझे का सुर, सुर संगम, फुल एक उपवन के, सरहद की चिनगारी, प्राण अपान की धारा, मागधी गीता, आत्मकथा
पुरस्कार : 100 मीटर दौड़ में प्रथम-मध्य वि. दाहा बिगहा, नालंदा
हस्तलिपि लेखन, द्वितीय स्थान, पटना वि.वि.
साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं से अनेक पुरस्कार, सम्मान एवं अभिनंदन पत्र प्राप्त
अभिरुचि : खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं सामाजिक कार्यक्रम
वर्तमान पता : प्रकाश निवास, बजरंगपुरी, रोड नं.-1, शहीद भगत सिंह मार्ग
पो.-गुलजारबाग, पटना-7
मो.-9431431978

(३०) श्री ध्रुव प्रसाद

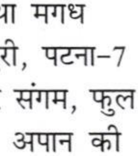

जन्मतिथि : 12 फरवरी 1954
जन्मस्थान : ग्राम+पत्रा.-सोहागपुर, पो. हथुआ, जिला-गोपालगंज
शिक्षा : एम.ए(हिन्दी) पटना विश्वविद्यालय
कार्यक्षेत्र : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के अनुसंधान विभाग में शोधकार्य
तदुपरान्त परिषद् पत्रिका (त्रैमासिकी) का संपादन
उपाध्यक्ष, राष्ट्रभाषा हिंदी प्रसार परिषद्, बजरंगीपुरी, पटना-7
संस्थापक, छत्रपति शिवाजी पुस्तकालय सह वाचनालय एवं सरदार वल्लभभाई पुस्तकालय सह वाचनालय, गोपालगंज
अभिरुचि : संयोजक, ग्रामीण पुस्तकालय आंदोलन
वर्तमान पता : ग्राम+पत्रा.-सोहागपुर, पो. हथुआ, जिला-गोपालगंज
मो. : 9572035919

लोक के प्रति इस कृति में लेखक की प्रतिबद्धता

भारत जैसे देश में जहाँ धर्म योनि से जुड़ा हो, सामाजिक व्यवस्था की नींव योनि-आधारित हो, वहाँ धर्म को नकारा नहीं जा सकता। सिद्धेश्वर जी ने इस पुस्तक के धार्मिक अध्याय में स्वीकार किया है। सिद्धेश्वर जी के सर्जनात्मक संसार में मानवीय प्रश्नों के लिए आकुलता तो है ही, भूमंडलीकरण और उत्तर आधुनिकता के इस दौर के कई ज्वलंत, मानवीय, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्न उठाकर प्रबुद्धजनों ने अपने सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक उद्येश्यों का परिचय दिया है। मानवीय और सामाजिक मूल्यों के विघटन की ही यह चिंताकुलता है कि वे आमजन के जीवन लोमहर्षक त्रासदी को देखकर मौन नहीं रह सके, क्योंकि मानवता और सामाजिक व्यवस्था पर भी प्रश्नचिह्न लगता है।

– डॉ. गोपालशरण सिंह

आमजन के मन की व्यथा गहराई में जाकर रेखांकित

लेखक एवं कलाकार समाज को नई विचारधारा से जोड़ते हैं। आज जब भाषा, साहित्य एवं कला पर मंडराते खतरों पर चिंता जताई जा रही है, तो सिद्धेश्वर जी जैसे जीवंत साहित्यकार उम्मीद जगाते हैं। वैसे भी भारत जैसे एक विकासशील देश के लिए यह आवश्यक है कि नए विचारों का प्रवाह लगातार बना रहे।

– डॉ. हरि सिंह पाल

निर्मित होती झूठ की बुनियाद पर गलत विचारों की राजनीति

इस देश के इतिहास के साथ इतनी छेड़छाड़ हुई कि उसके दुष्परिणाम भारत-विभाजन जैसी विभीषिकाओं के रूप में हमने देखे हैं। फिर आजादी के डेढ़-दो दशक के बाद से ही घृणा और झूठ पर टिकी राजनीति ने हमारे राष्ट्र की आत्मा में घृणा के खंजर घोपना जो शुरू किया है उससे झूठ की बुनियाद पर गलत विचारों की राजनीति निर्मित हो रही है जिसे सिद्धेश्वर जी ने साक्षात्कार के दौरान पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है।

– डॉ. (प्रो.) एल. एन. शर्मा

सोचने और कहने की निर्भीकता अद्वितीय

भारतीय समाज के मौजूदा माहौल में व्यावसायिक मानसिकता न रखने वाले सिद्धेश्वर जी का अनिवार्य योगदान साहित्य और उसके जरिए समाज में सकारात्मक बदलाव के लिए योगदान करना रहा है। वैसे हिंदी साहित्य की कविता, संस्मरण, निबंध आदि विधाओं में तो इनकी अबतक डेढ़ दर्जन पुस्तकें आ चुकी हैं, मगर साक्षात्कार जैसी महत्वपूर्ण विधा में हधर हाल के वर्षों में आई पाँच पुस्तकों में से प्रस्तुत पुस्तक-'इंसानियत की धुँआती आँखें' दूसरी है जिसमें जिज्ञासू विद्वतजनों ने इनसे साक्षात्कार के दौरान सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व अध्यात्मिक, नैतिक, वैचारिक तथा प्राकृतिक विषयों से संबंधित प्रश्न इनके समक्ष उत्तर हेतु प्रस्तुत किए हैं।

– डॉ. (प्रो.) साधु शरण

रचनाकार व संपादक

सिद्धेश्वर

प्रकाशक – सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन
दिल्ली-92